ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल का आलोचात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय
की डी. फिल्.
उपाधि हेतु प्रस्तुत

● शोध प्रबन्ध ●

प्रस्तुत कत्री
जया दूबे

*

निर्देशक
डा० रूद्र कान्त मिश्र
रीडर संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

संस्कृत एवं पालि प्राकृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद
1999

कृतज्ञता - ज्ञापन

"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एत विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता"

वेद विश्वसाहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थरत्न है। प्रत्येक भारतवासी के लिए वेद का अध्ययन अपरिहार्य है। ब्राह्मण का तो अनिवार्य कर्तव्य है – वेद की रक्षा। कालान्तर मे इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वेद के ६ अङ्गों – शिक्षा, कल्प, निरूक्त, छन्द, व्याकरण तथा ज्योतिष का प्रणयन हुआ। अनेक विद्वानो ने वेदो के मन्त्रो की विविध प्रकार की व्याख्याये भी प्रस्तुत की, परन्तु वेदो के ईश्वर के नि.श्वास होने के कारण वेदमन्त्रो का वास्तविक अर्थ तो ईश्वर ही जानता है।

वेदो का अध्ययन और अध्यापन दोनो ही पवित्र कार्य है। इसीलिए इसके प्रत्येक मण्डल के मन्त्रो का साङ्गोपाङ्ग. निरूपण होना चाहिए। द्वितीय मण्डल का स्थान सम्पूर्ण ऋग्वेद मे अन्यतम माना जाता है। अपने अध्ययनकाल मे ही मेरी उत्कट अभिलाषा थी कि ऋग्वेद का द्वितीय मण्डल का विस्तृत अध्ययन होना चाहिएं। द्वितीय मण्डल के पाठ्यक्रम मे होने से और ऋग्वेद के मण्डलो में प्राचीनतम होने के कारण इस विषय में मेरी रूचि अत्यधिक बढ गई। एम ए परीक्षा समुत्तीर्ण करने के अनन्तर अपने गुरूजन की प्रेरणा से परमेश्वर ने मुझे इस पुनीत कार्य मे सलग्न करा दिया।

इस महनीय कार्य की परिपूर्णता में सर्वप्रथम मै अपने सुयोग्य निर्देशक डॉ० रुद्रकान्त मिश्र रीडर सस्कृत विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय की चिर ऋणी रहूँगी, जिनकी सत्प्रेरणा एव अमूल्य सुझाव मेरे लिए सम्बल बन सका है।

पूज्य पिता जी प्रो० डॉ० हरि शङ्कर त्रिपाठी, अध्यक्ष सस्कृत विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय इलाहाबाद, की कृपा तथा अमूल्य सुझाव इस शोध प्रबन्ध की सम्पूर्णता के लिए विशेष सराहनीय रहा है। यदि इनका आशीर्वाद न मिलता तो इस कार्य की यह परिणति सम्भव नहीं हो पाती।

अनेक पारिवारिक विषमताओ के थपेड़ो से सतत् करती रहने पर भी यह कार्य गुरूकृपा से ही सफलतापूर्वक सम्पन्न हो सका है। मेरी स्वर्गीया माता जी का आशीर्वाद जो सूक्ष्मशरीर द्वारा वे मुझे निरन्तर देती रहती है, मेरे अध्ययन का मेरूदण्ड बनकर मुझे निरन्तर कठिनाइयोसे बचाता रहता है।

मेरे वैवाहिक जीवन के प्रारम्भ होने के बाद मेरी समादरणीया सास मॉ" जी जो अधिक पढी–लिखी न होने पर भी मुझे अध्ययन के लिए प्रेरित करती रहती हैं उन्हें धन्यवाद देना मेरे लिए सूर्य को दीपक दिखाने जैसा ही होगा। मेरे अन्य परिवारजनो ने भी मुझे पढ़ने का सुअवसर प्रदान करके मेरा उत्साहवर्धन ही किया है। मेरे पूज्य पतिदेव जी श्री ओम शंकर दूबे जी ने भी मुझे गृह–कार्यो से मुक्ति देकर इस पुनीत– कार्य मे अतुलनीय योगदान किया है। आर्थिक बोझ तो इन्हीं के सिर पर है, अत इनके योगदान को शब्दों के माध्यम से प्रकट करना मेरे वश की बात नहीं है।

डॉ० जगदेव प्रसाद द्विवेदी ने भी अमूल्य समय एवं सुझाव देकर इस शोधप्रबन्ध को पूर्णता प्रदान की है इसके लिए मैं इनको कोटिशः धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ। मेरे आदरणीय भैया डॉ० विजय शङ्कर पाण्डेय रीडर, एव अध्यक्ष संस्कृत विभाग जी० एस० एस० पी० जी० कालेज कोयलसा आजमगढ़ को भी धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ, शोधप्रबन्ध की पूर्णता के अन्तिम दिनों मे इनका भी सहयोग प्राप्त हुआ है।

इनके अतिरिक्त डॉ० सुधाकर त्रिपाठी, को मैं धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ, जिन्होनें शोधप्रबन्ध के टंकण कार्य में अपना अमूल्य सहयोग दिया है। धर्मेन्द्र कुमार तिवारी तथा मनोज कुमार मिश्रा जी ने भी अपना अपेक्षित सहयोग देकर मुझे अनुगृहीत किया है।

इसी क्रम मे टकण कार्य मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले आडियल कम्प्यूटर प्वाइन्ट के प्रोपराटर श्री विशाल बाजपेयी, का महत्वपूर्ण योगदान है जिन्होने इस महत्वपूर्ण पुस्तक को पूर्ण रुप देने मे अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। जिनका मै हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ।

अन्त मे उस सभी ग्रन्थकारो के प्रति मै सविनय कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिनके ग्रन्थ से किञ्चित् भी साहाय्य प्राप्त हो सका। ग्रन्थ के लेखन मे टकण सम्बन्धी तथा तथ्य सम्बन्धी त्रुटियो का होना स्वाभाविक है,क्योकि कोई भी मानवकृति सर्वथा दोषरहित नही हो सकती। सम्भावित त्रुटियो को अपनी मानकर मै सर्वदा विद्वानो के सुझावो को स्वीकार करके उनके परिष्कार के लिए सज्ज हूँ।

विद्वज्जनो के आशीर्वाद की आकाङ्क्षिणी ——————

जया दूबे

(जया दूबे)

विषयानुक्रमणिका

प्रथम - अध्याय

वेद शब्द की व्युत्पत्ति

वेद शब्द तद्रचनाकालीन समग्र वाड्मय का बोधक है। वेद और अविस्त > अवेस्ता दोनो पद समान धातुज (विद् 'ज्ञाने') और समानार्थक है। आग्ल " Wit, Witty, Wisdom ' और 'ग्रीक' आइद (AIDA) (लैटिन विद् आ (AIDA) गाथिक वइत् (wait) आदि मे भी यही धातु निहित है। व्याकरण की दृष्टि से विद्+घञ् से वेद शब्द निष्पन्न होता है। विद् विचारणे, विद् ज्ञाने, विद्

सत्ताया और विद्लृ लाभे इन चार धातुओ से वेद शब्द अनेक अर्थो को अपने मे समाहित किये हुए निष्पन्न होता है। अत ज्ञान, ज्ञान का विषय एव ज्ञेय पदार्थ सभी वेद के वाच्य अर्थ हो सकते है, पाणिनि ने अपने धातुपाठ मे विद् धातु का अर्थ सत्ता, लाभ और विचारना लिखा है। वेदान्तियो के अनुसार आनन्द, ज्ञान, सत्ता ब्रहम का ये लक्षण वेद शब्द मे समाहित है। (१) सायण (२)ने इष्टप्राप्ति और अनिष्ट निवारण के अलौकिक उपाय बताने वाले ग्रन्थ को वेद कहा है।

नोट –

(1)सस्कृत भाषा, पृ० सं० ४८, १२४

(2)"इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेद·।" तैत्तिरीयसहिता भाष्यभूमिका,पृष्ठ सं. ३

(1) मोनियर विलियम्स के अनुसार वेद का अर्थ ज्ञान अथवा कर्मकाण्डीय ज्ञान है । (2) ग्रिफिथ के अनुसार भी वेद का अर्थ ज्ञान है, वेद वह पुरातन कृति है जिसमे भारतीयो के प्रारम्भिक विश्वास की आधारशिला निहित है।

सर्वप्रथम ऋग्वेद मे वेद (३) (क्रिया) ज्ञान अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है, जबकि वेदस् (४) शब्द ऋग्वेद मे अधिकाशत धन के लिए प्रयुक्त है। शुक्लयजुर्वेद (५) मे प्रयुक्त वेदेन का अर्थ उव्वट ने ज्ञानेन त्रयया विद्यया किया है। श्रुति (६) छन्दस् (७)निगम (८) आम्नाय (६) समाम्नाय आदि शब्द वेद के लिए प्रयुक्त हुए है।

नोट

---

(1) "Veda means knowledge, True or sacred knowledge or lose knowledge of Ritual" A Sanskrit English Dictionary

P.स० १०१५.

(2) Veda, meaning literary knowledge. is the name given to certain Ancient works which formed the foundation of the early religious belief of the Hindues."

(3) वेद नाव समुद्रिय,। ऋ० १/२५/७ ।

(4) " पितुर्न जिव्रेर्विवेदौ। भरन्त ।" ऋ० १/७७/५ १/८१/६, १/८१/६,१/६६/१,१/१००।३ और ६,५/२/१२

(5)वेदेन रूपे व्ययिवत् सुतासुतौ प्रजापति· " शु० य०/१६,७२

(6)"सेयं विद्या श्रुति मति बुद्धि " । यास्क निरूक्त ।

(7) 'बहुलं छन्दसि' । अष्टाध्यायी ।

(8) निरूक्त और भागवत पुराण में वर्णित।

'निरूक्त और भागवत पुराण में वर्णित।

(1)'तत्र खलु इत्येतस्य निगमा भवन्ति ।' निरूक्त

(2) निगम कल्पतरोर्गलित रसम्' श्रीमद्भागवत्।

(9)जैमिनीकृत मीमांसादर्शन में आम्नाय शब्द आया है। 'आम्नायो वेद'

वेद विभाग और वेद व्यास

भारतीय विद्वान् वेद को ईश्वरकृत मानते है। शतपथ ब्राह्मण (१) और मनुस्मृति (२) मे –अग्नि, वायु ,सूर्य,से ऋक्, यजुष्, सामन् की उत्पत्ति कही गयी है। जैमिनी, शबरस्वामी, कुमारिल भट्ट ने वेदो को स्वत सिद्ध माना है । अधिकाश पाश्चात्य विद्वान वेदो को मानवीय कृति मानते है। जिन ऋषियो मे बौद्धिक सामर्थ्य रहा होगा, दैवीयकृपा से उन्होने मन्त्रो का रूप उस यथार्थ ज्ञान को दिया, जिसका वे प्रतिदिन अनुभव करते थे। वेदो का मौखिक परम्परा द्वारा ऋषियो ने सरक्षण किया । कालान्तर मे कृष्ण द्वैपायन व्यास (३) ऋषि ने उनका सकलन किया, अत उनका नाम वेदव्यास पडा।

नोट

---

(1) शतपथ ब्रा०–

'स इमानि त्रीणि ज्योति अमितताय। तेभ्यसृप्तेभ्य स्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेद सूर्यात्सामवेद·।'

श०ब्रा० ११/५/८/३

(2) अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्। दुदोह यज्ञसिद्धयर्थ मृग्यजु. सामलक्षणम् " मनु० १/२३

(3) 'वेदान् वित्यासयस्मात्–स वेदव्यास इतीरतः।

तपसः ब्रह्मचर्येण व्यस्थवेदान् महामति ।

महा० १/२ और महा० आदिपर्व ६१/८८

प्राप्त विवरण के अनुसार वेदव्यास ने——

1.पैल

2.वैशम्पायन

3.जैमिनी और

4.सुमन्तु

को क्रमश ऋग्, यजुष, साम और अथर्व–वेद का उपदेश दिया। वेद चार है——

1.ऋग्वेद

2.यजुर्वेद

3.सामवेद

4.अथर्ववेद

वेदत्रयी और वेदचतुष्टय के सन्दर्भ मे बहुत समय से विवाद चला आ रहा है। इस प्रसग मे इतना ही कथन उपयुक्त होगा कि त्रयी विभाजन शैली की भिन्नता के कारण है। यथा– ऋग्वेद मन्त्रात्मक (स्तुतिपरक) है और गद्यप्रधान यजुर्वेद है तथा गीतात्मक सामवेद है।

संहितापाठ और पदपाठ

वेदो को मूलरूप में सुरक्षित रखने के लिये मौखिक परम्परा के माध्यम से पद पाठादि का प्रचलन हुआ। मूलमन्त्र के अविकल पाठ को–७ निर्भुज–संहित–पाठ’ या सहितापाठ कहते है। सन्धिविच्छेदादि द्वारा विकृति रूप से पाठ ‘प्रतृण–पाठ’ या पदपाठ कहलाता है।

प्रतृणपाठ के नवविभाग है।—

1. पदपाठ	2. जटापाठ	3. मालापाठ
4. शिखापाठ	5. रेखापाठ	6. ध्वजपाठ
7. दण्डपाठ	8. रथपाठ	9. घनपाठ

वैदिक-साहित्य विभाग

'सहिता' मन्त्रात्मक प्रथम भाग है। द्वितीय विभाग मे 'ब्राह्मण' वेद के व्याख्यान ग्रन्थ है, जिनमे यज्ञो की कर्मकाण्डीय व्याख्या विस्तार से वर्णित है। तृतीय मे आरण्यक यज्ञ के गूढ रहस्य की व्याख्या करता है। आरण्यको का महत्व इस लिए भी है कि उसमे वर्णित आध्यात्मिक–ज्ञान का चरम निदर्शन उपनिषदो मे है। वेद का–अतिम और चतुर्थ विभाग उपनिषद् के नाम जाने गये है। वेद का अन्तिम विभाग होने कारण के उपनिषदो को 'वेदान्त' भी कहते है। उपवेद, वेदाङ्ग वेदो के सहायक ग्रन्थ है। वैदिक साहित्य का विवरण निम्न है–

वेद	ब्राह्मण	आरण्यक	उपनिषद
१ ऋग्वेद	१ ऐतरेय २ कौषीताकि	१ ऐतरेय २ कौषीताकि	१ ऐतरेयोपनिषद् २ कौषीतकि उपनिषद् ३ वाष्कलोपनिषद्
2. यजुर्वेद	तैत्तिरीय	तैत्तिरीय	1. तैत्तिरीयोपनिषद् 2. महानारायणो पनिषद् 3. मैत्रायणीयोपनिषद् 4. कठोपनिषद् 5. श्वेताश्वतरोपरिषद्
2. शुक्ल यजुर्वेद	शतपथ	वृहदारण्यक	1. वृहदारण्यकोपनिषद् 2. ईशावास्योपनिषद्
3. सामवेद	1. ताण्ड्य 2. षड्विश 3. जैमिनीय		1. छान्दोग्योपनिषद् 2. केनोपनिषद्
4. अथर्ववेद	गोपथ		1. प्रश्नोपनिषद् 2. मुण्डकोपनिषद् 3. माण्डूक्योपनिषद्

शिक्षा, कल्प, निरूक्त, छन्द, ज्योतिष एव व्याकरण ६ वेदाङ्ग है। इनके द्वारा वेद के वास्तविक स्वरूप को समझने मे सुगमता होती है। वेदो से सम्बद्ध अनुक्रमणियो मे ऋषियो, देवताओ, छन्दो एव अन्य विषयो का विस्तृत वर्णन है। शौनक के दस ग्रन्थ है।

"आर्षानुक्रमणी, (२) छन्दोऽनुक्रमणी,देवतानुक्रमणी, अनुवाकानुक्रमणी, सूक्तानुक्रमणी, ऋग्विधान पादविधान, वृहद्देवता, प्रातिशाख्य तथा शौनक स्मृति।"

नोट ·

---

(1).इन ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य ब्राह्मणो के नाम भी प्राप्त होते है—

(2) ऋग्वेदीय ब्राह्मण—वाष्कल, माण्डूकेय, पैङ्ग.ण्य, केमति, सुलभ, पराशर, शैलाली।

(क) शुक्ल युजर्वेदीय ब्राह्मण - जाबाल।

(ख) कृष्ण यजुर्वेदीय ब्राह्मण - चरक, श्वेताश्वतर— करण्क, मैत्रायणी,, हरिद्रावक, आहवरक, खण्डिकेय, तुम्बुरू, आरूणेय, औखेय।

इसके अतिरिक्त कात्यायनकृत सर्वानुकमणी, शुक्लयजु. सर्वानुक्रम सूत्र प्रमुख है।

वैदिक साहित्य में ऋग्वेद का स्थान

वैदिक साहित्य मे ऋग्वेद का स्थान सर्वाधिक महत्व का है। तैत्तिरीय सहिता के अनुसार साम तथा यजुष् के द्वारा किया गया विधान शिथिल हो जाता है। परन्तु ऋक् द्वारा विहितानुष्ठान दृढ रहता है। मैक्सम्यूलर (2)ने ऋग्वेदाध्ययन की आवश्यकता पर प्रकाश डाला है। विन्टरनिट्ज(3.)के अनुसार उपलब्ध ऋग्वेद विशाल साहित्य का मात्र एक अश है जिसमे धार्मिक मन्त्रो का सङ्क.लन है।

(3) सामवेदीय ब्राह्मण - सामविधान, आर्षेय, देवताध्याय, सहितोषनिषद्, भाटलवि, शैरुकि, कालबवि, कार्षेय, करद्विष।

(4)अथर्ववेदीय ब्राह्मण– विखर्व।

(2)वैदिक साहित्य और सस्कृति पृ० स० ३७६ (बल्देव उपाध्याय)

नोट .

---

(1)"यद् वै यज्ञस्य साम्ना यजुषा क्रियते शिथिल तत् यत् ऋचा तदृढ हि ।" तै० स०।

(2)"As long as man Continues to take an interest in the history of his race and as long as we called in libraries and museums the relics of former ages, the First place in that long row of books which contains the records of the Aryan branch of mankind, will belong forever to the Rigveda." A History of Ancient Sanskrit and literature. P.S.57.

(3) " That the songs Hymns and the poems of the Rigveda which have come down to us are only fragmentory portion of a much more extensive poetic literature, both Religious and secular,

History Indian literature. P.S.56

ऋ० १०/८५/११–

ऋग्वेद संहिता का अर्थ

ऋग्वेद मे स्तुतिपरक मन्त्रो का सङ्कलन है, अत ऋच्यते स्तूयते अनयेति ऋक् यह ऋक् की व्युत्पत्ति मानी जाती है। वृच् धातु का अर्थ चमकना होता है, वृच् का ही रूपान्तर ऋच् है, जिसका मूलार्थ अग्नि प्रज्जवलित करना है। शतपथ ब्राह्मण (1) मे अग्नि से ऋग्वेद की उत्पत्ति का उल्लेख मिलता है। आर्य अग्नि पूजक थे। अतएव प्रारम्भ मे ऋक् का अर्थ अग्निपूजा का मन्त्र था। चूकि ऋग्वेद मे अग्नि के अतिरिक्त अन्य देवताओ की भी स्तुतियॉ है । अत ऋक् का अर्थ पूजा या स्तुतिपरक मन्त्र है। पूर्वमीमासानुसार–- अर्थानुसार पादव्यवस्था ऋक् है। सहिता शब्द सघ, सम्मिश्रण, समूह, सकलन, सग्रह अर्थो मे प्रयुक्त होता है। अत ऋग्वेद सहिता का अर्थ हुआ स्तुतिपरक ज्ञान का सकलन। ऋग्वेद (3) दशम मण्डल मे सर्वप्रथम ऋक् का प्रयोग प्राप्त होता है। ऋग्वेद के मन्त्र के लिये ऋचा (4) का प्रयोग द्वितीय मण्डल मे हुआ है।

(1) " अननेर्ऋग्वेद ' (अजायत)' श०ब्रा० ११/५/८/३/

(2) "तेषामृक् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था'। पूर्वमीमासा २/१/३५

(3) " [illegible] " ।

(4) " देव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजुयक्षतः, समृचावपुष्टरा।

ऋ०२/३/७

ऋग्वेद की शाखायें

स्थान, काल, व्यक्ति, अध्ययन - अध्यापन की दृष्टि से ऋग्वेद की विभिन्न शाखाये प्रचलित हुई। महर्षि पतञ्जलि (१) के अनुसार ऋग्वेद की २१ शाखाये थी। चरणव्यूह ने शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, शारवायन तथा माण्डूकायन शाखाओ को प्रमुख माना है। सम्प्रति ऋग्वेद की शाकलशाखा ही उपलब्ध है। श्रीविद्यालङ्क.ार शाकल्य ऋषि को शााकल नगरी (स्यालकोट) का निवासी मानते है। शाकल सहिता मे १०१७ मन्त्र है। वाष्कल शाखा अब अप्राप्य है। वाष्कल शाखा मे शाकल शाखा से आठ मन्त्र अधिक है। (२) कवीन्द्राचार्य (१७वी शती) ने आश्वलायन सहिता का उल्लेख किया है।

नोट :

---

(१) "एकविशतितया वाहवृच्यम्" । पतञ्जलि

(२) "एतत्—- सहस्र दशसप्तचैवाष्ठावतो वाष्कलोधिकानि"

अनुवाकानुक्रमणी

ऋ २/२६/

अष्टक क्रम - मण्डल क्रम

शाखाभेद के कारण ऋग्वेद के विभाग उपलब्ध होते है अष्टक क्रम और मण्डल क्रम अष्टक क्रम मे –अष्टक, अध्याय, वर्ग, मन्त्र (ऋचा) रूप मे ऋग्वेद का विभाजन किया गया है, जबकि मण्डल–क्रम मे मण्डल, अनुवाक, सूक्त, मन्त्र (ऋचा) के रूप मे विभाजन है।

अष्टक - क्रम

अष्टक	अध्याय	वर्ग	मन्त्र
१	८	२६५	१३७०
२	८	२२१	११४७
३	८	२२५	१२०६
४	८	२५०	१२८६
५	८	२३८	१३६३
६	८	३३१	१७३०
७	८	२४८	१२६३
८	८	२४६	१२८१
योग ८	**६४**	**२०२४**	**१०५५२**

(१) **इनमें बालखिल्य के १६ वर्ग सम्मिलित हैं। खिल का अर्थ होता है शेष (बचा हुआ)**

मण्डल क्रम

मण्डल	अनुवाक	सूक्त	मन्त्र
१	२४	१६१	२००६
२	४	४३	४२६
३	५	६२	६१७
४	५	५८	५८६
५	६	८७	७२७
६	६	७५	७६५
७	६	१०४	८४१
८	१०	१०३	१७१६
६	७	११४	११०८
१०	१२	१६१	१७५४
योग = १०	८५	१०२८	१०५५२

इसमे बालखिल्य के ११ सूक्त सम्मिलित है।

अष्टक - क्रम की अपेक्षा मण्डल --क्रम अधिक वैज्ञानिक तथा विचारपूर्वक विभाजित किया गया प्रतीत होता है। इसीकारण ऋग्वेद को - 'दशतयी या दाशतायी' की सज्ञा प्रदान की गयी है। शारीरिक भाष्य (१) तथा वृहत --हारीत --स्मृति मे क्रमश 'दाशतय्यो' तथा 'दशक्रमात्' (२) शब्द का प्रयोग हुआ है। मण्डल क्रम के अनुसार प्रत्येक ऋषि के मन्त्र एक ही सूक्त मे रखे गये है। अनुवाक मे भी एक वश के ऋषियो के सूक्त रखे गये है। यदि ऋषि के सूक्त की सख्या कम है तो उन्हे अलग अनुवाक मे रखा गया है, जबकि अष्टको अध्यायो एव वर्गो का प्रारम्भ एव समापन बिना किसी नियम के हो जाता है।
शौनक ऋषि के अनुसार ऋग्वेद मे १०५८० १/४ मन्त्र है। जबकि चरणब्यूह के अनुसार १०६८१ मन्त्र है। सम्प्रति ऋग्वेद मे १०५५२ मन्त्र, १५३८२६ शब्द तथा ४३२००० अक्षर प्राप्त होते है।

नोट :

---

(१) -"दाशतय्यों दृष्टा."- १/३/३० शाकर, शारीरिक भाष्य।

(२) "ऋग्वेद संहिताया तु मण्डलनि दश क्रमात्।"

१०/६३ बृहतहारीत - स्मृति।

ऋग्वेद का काल निर्धारण

ठोस साक्ष्य न मिलने के कारण ऋग्वेद का काल निर्धारण अत्यन्त दुष्कर कार्य है। सक्षेप मे कतिपय विद्वानो का निष्कर्ष विचारणीय है। वेद को अनादि (१) एव सृष्टिपूर्व माना गया है। बाल गगाधर तिलक ने ज्योतिष के आधार पर ऋग्वेद का काल ६०००– ४००० ई०पू० माना गया है। अविनाश चन्द्र गुप्त ने भूगोल का आधार मानकर ऋग्वेद का काल लाखो वर्ष पूर्व होना निश्चित किया है। –

मैक्सम्यूलर ने १२०० ई० पू० ऋग्वेद का काल निर्धारित किया था। लेकिन अपनी मान्यता का खण्डन ३० वर्ष पश्चात् करते हुए उन्होने ३००० ई०पू० से पहले का होना स्वीकार किया। मैकडॉनल ने १३००–१००० ई०पू०, व्यूलर ने २००० ई०पू०, याकोबी ने ३००० ई० पू०, थ्रेडर ने २००० ई० पू० का ऋग्वेद को माना है। काल –निर्णय के विषय मे ऋग्वेद का ई० पू० होना एकमत से स्वीकार किया गया है।

वेदाध्ययन की दृष्टि से १८३८–१८६३ ई० का काल महत्वपूर्ण रहा। १८३८ मे फ्रीडिक रोजन ने ऋग्वेद के प्रथम पॉच मण्डलो को प्रकाशित करवाया।

नोट

---

(१) "अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यत सर्वा प्रकृत्तय ।।
नाम रूपं च भूताना कर्मणां च प्रवर्तनम्।
वेद शब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वर ।।
सर्वेषा तु नामानि कर्माणि च पृथक्–पृथक् ।
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथकसस्थाश्च निर्ममे।।

ब्रह्मसूत्र १/३/२८ ।।

इमेन बर्नफ ने यूरोप मे वेदाध्ययन का प्रचार किया। उनके शिष्य रूडाल्फ रॉथ जिनकी पुस्तक "ZW Littertor Und GescHıHTedes weda "

वैदिक साहित्य के इतिहास तथा भाषा विज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। सर्वप्रथम सम्पूर्ण ऋग्वेद का सम्पादन – (१८६१ - १८६३ ई०) थामस अल्फ्रेट ने किया। बर्नफ के शिष्यो मे मैक्सम्यूलर का नाम उल्लेखनीय है। उन्होने सायण भाष्य के आधार पर सम्पूर्ण ऋग्वेद का सम्पादन किया।

ऋग्वेद का द्वितीय – मण्डल वश मण्डल या "Famıly Book" के अर्न्तगत है। ऐसा पाश्चात्यो का अभिमत है। दो से सात मण्डल एक ही ऋषि–वश के द्वारा दृष्ट मन्त्रो के सकलन के कारण वश मण्डल कहलाते है।

द्वितीय मण्डल मे ४ अनुवाक्, ४३ सूक्त तथा ४२६ मन्त्र (ऋचाये) है।

सकल द्वितीय मण्डल गृत्समद ऋषि और उनके वश ज - शौनक आङ्गिरस, शौनहोत्र, भार्गव भार्गव, सोमाहुति भार्गव और कूर्म आदि के द्वारा ही पूर्ण है।

नोट .

---

(1)"The majority of the oldest hymns are to be found in book II to VIII which are usually called the "Family-Book' because each is associated by Tradition to a Particular family of singers."

विन्टरनिट्ज -

वेदों के भारतीय और पाश्चात्य व्याख्याकार

वेदो मे ज्ञान का वह अक्षय भण्डार है जिसने प्राचीनकाल से ही अनेक विद्वानो को अपनी ओर आकृष्ट कियाहै। ब्राह्मणो को वेदो का व्याख्यान ग्रन्थ कहा गया है। ब्राह्मणो मे वैदिक कर्मकाण्ड का सविस्तार वर्णन किया है। शब्दो और अनुवाद को ध्यान मे रखते हुए वेदो पर अनेक भाष्य लिखे गये है। दुर्भाग्य से अनेक भाष्य अप्राप्त है। ऋग्वेद के जिन प्रमुख भाष्यकारो का वर्णन उपलब्ध होता है, उनका विवरण निम्न है–

स्कन्दस्वामी - स्कन्दस्वामी को ऋग्वेद का प्राचीनतम भाष्यकार माना गया है। उनके ऋग्वेद भाष्य के प्रथमाष्टक मे प्राप्त विवरण के अनुसार ज्ञात होता है कि ये गुजरात प्रान्त के "वलभी" के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम – "भतृध्रुव" था। शतपथ ब्राह्मण के भाष्यकार हरिस्वामी ने स्कन्दस्वामी को अपना गुरू माना। स्कन्दस्वामी का समय (६२५ ई०) के आसपास अनुमानत सिद्ध होता है।

नोट .

---

(1) बलभी विनिवास्येतामृगर्थागम् संहृतिम् भर्तृध्रुवसुतश्चक्रेस्कन्दस्वामी यथास्मृति।। ऋग्वेदभाष्य चतुर्थोष्टकः अष्टमोऽध्यायः पृ० सं० २२१८

(2) श्रीस्कन्दस्वाम्यस्ति में गुरुः।" शतपथ भाष्य ५/६/७

नारायण

स्कन्दस्वामी, नारायण तथा उद्‌गीथ को सयुक्त रूप से ऋग्वेद को भाष्यकार कहा गया है।

उद्‌गीथ

स्कन्दस्वामी के सहायक भाष्यकार के रूप मे उद्‌गीथ का विवरण प्राप्त होता है। उद्‌गीथ कर्नाटक के 'वनवासी' नामक स्थल के निवासी थे।

वेङ्क.टमाधव

ने सम्पूर्ण ऋग्वेद पर अपना भाष्य लिखा। चतुर्थ अष्टक के उनके भाष्य के आधार पर ज्ञात होता है कि इनके पिता — श्री 'वेङ्कटार्य' थे।

सायण

सायण का वेदो के भाष्यकारो मे सर्वाधिक महत्वूपर्ण स्थान है। सायण विजयनगर राज्य के सस्थापक महाराज 'बुक्का' और 'हरिहर' के महामात्य थे। सायण के पिता का नाम 'मायण' माता 'श्रीमती अथवा 'श्रीमायी' ज्येष्ठभ्राता—'माधवाचार्य' कनिष्ठभ्राता'भोगनाथ' और ३ पुत्र कपड, मायण तथा शिङ्गण थे। इन सभी का विवरण सायण के ग्रन्थो मे मिलता है। सायण ने वैदिक साहित्य पर भाष्य (२) लिखे है।

नोट

(1)ऋगर्थदीपिका सेय चतुर्थश्चायमष्टक ।

कर्ता श्रीवेङ्क.टार्थस्य तनयो माधवाहय ।।

ऋग्वेद भाष्य चतुर्थो अष्टको अष्टमोऽध्याय. पृ० स० २२१८

(2) (१) तैत्तिरीय स० (कृष्ण यजुर्वेद की)

2)ऋ०सं० (३) सामवेद स० (४) काण्व स०

(५) अथर्ववेद सं०

(६) सायण के द्वारा व्याख्यात ब्राह्मण और आरण्यक—

क–कृष्ण यजुर्वेदीय ब्राह्मण

१–तैत्तिरीय ब्राह्मण २–तैत्तिरीय आरण्यक

ख– ऋग्वेदीय ब्राह्मण

१–ऐतरेय ब्राह्मण २ ऐतरेय आरण्यक

ग सामवेदीय ब्राह्मण

१ ताण्ड्य (पञ्चविंश) महाब्राह्मण

२ षड्विंश ब्राह्मण

३ सामविधान ब्राह्मण

४ देवताध्याय ब्राह्मण

५ आर्षेय ब्राह्मण

६ उपनिषद् ब्राह्मण

७ सहितोपनिषद् ब्राह्मण

८ वंश ब्राह्मण

घ शुक्ल यजुर्वेदीय ब्राह्मण

६. शतपथ ब्राह्मण–– 'वेद भाष्य भूमिका सग्रह–

पृ०स० ३१–३

सायण के अन्य ग्रन्थ है–

सुभाषित - सुधानिधि, प्रायश्चित -–सुधानिधि, आयुर्वेद -–सुधानिधि, अलङ्कार–- सुधानिधि, पुरुषार्थ–- सुधानिधि, माधवीया धातृवृत्ति आदि। सायण की ऋग्वेद की व्याख्या अति सरल है। भाषा ऋजु है।

यथावसर शब्दो की व्युत्पत्ति, कथानक का विस्तार, यज्ञ–पद्धति का विश्लेषण किया गया है। वेद ज्ञानार्थ सायण भाष्य अवश्यमेव पठनीय है।

मुद्गल–- सायण के अनुयायी थे। ऋग्वेद के प्रथमाष्टक एव चतुर्थाष्टक के पॉच अध्यायो परमुद्गल का भाष्य प्राप्त होता है।

शाकल्य - ने ऋग्वेद का पदपाठ किया है। वर्तमान समय (आधुनिक काल) मे शङ्कर पाण्डुरङग दीक्षित ने ऋग्वेद–- की व्याख्या का कार्य क – 'वेदार्थ यत्न' नामक ग्रन्थ मे प्रारम्भ किया था, जो 'मराठी और ऑग्ल भाषा' मे है। उनकी असामयिक मृत्यु से यह कार्य ऋग्वेद के तृतीय मण्डल पर्यन्त ही हो सका।

लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक ने वैदिक आलोचना का ' ओरायन' और 'आर्कटिक होम इन द वेदाज' ग्रन्थ लिखा। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आध्यात्मिक पद्धति पर आधारित 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' का प्रणयन किया। श्री अरविन्द की पुस्तक 'Hymns To The mystic Fire" वेदो के आध्यात्मिक तथ्यो का स्पष्ट निरूपण करती है । श्री अविनास चन्द्र दास ने ऑग्ल भाषा मे 'Rigvedic India' नामक पुस्तक लिखी। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर–ने 'ऋग्वेद मे सुबोध भाष्य' नामक ग्रन्थ राष्ट्रभाषा हिन्दी मे लिखा। इसकी भाषा सरल है और ऋग्वेद के हिन्दी अनुवाद मे इस ग्रन्थ का महत्वपूर्ण स्थान है।

श्री राम गोविन्द त्रिवेदी ने ऋग्वेद का 'हिन्दी' श्री रमेश चन्द्र ने 'बगला' तथा सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव ने मराठी मे अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त स्वामी विश्वेश्वरानन्द ने चारो वेदो की 'पद–सूची' प्रकाशित की। स्वामी करपात्री जी ने 'वेदार्थ परिजात' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। आचार्य बल्देव उपाध्याय की 'वैदिक साहित्य और सस्कृति' तथा श्री गजानन्द शास्त्री मुसलगॉव कर एव प० गजेश्वर केशव शास्त्री का 'वैदिक साहित्य का इतिहास' पठनीय है। डा० सूर्यकान्त का 'वैदिक कोश' विश्वबन्धु का 'वैदिक पदानुक्रम कोश' भगवद्दत्त का 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास ' हसराज 'भगवद्दत का 'वैदिक कोश' श्री राम कुमार राय द्वारा अनुदित ग्रन्थ वेदाध्ययन मे अति सहायक है। पाश्चात्यो मे मैकडॉनल, मैक्सम्यूलर, विल्सन, कीथ, राथ, बेवर, प्रभृति विद्वान् उल्लेखनीय है।

द्वितीय मण्डल में प्रयुक्त छन्द

श्चद् धातु का अर्थ प्रसन्न करना, और प्रसन्न होना है। इससे हरिश्चन्द्र पुरुश्चन्द्र, सुश्चन्द्र पद बने है। श् का लोप होने से अधिकतर पद चद् हो गया , जिससे चन्दन, चन्द्र पद बने हे इसीलिए कथन की एक विशिष्ट शैली छन्दस् है। छन्दस् का अर्थ कहने का अहलादकारी ढग है। 'छादनात् छन्द' ब्रह्म वाग् को आच्छादित करने के कारण छन्द सज्ञा होती है। ये छन्दअनेकविध हुआ करते है गायत्री मूल छन्द है। जिसमे २४ अक्षर होते है। इसमे ४–४अक्षर और योग करने से उष्णिक् अनुष्टुप् आदि छन्द बनते जाते है, वैदिक छन्द गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्। वृहती, पक्ति, त्रिष्टुभ, जगती आदि छन्द परिगणित किये गये है। इनमे भी न्यूनाधिक्य अक्षर समाम्नाय के योग से छन्द होते जाते है। छन्दो की विवरण तालिका निम्नवत् है–

नोट.–

(१)

(अ) छन्दासि छादनात् – निरूक्त ७/१६

(ब) यदेभिरात्मानमाच्छादयन् देवामृत्योर्विभ्यत., तच्छन्दसा छन्दस्वम्। दुर्गाचार्य

वैदिक साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३५५

प्रधान वैदिक छन्द

नाम	पाद				
१ गायत्री	८ अक्षर	८	८		
२ उष्णिक्	८	८	१२		
३ पुरउष्णिक्	१२	८	८		
४ ककुप्	८	१२	८		
५ अनुष्टुप्	८	८	८	८	
६ बृहती	८	८	१२	८	
७ सतोबृहती	१२	८	१२	८	
८ पङ्क्ति	८	८	८	८	८
६. प्रस्तार पङ्क्ति	१२	१२	८	८	
१० त्रिष्टुभ्	११	११	११	११	
११ जगती	१२	१२	१२	१२	

छन्द वेद का पञ्चम अङ्ग है। वेद के मन्त्रो के उच्चारण के निमित्त छन्द–शास्त्र का ज्ञान बहुत ही आवश्यक है। छन्दो का बिना ज्ञान हुए मन्त्रो का उच्चारण तथा पाठ सम्यक् नही हो सकता। प्रत्येक सूक्त मे देवता, =ऋषि तथा छन्द की सत्ता अनिवार्य रूप से मानी गयी है। कात्यायन का यह स्पष्ट कथन है कि————

' जो व्यक्ति छन्द, =ऋषि तथा देवता के ज्ञान से हीन होकर मन्त्र का अध्ययन, अध्यापन, यजन तथा याजन करता है, उसका यह प्रत्येक कार्य निष्फल ही होता है।'[१]

प्रधान छन्दो के नाम सहिता तथा ब्राहमणो मे उपलब्ध होते है, जिससे प्रतीत होता है कि इस अङ्ग की उत्पत्ति वैदिक युग मे ही हो गयी थी। इस वेदाङ्ग का प्रतिनिधि ग्रन्थ है पिङ्गलाचार्य कृत छन्द सूत्र। आचार्य पिङ्गल के काल का निर्धारण करना असम्भव बना हुआ है इनके ग्रन्थ मे आठ अध्याय है और सूत्र रूप मे निबद्ध किया गया है। आरम्भ से चतुर्थ अध्याय के ७वे सूत्र तक वैदिक छन्दो के लक्षण दिये गये है, तदनन्तर लौकिक छन्दो का वर्णन है। इसके ऊपर भट्ट हलायुध कृत 'मृतसञ्जीवनी' नामक व्याख्या प्रसिद्ध है।

ऋ० के द्वितीय मण्डल मे प्रयुक्त विभिन्न छन्दो का विवरण निम्न है——

नोट.–

(१) यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दो – दैवत–ब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वा अध्यापयति वा स्थाणु वर्च्छति गर्ते वा पात्यते प्रमीयते वा पापीयान् भवति। सर्वानुक्रमणी १।१।

छन्द.

		नाम	सख्या
१		**गायत्री छन्द**	
	१	गायत्री	१६
	२	निचृद् गायत्री	२५
	३	विराट गायत्री	५
	४	विरूडपिपीलिका मध्य गायत्री	१
	५	निचृत् पिपीलिका मध्य गायत्री	१
	६	त्रिपाद् गायत्री	२
२.		**उष्णिक्**	
	१	उष्णिक्	१
	२	भुरिक् उष्णिक्	१
	३	ब्राह्मयुष्णिक्	१
३		**अनुष्टुप्**	
	१	अनुष्टुप्	५
	२	निचृदनुष्टुप्	३
	३.	विराट् अनुष्टुप्	१
४		**त्रिष्टुप्**	
	१.	त्रिष्टुप्	६५
	२	निचृद् त्रिष्टुप्	६७
	३	भुरिक् त्रिष्टुप	३१
	४	विराट् त्रिष्टुप्	४२
	५	स्वराट् त्रिष्टुप्	६
५		**बृहती**	
	१.	बृहती	३
	२.	भुरिक् बृहती	२
	३.	स्वराड् बृहती	१
६.		**जगती**	
	१.	जगती	३०
	२.	निचृद् जगती	२२
	३.	विराट् जगती	३१
	४	भूरिक् जगती	१
	५.	स्वराड् जगती	१
७.		**पङ्क्ति**	
	१	पङ्क्ति	१५

	२	निचृद् पक्ति	११
	३	भुरिक् पक्ति	२२
	४	स्वराड् पक्ति	१२
	५	विराड् पक्ति	१
	६	आर्षी पक्ति	५
८		**अष्टि**	
	१	अष्टि	१
६		**शक्वरी**	
	१	निचृदति शक्वरी	१
	२	भूरिगति शक्वरी	२
	३	स्वराड् शक्वरी	१
	कुल छन्दों की संख्या		**४३५**

द्वितीय - अध्याय

ऋग्वेदसंहिता ः द्वितीय मण्डल

[अनुवाक–4;सूक्त-43; मन्त्र-429]

वैदिक देवता ः स्वरूपविवेचन (चारित्रिक वैशिष्ट्य)

अग्नि

अग्नि' (अग्–नि) शब्द की व्युत्पत्ति, सम्भवतः,/ 'अञ्ज् कान्तौ' (चमकना,प्रकाशित होना) धातु से 'इ' प्रत्यय होने पर निष्पन्न मानी गयी है, इसी धातु से पदविकास के प्रसड्ग मे 'अड्गार, 'अड्ग', 'अड्गिरस्, इत्यादि शब्द तुलनार्थ उल्लेखनीय है।

'अग्नि' ही वह प्रमुख पृथिवी स्थानीय देव है, जिसे वेदो के सस्कारित काव्य के केन्द्रभूत यज्ञीय अग्नि के मूर्त्तीकरण के रूप मे स्वाभाविक रूप से सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है। 'अग्नि देव की स्वरूपगत एव चारित्रिक विशेषताओ का विवेचन ऋग्वेदीय द्वितीय मण्डल मे सूक्त–१ से १० तक समग्रतया एव स्वतन्त्र रीति से किया गया है। इसके अतिरिक्त, अन्य देवो के साथ सम्मिलित रूप से भी 'अग्नि' का आह्ववान किया गया है।

वैदिक देवताओ मे 'अग्नि' प्रधान देव है। 'अग्नि' का अर्थ है–वह देव,जो यज्ञ मे प्रदान की गई हवि को देवताओ तक पहुँचाता है। चूँकि 'अग्नि' का नाम नियमित रूप से साधारण अग्नि का ही द्योतक है, अत ,'अग्नि' की मानवाकृति का वर्णन सामान्य रूप से यज्ञीय अग्नि को ही लक्ष्य करके किया गया है। 'अग्नि' का धर्म है–प्रकाशित होना। यह अड्गारमय है, प्रकाशमय है ("अड्गिरा", "राजन्तम्")। 'अग्नि' का पृष्ठ धृतनिर्मित है ("घृतपृष्ठ")अग्नि'घृत मुख है तथा द्युतिमान् जिहवा वाला है। 'अग्नि' के तीन सिर होते है; 'अग्नि'का नेत्र 'घृत'है। 'अग्नि' सात रश्मियो से युक्त है [१]। यह सभी दिशाओ की ओर उन्मुख है ["प्रत्यड् विश्वानि भुवनान्यस्थात्"-[२]। 'अग्नि' का रथ भी है–स्वर्णिम तथा प्रकाशमय। 'अग्नि' अपने रथ पर यज्ञगृह मे बलिग्रहणार्थ देवताओ को बैठाकर लाता है। यह अपने उपासको का सर्वदा सहायक होता है और प्रार्थनाओ से प्रसन्न होकर यह यजमान के पापो को दूर करता है। 'अग्नि' को प्राय. विभिन्न पशुओ के भी साथ समीकृत किया गया है, किन्तु, ऐसी स्थिति में, निश्चित रूप से, इसके व्यक्तिगत रूप की अपेक्षा इसके कार्य को ही ध्यान मे रखा गया है। प्राय 'अग्नि' की अश्वो से तुलना की गयी है, अथवा, प्रत्यक्ष रूप से 'अश्व' ही कहा गया है। इसकी पूँछ, जिसे यह अश्वो की भॉति हिलाता है ["अस्य रण्वा स्वस्येव पुष्टि . . . . . . न रथ्यो दोघवीति वारान्।।"[3],निस्सन्देह, इसकी ज्वाला ही है। यही वह 'अश्व' है, जिसे स्तोतागण पालना एव निर्देशित करना चाहते है ["होताजनिष्ट चेतन पिता पितृभ्य ऊतये। "[४]। 'अग्नि' को उस उस'अश्व' की भॅाति प्रज्वलित किया जाता है, जो देवो को लाता है। इसे यज्ञस्थल के स्तम्भ के साथ सन्नद्ध किया जाता है।[५]। इसके अतिरिक्त, 'अग्नि'एक पक्षी के समान है। यह पखयुक्त है[६] इसका पथ एक उड,नमार्ग है और यह तीव्र गति से देवताओ के प्रति गमन करता है। किञ्च,'अग्नि'की प्राय अनेक जड, पदार्थो से भी तुलना की गयी है। 'सूर्य' की भॅाति यह भी स्वर्ण के समान है।

नोट.1-[ऋ,2-5-3] 2-[ऋ०,2-3-1] 3-[ऋ०,2-3-1] 4-[–ऋ, 2-5-1] 5-[ऋ,2-2-1] 6-[ऋ,2-2-4]

["समिधान सुप्रयस स्वर्णर द्युक्ष होतार वृजनेषु धूर्षदम्"[१]। यह रथ के समान है,अथवा, प्रत्यक्ष रूप से ,यह सम्पत्ति का आनयन करने वाला रथ ही कहा गया है। 'अग्नि'की धन से,अथवा, वशानुक्रम द्वारा प्राप्त धन से भी तुलना की गयी है।

काष्ठ (अथवा,घृत) 'अग्नि' का भोजन है और तरल घृत इसका पेय है ["द्रवन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः"[२]। इसके मुख मे डाले गये घृत से यह पुष्ट होता है। कभी—कभी इसे वह मुख कहा गया है,जिससे देवगण हविष्य का भक्षण करते है। ["त्वा रातिषाचो अध्वरेषु सश्चिरे त्वे देवा हविरदन्त्या हुतम्" [3] तथा, "त्वे अग्ने विश्वे अद्रुह अमृतासो आसा देवा हविरदन्त्याहुतम्" ।[४] यद्यपि 'अग्नि' का नियमित हविः ईधन अथवा घृत है,तथापि कभी—कभी और अन्य देवताओ। के साथ प्रायः सदा ही इसे सोम—पान के लिए भी निमन्त्रित किया गया है ["आ वक्षि देवॉ इह भागस्य तृप्णुहि।।" [५]।'अग्नि' को यज्ञगृह मे आने के लिए निमन्त्रित किया गया है तथा अनेकशः देवताओ के साथ इसे भी यज्ञीय कुशासन पर आसीन अभिहित किया गया है।

'अग्नि'अद्भुत प्रकाश वाला है ["चित्र—भानुः "[6]; यह भास्वर ज्वालाओ वाला है, इसका वर्ण भास्वर है। 'अग्नि' हिरण्यरूप है; यह 'सूर्य' की भॉति प्रकाशित होता है। इसकी प्रभा 'उषा' ,'सूर्य' एव 'विद्युत्' के समान है। 'अग्नि' का भ्रमण-पथ, सञ्चार-मार्ग तथा चक्रधार आदि सभी कृष्ण वर्ण वाले है

["कृष्णाध्वा तपू रण्वश्चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नमोभिः"—[7] तथा, "अग्निः शोचिष्मॉ . . . ..कृष्णव्यथिरस्वदयन्न भूम"—[८]। 'वायु' के द्वारा प्रेरित होकर यह वनो के बीच अग्रसर होता है। यह वनो पर आक्रमण करता है तथा पृथ्वी के केशो (अर्थात्, वनस्पतियो) को उसी प्रकार साफ कर देता है, जिस प्रकार कोई नापित दाढी को। 'अग्नि' की ज्वलाये समुद्र की गर्जनशील लहरो के समान है। इसकी ध्वनि वायु अथवा आकाश के गर्जन के समान है। जब 'अग्नि' वन्य वृक्षो पर आकमण करता है, तब एक वृषभ की भॉति गर्जन करता है और इसकी वनस्पतियो को आत्मसात् कर लेने वाली चिनगारियो की ध्वनि से प्राणिजात भयभीत हो जाते है। मरुतो के शब्द, आक्रणशील सेना अथवा आकाशीय वज्र के समान इसे भी रोका नही जा सकता ।

'अप्', उषस्', 'त्वष्टा', 'द्यावापृथिवी' तथा 'विष्णु' को 'अग्नि' का उद्भावक माना गया है। यह दो अरणियो के सघर्ष से उत्पन्न होता है। 'अग्नि' को कभी 'द्यावापृथिवी का पुत्र', तो कभी 'द्यौः का सूनु' कहा गया है। 'अपा नपात्' के रूप मे 'अग्नि' एक स्वतन्त्र देवता ही है। 'अग्नि' का जन्मस्थान स्वर्ग है' जहॉ से 'मातरिश्वा' ने मनुष्यो के कल्याणार्थ इसका भूतल पर आनयन किया ; अथवा, 'इन्द्र' ने दो पत्थरो के बीच से 'अग्नि' को उत्पन्न—किया [६]। प्रायः ऐसा भी कहा गया है कि 'अग्नि' को देवो ने केवल मनुष्यमात्र के लिए निर्मित किया, अथवा, इसे मनुष्यो के बीच स्थित किया ["अग्नि देवासो मानुषीषु विक्षु प्रिय धुः ...."-[१०]। परन्तु ,साथ ही साथ,'अग्नि' देवो का पिता भी है।

'अग्नि' उत्पन्न करने के लिए शक्तिशाली घर्षण की आवश्यकता के कारण ही सम्भवतः 'अग्नि' को प्रायः "सहसः पुत्र/सूनु" ('शक्ति का पुत्र') कहा गया है। इसकी पुष्टि उस कथन से होती है,जिसमे कहा गया है कि "शक्तिपूर्वक ('सहसा') घर्षण करने से मनुष्यो द्वारा 'अग्नि' पृथ्वी पर उत्पन्न होता है।" पुरानो के विपरीत, 'अग्नि' के नवीन जन्म होते रहते है। वृद्ध हो जाने पर, पुनः एक युवा के रूप मे जन्म लेता है ["स चित्रेण चिकिते रसु भासा जुजुर्वॉ यो मुहुरा युवा भूत् ।।"[११]।

नोट.

1-[ऋ०,2-2-4]	4-[ऋ०,2-1-14]	7-[ऋ०,2-4-6]	10--[ऋ०,2-2-3]
2-[ऋ०,2-7-6]	5-[ऋ०,2-36-4]	8-[ऋ०,2-4-7]	11-[—ऋ०,2-4-5]
3-[ऋ०,2-1-1]	6-[ऋ०,2-10-2]	9-[ऋ०,2-12-3;ऋ०,2-1-1]—	

प्रायः, सामान्य रूप से, 'अग्नि' को वनो से पौधो के भ्रूण के रूप मे उत्पन्न कहा गया है ["त्व गर्भो वीरूधा जज्ञिषे शुचिः" [1]। जब 'अग्नि' को वृक्षो और पौधो का भ्रूण कहा गया है ["त्व वनेभ्यस्त्वमो-षधीभ्यः"[2],तब वहॉ वनो मे वृक्षो की शाखाओ के घर्षण द्वारा उत्पन्न 'अग्नि' का परोक्ष आशय सम्भाव्य है।

'अग्नि' को प्रायः अन्य देवो और मुख्यतः 'वरूण' तथा 'मित्र' के साथ भी समीकृत किया गया है ["त्वमग्ने राजा वरूणो धृतव्रतस्त्व मित्रो भवसि दस्म ईड्यः"[3]। जब यह जन्म लेता है, तब 'वरूण' होता है और जब प्रदीप्त होता है, तब 'मित्र' । एक स्थल पर 'अग्नि' को पॉच देवियो के अतिरिक्त क्रमशः एक दर्जन देवो के साथ भी समीकृत किया गया है [४]। 'अग्नि' विभिन्न दिव्य रूप धारण करता है और इसके अनेक अभिधान है। इसी मे समस्त देवो को स्थित माना गया और यह समस्त देवो को, तीलियो को चक्रधार के समान,आवृत कर धारण करता है, ऐसा भी कहा गया है।

'अग्नि' ही वह देवता है, जिसको पूर्वजो ने प्रदीप्त किया और जिसकी वे लोग स्तुति करते ये । इसी प्रसङ्ग मे, 'भरत की अग्नि' ["भारताग्ने द्युमन्तमा भर" [5] भी प्राप्त होता है।

यज्ञ सम्पन्न कराने वाले के रूप मे प्रधान वैदिक कर्म के फलस्वरूप पृथ्वी के पुरोहितो के एक दिव्य प्रतिरूप की भॉति ही 'अग्नि' की प्रशस्ति की गयी है। 'होतृ', 'अध्वर्यु', 'ब्रह्मन्' इत्यादि तथा अन्य विशिष्ट अभिधानो वाले विभिन्न मानवीय ऋत्विजो के सभी कार्यो के एकत्र कर प्रतिपादित किया गया है ["त्वाग्ने होत्र तव पोत्रमृत्विय तव नेष्ट्र त्वमग्निदृतायतः। तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे ।।"[६]। पौरो-हित्य-'अग्नि' के चरित्र का,वस्तुतः, एक सर्वाधिक विशिष्ट गुण है।।

'अग्नि' का ज्ञान सर्वातिशायी है। यह समग्र उत्पन्न प्राणिजातो को जानता है, अतः, यह 'जातवेदाः', यद्वा, 'जातवेदस्' के नाम से प्रख्यात है। समग्रज्ञानसम्पन्न यह ज्ञान को उसी प्रकार आवृत कर धारण करता है, जिस प्रकार चक्रधार पहिये को ["परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभवत्"[७]। ज्ञान को 'अग्नि' ने जन्म लेते ही अर्जित कर लिया है। "विश्वविद्", "विश्ववेदस्", "कवि" तथा "कविक्तु" इत्यादि विशेषणो को प्रमुखतः 'अग्नि' के ही साथ सम्बद्ध किया गया है। 'अग्नि' को "श्रेष्ठ वाणी का आविष्कर्ता" भी कहा गया है ["त्व शुक्रस्य वचसो मनोता"[८]। किञ्च, इसे एक गायक ('जरितृ') भी अभिहित किया गया है।

यद्यपि 'अग्नि' एक भारोपीय शब्द है, तथापि इस नाम के साथ इसकी उपासना सर्वथा भारतीय है। 'अग्नि' का मानव जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। कोई भी यज्ञ—यागादि 'अग्नि' के अभाव मे अनुष्ठित नही किया जा सकता। सम्पूर्ण गृहकृत्य के लिए 'अग्नि' की महती आवश्यकता है। अग्नि के माध्यम से ही इस ससार मे प्रकाश का अविर्भाव हुआ है। वैदिक युग में ऋषियो के समक्ष 'अग्नि' की सर्वाधिक उपादेयता सिद्ध हुई है। इसी लिए, वैदिक ऋषि 'अग्नि'—देव से अपनी उन्नति एव कल्याण की प्रार्थना करता है। फलत 'अग्नि' की वैदिक देवताओ मे प्रधानता के विषय मे किसी प्रकार का सन्देह नही किया जा सकता।

नोटः
1-[ऋ,2-1-14]
2-[ऋ०,2-1-1]
3-[ऋ०,2-1-4]
4-[ऋ०,2-1-2 से]
5-[—ऋ०,2-7-1]
6-[—ऋ०,2-1-2]
7-[—ऋ०,2-5-3]
8-[—ऋ०,2-9-4]

इन्द्र

'इन्द्र' ('इन्द्र'–र) शब्द,/ इन्द्र इन्ध् दीप्तौ' धातु से 'र' प्रत्यय होने पर व्युत्पन्न माना गया है। वृष्टि और प्रकाश का अधिदेव 'इन्द्र' वैदिक आर्यो का महनीय राष्ट्रीय देव है। 'इन्द्र', वस्तुत वैदिक आर्यो का युद्धाधिदेव है। ऋग्वेदीय द्वितीय मण्डलान्तर्गत 11 वे से लेकर 22 वे तक के सभी सूक्तो मे 'इन्द्र' की महत्ता का गुणगान किया गया है। इसके अतिरिक्त, अन्य अवश्कोटीय देवताओ, यथा–'मधु' 'नभ', 'वायु' एव 'ब्रहमणस्पति' इत्यादि– के साथ सम्मिलित रूप से भी इसका स्तवन अनेकश उपलब्ध होता है। जिस प्रकार 'अग्नि' और 'सूर्य' क्रमश 'पृथ्वी–लोक' एव 'द्युलोक' के अधिपति है, उसी प्रकार 'इन्द्र' 'अन्तरिक्ष लोक' (मध्य स्थान) का अधिपति है, और, 'अग्नि'–इन्द्र (यद्धा,वायु)–सूर्य की त्रयीमे यह 'वायु' का प्रतिनिधि है।

'इन्द्र' के अनेक दैहिक वैशिष्ट्यो का बहुश उल्लेख मिलता है। 'इन्द्र' का एक शरीर है, एक सिर तथा भुजाये और हाथ है। सोमपान करने की इसकी शक्ति के सन्दर्भ मे इसके उदर का भी प्राय उल्लेख किया गया है। "जठरे सोम तन्वी ३ सही महो हस्ते वज्र भरति शीर्षणि क्रतुम" [१]। 'इन्द्र' स्वय भूरे रग का देव है तथा इसके बाल और दाढी भी भूरी है। यह अपने पराक्रम से समस्त देवो को अभिभूत कर देता है। तथा उत्पन्न होते ही देवो मे अग्रगण्य स्थान प्राप्त कर लेता है, इसके पौरूष की महिमा से द्युलोक एव पृथ्वी लोक कॉप गये। "यो जात एव प्रथमो 'मनस्वान्'

स जनास इन्द्र ।।"[२] 'इन्द्र' आर्यो को अनार्यो के विरूद्ध युद्ध मे सहायता प्रदान करके विजयी बनाता है। आर्यो को विजय प्रदान करने वाले देव होने के कारण 'इन्द्र' की भव्य स्तुतियॉ बल एव ओज के वर्णन से परिपूर्ण है। जिसके बिना मनुष्य जीत नही सकता, युद्ध के अवसर पर सहायता के लिए जिसका आह्वान किया जाता है, अच्युत को च्युत करने वाला वह ही 'इन्द्र' है ("यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो स जनास इन्द्र ।।"[३] इसी लिए 'इन्द्र' अपने अपूजको और विरोधियो का वध करता है। 'इन्द्र' अपने भक्तो की रक्षा एव सहायता करता है।

'वज्र', अनन्यत केवल 'इन्द्र' क ही अस्त्र माना गया है। 'ऐतरेय ब्राहमण (4/1) मे कहा गया है। कि देवो ने ही 'इन्द्र' को वज्र प्रदान किया था। 'इन्द्र' के लिए 'वज्रभृत' "वज्रिवत्", "वज्रदक्षिण", "वज्रहस्त" तथा "वज्रिन", इत्यादि विशेषण व्यवहृत किये गये है।

यद्यपि सामान्य रूप से सभी देव 'सोम' के प्रेमी है, तथापि 'इन्द्र' इसका सबसे प्रमुख व्यसनी है। यह देवो तथा मनुष्यो मे सर्वाधिक सोमपान करने वाला है, सोम इसका प्रिय पोषक पेय है, इस कारण "सोमपा", "सोमपावन", इत्यादि बहुश प्रयुक्त विशेषण इसके ही वैशिष्ट्य है। प्राय यह कहा गया है कि 'सोम' 'इन्द्र' को महत्तम दिव्य कार्य, यथा पृथ्वी और आकाश का धारण,–पृथ्वी का विस्तारण आदि, करने की उत्तेजना प्रदान करता है। ("अवशे द्यामस्तभायद .

मद इन्द्रश्चकार।।"[४] किन्तु, यह ("सोम") विशिष्टत, इन्द्र को युद्ध – अभियान, जैसे – वृत्रासुर का वध करने, अथवा शत्रुओ पर विजय प्राप्त करने के लिए उत्साहित करता है ["प्रधान्वस्य – करता है। (प्रधान्वस्य महतो महानि .

. मदे अहिमिन्द्रो जघान।।"[५] तथा, "अस्य मन्दानो मध्वो .. . नदीना चक्रमन्त।।"[६]

'इन्द्र' अनेक देवताओ के साथ सयुक्त रूप से भी निर्दिष्ट है, विशेषकर 'मरुतो' ("मरुत्वन्त्" इन्द्र का विशिष्ट अभिधान), 'अग्नि' तथा 'वरूण' के साथ। इसकी शक्ति अतुलनीय है, जिसे न तो किसी मनुष्य ने प्राप्त किया है और न किसी देवता ने। इसी वैशिष्ट्य के कारण यह "शचीपति", "शक्र" (='बल का अध्यक्ष'), "शाचीवन्त्" एव "शतक्रतु" ('शत शक्तियों से सम्पन्न') इत्यादि विशेषणो का अधिकारी भाजन है।

नोट 1.[ऋ०,2-16--2] 2.[ऋ०,2-12--1] 3.[ऋ०,2-12--9] 4.[ऋ०,2-15--1]
5.[ऋ०,2-15--1] 6.[ऋ०,2-19--2]

'इन्द्र' का जन्म ऐसे रथ पर हुआ है, जो स्वर्णिम है तथा विचार से भी वेगवान् है। "रथेष्ठा" विशेषण एकमात्र 'इन्द्र' के लिए ही उपयुक्त माना गया है। 'इन्द्र' का रथ दो हरे रग ('हारी') के अश्वो द्वारा वहन किया जाता है। अश्वो की सख्या दो से अधिक, सौ और यहाँ तक कि एक सहस्र अथवा ग्यारह सौ तक होने का भी उल्लेख है ["आ द्वाभ्या हरिभ्यामिन्द्र सवने मादयस्व।।[१]"—। ये अश्व द्रुत गति से बडी-बडी दूरियाँ पार करते है और 'इन्द्र' का उसी प्रकार वहन करते है, जिस प्रकार उत्क्रोश पक्षी को उसके पख ["न क्षोणीभ्या परिभ्वे यदाशुभिः पतसि योजना पुरू।।"[२]। ये स्तुति द्वारा सन्नद्ध होते है ["हरी नु क रथ इन्द्रस्य योजमायै सूक्तेन वचसा नवेन।"[3], जिसका निस्सदेह अर्थ यह है कि स्तवन के द्वारा ही 'इन्द्र' यज्ञ तक आगमनशील होता है।

इन्द्र' की महत्ता तथा शक्तिमत्ता की सर्वथा उन्मुक्त रूप से प्रशसा की गयी है। जन्म ले चुके अथवा जन्म लेने वालो मे से कोई भी 'इन्द्र' से समता नही कर सकता। न तो प्राचीन और न अर्वाचीन प्राणी ही इसके शौर्य की समता कर सकते है। न तो देव, न मनुष्य और न जल ही इसके पराक्रम की सीमा तक पहुँच सके है। यह देवो मे भी अतिश्रेष्ठ है। शक्ति तथा पराक्रम मे सभी देव इससे कम है। सभी देव इसके कृत्यो तथा इच्छाओ को विफल कर सकने मे अक्षम है। [ऋ०,2-32-4][४]। केवल 'इन्द्र' ही समस्त ससार का सम्राट् है। यह सभी गतिशील वस्तुओ तथा जीवित प्राणियो का अधिपति है। इसने अस्थिर 'पृथिवी' को स्थैर्य प्रदान किया, इधर—उधर उडते हुए पर्वतो का पख-छेदन करके उनको तत्तत् स्थानो पर स्थापित किया। इसने 'द्युलोक' को भी स्तब्ध किया है तथा 'अन्तरिक्ष' का भी निर्माण किया है। यह भी कहा गया है कि 'इन्द्र' ने दो पत्थरो के बीच से 'अग्नि' को उत्पन्न किया है ["यो अश्मनोरन्त-रग्नि जजान";[5] 'इन्द्र' ने ही 'सूर्य' एवम् 'उषस्' को भी उत्पन्न किया है। इसने बल का प्रदर्शन करने वाले 'अहि' को मार कर सात नदियो को प्रवाहित होने के लिए उन्मुक्त किया है["सृजो महीरिन्द्र वावृधनः।।"[6]; इसने जल मे छिपे हुए तथा जल और आकाश को अवरूद्ध करने वाले दैत्य का वध किया है ["गुहा हितम् गुह्य . . . .. अहि शूर वीर्येण।।"[7];और, जल को आवृत कर रखने वाले 'वृत्र' पर वज्र से उसी प्रकार प्रहार किया, जिस प्रकार किसी वृक्ष पर किया जाता है ["अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवास वृत्र जघानाशन्येव वृक्षमृ।"[८]। इसी लिए, "अप्सुजित्" एकमात्र 'इन्द्र' का ही विशेषण अभिहित किया गया है।

इन्द्र' ने भयवशात् पर्वतो मे छिपे हुए 'शम्बर'-सज्ञक असुर को चालीसवे वर्ष मे ढूँढ निकाला और अपने विकट वज्र से उसका वध कर दिया ["यः शम्बर पर्वतेषु क्षियन्त चत्वारिंश्या शरद्यन्वविन्दत्। ओजायमान यो अहि जघान दानु शयान स जनास इन्द्रः।।"[६]। इसने गायो तथा 'सोम' को जीता और सप्त-नदो को प्रवाहित किया, स्वर्ग मे चढते हुए 'रौहिण'-सज्ञक असुर को भी 'इन्द्र' ने ही अपने 'शरू' नामक वज्र से मार डाला था ["यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान् . . . . स जनास इन्द्रः।।"[१०]। 'इन्द्र' ने ही जलधाराओ के प्रवाहित होने के लिए अपने वज्र से पथो का निर्माण किया["सद्मेव प्राचो वि मिमाय . . . . मद इन्द्रश्चकार।।"[11];तथा बाढ के जल को समुद्र में वहाया["स माहिन इन्द्रो अर्णो अपा प्रैरयद्दहिहाच्छा समुद्रम्।"[१२]। प्रवहित काराई गई नदियाँ,निःसन्देह, प्रायः पार्थिव ही है, किन्तु, यह भी सन्देह के परे है कि जल और नदियो की प्रायः दिव्य अथवा अन्तरिक्षीय होने की कल्पना की गयी है[द्र०[१३]। यह भी कहा गया है कि 'वृत्र' पर आक्रमण करने के लिए देवताओ ने 'इन्द्र' का बलवर्द्धन किया, अथवा, 'इन्द्र' मे पराक्रम तथा शौर्य उत्पन्न किया,अथवा, 'इन्द्र' मे पराक्रम तथा शौर्य उत्पन्न किया, अथवा, 'इन्द्र' के हाथ मे 'वज्र' प्रदान किया ["तस्मै तवस्य 1मनु. ... . नि तारीत् ।।"[१४]। झञ्झावात के प्रसङ्ग मे यह कहा गया है कि इन्द्र ने आकाशीय विद्युत का सृजन किया। ["यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव"[15]; और, जल के नीचे गिरने की क्रिया का निर्देशन किया।[१६]

नोट 1.[ऋ०2-18–4 से 72] 2 –ऋ०,2-16-3] 3.[ऋ०,2-18-3] 4.- [ऋ०,2-32-4] 5. [ऋ०,2- 12-3]
6.[ऋ०,2-11-2] 7.[ऋ०,2-11-5] 8.[ऋ०,2-14-2] 9.[ऋ०,2-12-11] 10.[ऋ०,2-12-12]
11.[ऋ०,2-15-3] 12.[ऋ०,2-19-3] 13.[ऋ०,2-20-8;ऋ०,2-22-4] 14.[ऋ०,2-20-8]
15.[ऋ०,2-13-7 16.[ऋ०,2-17-5]

प्रायः,सामान्य रूप से, 'इन्द्र' को एक सहानु-भूतिपूर्ण सहायक, अपने स्तोताओ का मुक्तिदाता और समर्थक, उनकी शक्ति और सुरक्षा की प्राचीर आदि के रूप मे प्रदर्शित किया गया है। प्रायः 'इन्द्र' को अपने स्तोताओ का मित्र कहा गया है, यह देव पवित्र व्यक्तियो को धन-धान्य से समृद्ध करता है ["सो अप्रतीनि सूर्यस्य सातौ।।[1] तथा "दाता राध स्तुवते काम्य वसु सत्य इन्दुः।।"[2] और, इसलिए भी इसकी स्तुति की गयी है कि अन्य स्तोताओ द्वारा इसका ध्यान दूसरी ओर न चला जाये ["मो षु त्वामत्र यजमानासो अन्ये।।"[3]। सभी व्यक्ति इसके उपकारो से लाभान्वित होते है। उदारता की इसके चरित्र की इतनी अधिक विशिष्टता माना गया है कि 'मघवन्' यह बहुप्रयुक्त विशेषण केवल इसके लिए ही व्यवहृत हुआ है। इसी प्रकार, 'वसुपति' विशेषण भी प्रमुख रूप से 'इन्द्र' के लिए ही प्रयुक्त हुआ है

समग्र रुप से देखने पर, 'इन्द्र' के वैशिष्ट्यो मे प्रमुखतया भौतिक ससार पर प्रभुत्व और प्राकृतिक श्रेष्ठता का भाव ही द्योतित होता है। 'इन्द्र' एक सार्वभौम सम्राट है, जिसका शक्तिशाली हाथ विजय अर्जित करता है, जिसकी अक्षय उदारता मानवमात्र को श्रेष्ठतम समृद्धियॉ प्रदान करती है और जो उल्लासप्रद महान् सोम-यज्ञो मे अतिशय आन्नद का अनुभव करता है तथा स्तुतियो को सम्पन्न करने वाले पुराहित-वर्ग पर समृद्धियो की वर्षा करता है। 'इन्द्र' की प्रतिष्ठा आर्यों के जातीय तथा राष्ट्रीय देवता के रूप मे हुई है। इस प्रकार,निः सन्देह, यह कहा जा सकता है कि वैदिक देवताओ मे 'इन्द्र' का सर्वोच्च स्थान है। इसी लिए,परवर्ती साहित्य मे इन्द्र' को देवताओ का राजा माना गया है तथा अनेक पौराणिक ग्रन्थो मे यह वृष्टि के अधिदेव के रूप मे प्रख्यात है।

नोट. 1-[ऋ०,2-19-4] 2-[ऋ०,2-22-3] 3-[ऋ०,2-18-3]

बृहस्पति/ब्रह्मणस्पति

व्युत्पत्तिदृष्ट्या, 'बृहस्पति' शब्द का प्रथम अश ,/ 'बृह् वर्धने' धातु से निष्पन्न 'बृह्' शब्द का षष्ठी एक-वचनान्त रूप है, फलतः,'बृहस्पति पद का अर्थ है— 'मन्त्र या प्रार्थना का अधिपति (देव)'। इसका दूसरा नाम 'ब्रह्मणस्पति' (= मत्र का स्वामी) भी है। 'बृहस्पति/ब्रह्मणस्पति' के वैशिष्ट्यो का निरूपण सूक्त-सख्या 23 से 26 तक के सभी मन्त्रो मे किया गया है, 24 वे सूक्त के 12 वे मन्त्र मे यह देव 'इन्द्र'के साथ सयुक्त रूप से स्तुत हुआ–है। इसके अतिरिक्त, 30 वे सूक्त के 9 मत्र में भी 'बृहस्पतिदेव' का अकेले ही स्तवन किया गया है।

'बृहस्पति' के शारीरिक वैशिष्ट्यो का कोई विशेष परिचय प्राप्त नहीं होता है। यह देव स्वय सुवर्ण के समान देदीप्यमान है। गणो का

अधिपति होने से 'बृहस्पति' ही 'गणपति' के विशेष अभिधान से विभूषित हुआ है ["गणाना त्वा गणपति हवामहे नः श्रृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्।।"[1]। 'बृहस्पति' के पास एक ऐसा धनुष है, जिसकी प्रत्यञ्चा ही 'ऋत' है और यह श्रेष्ठ बाण रखता है ["ऋतज्येन क्षिप्रेण . . . . दृशये कर्णयोनयः।।"[2] और, यह देव ऐसे 'ऋत'-रूपी रथ पर खडा होता है,जो राक्षसो का वध करता है, गाय के गोष्ठो को तोडता है और प्रकाश को विजित करता है[" आ विबाध्या परिरापस्तमासि गोत्रभिद स्वर्विदम्।।"[3]। इसके रथ का, अरुणिम अश्व,वहन करते हैं।

'बृहस्पति'एक पारिवारिक पुरोहित है["स सनयः स विनयः पुरोहितः"—[४]। यह 'ब्रह्मन्',अथवा, स्तुति करने वाला पुरोहित भी है। 'बृहस्पति' उपासना की भावना को विकसित करता है तथा इसकी कृपा के बिना यज्ञ सफल नहीं होते। उत्तम मार्गो का निर्माण करने वाले के रूप मे यह देवो के यज्ञ तक पहुॅचना सुगम बना देता है ["त्व नो गोपाः पथिकृद् [5] अस्य देववीतये कृधि।।"[६]। देवो तक ने इसी से अपना यज्ञ-भाग प्राप्त किया][७]। यह यज्ञ के द्वारा देवों को जागृत करता है। यह ऋचाओ का गायन करता है, और, 'छन्द' इसकी सामग्री हैं। यह गायको के साथ सम्बद्ध हैं। इसे एक गाने वाले (ऋक्वन्) दल ('गण') के साथ सयुक्त किया गया है, निः सन्देह, इसी कारण इसे 'गणपति' अभिहित किया गया है।

जैसा कि 'ब्रह्मणस्पति' नाम से प्रकट होता है, यह देव 'स्तुतियो (अथवा,मन्त्रो) का स्वामी' है। द्रष्टाओ में सर्वप्रसिद्ध द्रष्टा और स्तुतियो के श्रेष्ठतम अधिराज के रूप मे भी इसका वर्णन किया गया है[८] 'ऋत'-रूपी रथ पर आरूढ होकर यह देवो और स्तुतियो के शत्रुओ को विजित करता है;[९] तथा, "त्रातार त्वा तनूना . . सुम्नमुन्नशन्।।"[१०]। कुछ स्थलो पर 'बृहस्पति' को 'अग्नि' के साथ समीकृत किया गया प्रतीत होता है। 'अग्नि' की भॅाति, 'बृहस्पति' भी एक पुरोहित है, जिसे 'शक्ति का पुत्र' तथा 'अङ्गिरस्' भी कहा गया है। 'बृहस्पति' भी राक्षसो को भस्म अथवा उनका वध करने वाला है[११]।

गायों को मुक्त करने से सम्बन्धित 'इन्द्र' के आख्यान मे, 'अग्नि' की भॅाति, 'वृहस्पति को भी दृढ रूप से अवस्थित एव सम्मिलित कर लिया गया है। "अडिगरस् बृहस्पति" ने जब गोष्ठो को खोला और 'इन्द्र' को साथ लेकर अन्धकार से आवृत जलस्रोतों को मुक्त किया, तब पर्वत इसके वैभव के अधीन हो गया ["तव श्रिये व्यजिहीत . . . . निरपामौब्जो अर्णवम्।।"—[१२]। जो कुछ दृढ था, वह शिथिल हो गया, जो शक्तिशाली था, वह इसके अधीन हुआ, इसने गायो को बाहर निकाला, स्तुतियों द्वारा 'बल' को विदीर्ण किया, अन्धकार को अवरुद्ध करके आकाश को दृश्य किया, पाषाणमुख मधु से परिपूर्ण जिन कूपो का 'वृहस्पति' ने अपने पराक्रम से भेदन किया, जब वह प्रचुर जलधाराओ की वर्षा कर रहा था, तब उनका देवताओं ने पान किया ["तद्देवाना देवतमाय .. .. सिसिचुरुत्स मुद्रियम्।।" [१३], इसने गायो को बाहर निकाला और उन्हें आकाश में वितरित कर दिया।

नोट. 1- [ऋ०2-23-1] 4-[ऋ०2-24-9] 7-[ऋ०2-23-1] 10-[ऋ०2-23-8]
2-[ऋ०2-24-8] 5-[ऋ० 2-23-7] 8-[ऋ०2-23-1] 11-[ऋ०2-23-18]
3-[ऋ०2-24-9] 6-[ऋ०2-23-1-7] 9-[ऋ०2-23-3] 12-[ऋ०2-23-18]
13-[ऋ०2-23-18]

"यो गा उदाजत्स– शवसासरत्पृथक् ।।" [1] । ये गाये जलो का, जिनका स्पष्टतया उल्लेख हुआ है [2]अथवा, सम्भवत 'उषा' की 'रश्मियो का प्रतिनिधित्व कर सकती है।

'गायो को मुक्त करने के प्रसड्ग मे 'बृहस्पति' अन्धकार मे प्रकाश ढूँढता है तथा प्रकाश को प्राप्त करता है। इसने अन्धकार को भगाया, अथवा, छिपाया, और प्रकाश को आविर्भूत किया ।[3] इस प्रकार, 'वृहस्पति' अधिक सामान्यतया युद्धोपम प्रवृत्तियाँ अर्जित कर लेता है। इसने सम्पत्ति से भरे हुए पर्वत का भेदन किया और 'शम्बर' के गढो को खोल दिया ["यो नन्त्वा समानतया वसुमन्त वि पर्वतम्।।"[४]। यह युद्ध मे शत्रुओ को समाप्त करता है[५]। युद्ध के समय इसका आह्वान किया गया है[6] और यह ऐसा पुरोहित है , जिसकी सघर्ष के समय अनेकशः स्तुतियाँ होती है [७]।

'इन्द्र' का साथी और मित्र होने के कारण, 'बृहस्पति' का प्रायः 'इन्द्र' के साथ ही आह्वान किया गया है [८]। 'इन्द्र' के साथ अधिकतर सयुक्त रूप से प्रशसित होने के कारण, 'इन्द्र' के अनेक विशेषण, जैसे——"मघवन्" (=दानशील) [६]तथा "वज्री" इत्यादि इसे प्रकृत्या प्राप्त है। यह 'इन्द्र' के साथ सोमपान करता है, औार, 'इन्द्र' एक ऐसा देव भी है, जिसके साथ यह युगल देव के रूप मे स्तुत हुआ है [१०]।

'बृहस्पति' उस व्यक्ति पर अनुग्रह करता है, जो इसकी स्तुतियाँ करता है ["जातेन जातमति स प्रसर्सृते य य युज कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ।।" [11] किन्तु जो स्तुतियो से घृणा करता है, उस पर 'बृहस्पति' कोप करता है ["ब्रह्मद्विषस्तपनो .. तत्ते महित्वनम्।।"[१२]। यह पवित्र व्यक्तियो को समस्त सड्न्कटो, विपत्तियो, शापो तथा यन्त्रणाओ से सुरक्षित रखता है और उन्हे सम्पत्ति तथा समृद्धि से परिपूर्ण करता है ["सुनीतिभिर्नयसि ... . . . मतिभिस्तारिषीमहि।।"[१३]। अपने उपासको को यह दीर्घ आयुष्य प्रदान करता है——यह कहना व्यर्थ है।

'बृहस्पति', विशुद्ध रूप से, एक भारतीय देवता है। यह, मूलतः, यज्ञ सम्पन्न कराने वाले दिव्य पुरोहित के रूप मे 'अग्नि' के ही एक ऐसे पक्ष का प्रतिनिधित्व करता था, जिसने ऋग्वैदिक काल के प्रारम्भ मे ही एक स्वतन्त्र प्रकृति को विकसित कर लिया था, यद्यपि 'अग्नि' के साथ इसका सम्बन्ध सर्वथा विच्छिन्न नही हो सका है। कतिपय विचारको के अनुसार, यह पौरोहित्य-प्रधान देवता स्तुति की शक्ति का प्रत्यक्ष प्रतिरूप है, जिसने पूर्ववर्ती देवो के कृत्यो को भी स्वीकार कर लिया है। 'बृहस्पति' को प्रायः 'इन्द्र' से पृथक् किया हुआ उसका पुरोहित रूप माना गया है दिव्य 'ब्रह्मन् पुरोहित के रूप मे, 'बृहस्पति' हिन्दू-त्रयी का प्रमुख देव 'ब्रह्मा' प्रतीत होता है, जबकि इसी शब्द का नपुसक रूप 'ब्रह्म' वेदान्त-दर्शन के 'पर ब्रह्म' के रूप मे विकसित हो गया है।

नोट. 1-[ऋ, २–२४–१४] 4-[ऋ०2-24-2] 7-[ऋ०2-24-9] 10-[ऋ०2-24-12] 13-[ऋ०2-23-4 से 10]

2-[ऋ, २–२३–१८] 5- ["ऋ०2-23-11] 8-[ऋ०2-23-18; 2-24-2]11-[ऋ०2-25-1];

3-[ऋ०2-24-3] 6-[ऋ०2-24-9] 9-[ऋ०2-24-12] 12-[ऋ०2-23-4]

आदित्य

व्युत्पत्तिदृष्ट्या विचार करने पर,वैदिक देववर्गवाचक 'आदित्य' शब्द देवमाता-वाचक 'अदिति' शब्द से अपत्यार्थक 'ण्य'-प्रत्यय होने

पर निष्पन्न हुआ सम्भव प्रतीत होता है। ऋ०,2/27——यह सम्पूर्ण सूक्त, देवो का वह वर्ग, जिसे 'आदित्य' कहा जाता है,की स्तुति मे समर्पित किया गया है, इसके अतिरिक्त, प्रायः कतिपय अन्य सूक्तो के स्फुट मन्त्रो मे भी आशिक रूप से आदित्यो का स्तवन उपलब्ध होता है।

कौन-कौन से देव आदित्यो के अन्तर्गत आते है। और उनकी सख्या कितनी है, ये दोनो ही बाते अनिश्चित है। कही भी छः से अधिक आदित्यो का वर्णन नही है, और, केवल एक बार 'मित्र', अर्यमन्', 'भग','वरूण', 'दक्ष' तथा 'अश', [द्र०—][1] को "आदित्य" कहा गया है। 'ऋग्वेदः द्वितीय मण्डल' के उस सूक्त (2/27) मे, जहाँ समग्रशः आदित्यो की प्रशस्ति की गयी है, केवल सर्वाधिक उल्लिखित 'मित्र', 'वरूण' तथा अर्यमन्' आदि तीन का ही अभिप्राय मुख्यतः प्रतीत होता है।

जो कुछ भी दूर है, वही इनके लिए निकट है, ये लोग उसी भॉति सभी स्थावर-जड्गम का पोषण करते है, जिस प्रकार देवगण विश्व की रक्षा करते है ["त आदित्यास उरवो गभीरा चयमाना ऋणानि।।"——।[2] ये लोग मनुष्यो के हृदयो मे स्थित सभी पाप-पुण्यादि भावो को देखते और सच्चे-झूठे का विभेद करते हैं। ["अन्तः पश्यन्ति परमा चिदन्ति ।।"[3]। ये लोग मिथ्यावादिता से घृणा करते है। तथा पाप करने वाले को दण्डित करते है। [4]। पाप को क्षमा करने, अथवा, पाप के परिणाम का निराकरण करने के लिए इनका स्तवन किया गया है["अदिते मित्र वरूणोत . . .अभि नशन्तमिस्राः।।"—[5]। ये लोग अपने शत्रुओ के लिए पाशो को फैला कर रखते है ["या वो माया . . .. . . रिपवे विचृत्ताः।" [6] किन्तु, अपने उपासको की उसी प्रकार रक्षा करते है, जिस

प्रकार पक्षी पर फैला कर अपने बच्चो की रक्षा करते है। ये लोग व्याधियो और विपत्तियो को भगाते है और लाभकर वस्तुएँ, यथा—प्रकाश, दीर्घ जीवन, सन्तति, मार्गदर्शन, इत्यादि प्रदान करते है ["माह मघोनो वरूण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विद शूनमापेः ।।"—[7] इत्यादि]।

इनके वैशिष्ट्य का वर्णन करने वाले विशेषण इस प्रकार हैः——'शुचि', 'हिरण्यय', 'भूर्यक्ष' (=अनेक नेत्र-युक्त) , 'अनिमिष', 'अस्वप्नज्', 'दीर्घधी' इत्यादि। ये लोग राजा, शक्तिशाली ('क्षत्रिय'), विस्तृत ('उरू'), गहन (गभीर', 'अरिष्ट', दृढ विध ाानो वाले ('धृतव्रत', आक्षेपरहित ('अनवद्य'), पापरहित (अवृजिन'), शुद्ध ('धारपूत') तथा पवित्र ('ऋतावन्') हैं।

इनका नाम, स्पष्टतः, एक मातृनामोद्गत रूप है, जो इनकी माता 'अदिति' से निष्पन्न हुआ है, और, स्वाभाविक रूप से, माता 'अदिति' के साथ ही इनका प्राय आह्वान भी किया गया है। यास्क [निरुक्त, 2/13] द्वारा प्रस्तुत तीन व्युत्पत्तियो मे से "अदिते पुत्र इति वा" यह व्युत्पत्ति, निसन्देह, अन्यतम है।[8]। . . . . .

नोट.
1-[ऋ० 2-27-1]
2-[ऋ०,2-27-3 एव 4]
3- [ऋ०,2-27-3]
4-[ऋ०,2-27-4]
5-[ऋ०,2-27-14]
6-[ऋ०,2-27-16];
7-[ऋ०,2-27-17]
8-[ऋ, 2-28-4]

वरुण

'वरुण' शब्द की व्युत्पत्ति आच्छादनार्थक ',/ वृञ्-आवरणे' धातु से 'उनन्' प्रत्यय होने पर निष्पन्न मानी गयी है। "वृणोति सर्वम्" इस व्युत्पत्ति के अनुसार, 'वरुण' ही जगत् का आवरणकर्त्ता देवता है। ऋग्वेदीय द्वितीय मण्डल के अन्तर्गत सूक्त-28 सम्पूर्ण रूप से 'वरुण'-देव के स्तुत्यर्थ समर्पित किया गया है, इसके अतिरिक्त, 36 वे तथा 41 वे सूक्तो मे भी 'मित्र'–देव के साथ इसका स्तवन प्राप्त होता है।

' वरुण' वैदिक आर्यो का महनीय देव है। इसका मानवीय रूप एकान्त सुन्दर है। इसके शरीर तथा उपकरणो का वर्णन अधिक विस्तृत नही मिलता है, क्योकि इसके कार्यो पर ही विशेष बल दिया गया है। 'वरुण' समग्र ब्रह्माण्ड का समाट् (यद्वा, अधिपति) है देवो और मनुष्यो का समस्त ससार का तथा समस्त अस्तित्ववान् प्राणियो का। "त्व विश्वेषा वरूणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्त्ता [1]। 'वरुण, को "आत्मनिर्भर राजा" भी कहा गया है। अपेक्षाकृत अनेकबार 'वरुण को अकेले अधिकाशत 'मित्र' के साथ –साथ ही सम्राज" कहा गया है वरुण समस्त ससार का अभिभावक कहा गया है ("विश्वस्य भुवनस्य गोपा "–[2]वरुण विश्व का राजा या सम्राट है, जो प्रशासन करता है तथा नियमो का सञ्चालन करता है।

'वरुण' को "आत्मनिर्भर राजा" भी कहा गया है। "स्वराजो विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु महना"–[3],। यद्यपि यह शब्द सामान्यतया 'इन्द्र' के लिये ही प्रयुक्त किया गया है। वह जनता से शारीरिक एव चरित्रगत नियमो का पालन करवाता है। 'वरुण' ने 'सूर्य' की रचना की, अग्नि और जल का निर्माण किया तथा पर्वतो पर सोमवल्ली को उत्पन्न किया। 'वरुण' रात्रि तथा दिन का अधिष्ठाता है। 'वरुण' को प्राय जल का नियामक माना गया है। इसने ही नदियो को प्रवाहित किया, ये नदियॉ इसी के विधानो के अनुसार निरन्तर प्रवहित होती रहती है। 'प्र सीमादित्यो रघुया परिज्मन्।।' [4],।

'वरुण' के विधानो को नित्य ही सुदृढ कहा गया है और मुख्यत इसके लिए अकेले अथवा कभी–कभी 'मित्र' के साथ भी 'धृतव्रत'

विशेषण का प्रयोग किया गया है। 'मित्र' और 'वरुण' 'ऋत' तथा प्रकाश के अधिपति हैं और ये देव नियमेन नियमो के पालक हैं। 'वरुण' (अथवा आदित्यों) को कभी–कभी 'विधानो का अभिभावक' ("ऋतस्य गोपा") कहा गया है। 'नियमो का पालक' (ऋतावन्) विशेषण को जो कि मुख्यत 'अग्नि' के लिए ही प्रयुक्त हुआ है, अनेक बार 'वरुण' (तथा, 'मित्र') से भी सम्बद्ध किया गया है।

'वरुण' की शक्ति इतनी अधिक है कि न तो उडते हुए पक्षी और न प्रवहित होती हुई नदिया ही इनके क्षेत्र, पराक्रम तथा क्रोध की सीमा तक पहुच सकती है। न तो आकाश और न नदिया ही इसकी देवशक्ति की सीमा तक पहुच सकी हैं। सभी कुछ और सभी प्राणी 'वरूण' मे ही अवस्थित हैं। इसकी इच्छा के बिना कोई भी प्राणी हिल-डुल नहीं सकता ["अपो सु म्यक्ष . निमिषश्चनेशे।।"–[5]। यह आकाश और पृथ्वी पर तथा उसके बाहर भी जो कुछ है, उसे देखता है, अतः, आकाश के उस पार भाग कर भी कोई व्यक्ति 'वरूण' से बच नहीं सकता।

नैतिक नियन्त्रण के रूप मे'वरूण' का अन्य देवताओं की अपेक्षा कहीं अधिक ऊचॉ स्थान हैं पाप-कर्म करने तथा इसके विधानों का उल्लङ्घन करने से इसका क्रोध उद्दीप्त होता है और यह इन कार्यो के लिए कठोर दण्ड प्रदान करता है। जो लोग इसकी उपासना की उपेक्षा करते हैं, उन्हे यह विभिन्न व्याधियों से पीडित करता हैं इसके विपरीत, पश्चात्ताप करने वालो पर यह दयालु रहता है। यह रस्सी की भॉति सयुक्त करने वाला तथा पाप को दूर करने वाला है["वि मच्छ्रथाय . . पुर ऋतोः।।"[6]। यह ऐसे अभ्यर्थियों को भी क्षमा कर देता है, जो नित्य ही इसके नियमों का उल्लङ्घन करते हैं और उन लोगो पर भी अनुग्रह करता है, जो इसके नियमों का अनजान में उल्लङघन कर देते हैं। जिस प्रकार अन्य देवो को अर्पित मन्त्रो में उनसे सासारिक समृद्ध प्रदान करने की स्तुति की गयी है, उसी प्रकार, वस्तुतः,'वरूण' (तथा, अदित्यो) को अर्पित मन्त्रो मे से कोई भी ऐसा नहीं है, जिसमें अपराधों के लिए क्षमा करने की स्तुति न की गयी हो।

इस प्रकार, विश्व के नियामक, गुण-दोषों के द्रष्टा,पाप-पुण्यो के विवेचक एव कर्मानुसारी फलों के विधानकर्ता के रूप में सम्राट् 'वरूण' का स्थान, वैदिक देव-समुदाय में, निःसन्देह,' प्रजापति' के समकक्ष है।

नोट.

1-[ऋ., 2-27-10.]
2.[ऋ० 2-27-4]
3-[ऋ., 2-28-1]
4-[ऋ.2-2 4]
5 [-2-28-6]
6-[ऋ०2-28-5]

विश्वेदेवाः

'विश्वे देवाः' का अर्थ है, 'सम्पूर्ण देव———एतत्सञ्ज्ञक देवगणविशेष'। वैदिक देवताओ मे 'विश्वे देवाः'-सञ्ज्ञक देवताओ का महत्व शाली स्थान है। 'ऋग्वेद' मे वर्णित 33 देवता प्रधान है, जो 'द्युस्थानीय', 'पृथिवीस्थानीय' तथा 'अन्तरिक्षस्थानीय'——इन तीन वर्गो मे विभाजित किये गये है।

'विश्वेदेवा मे इन सभी वर्गो के देवताओ का ग्रहण किया जाता है। 'ऋग्वेदः द्वितीय मण्डल' के अन्तर्गत सूक्त-सख्या 29 तथा 31समग्र रूप से 'विश्वे देवाः' के स्तुत्यर्थ समर्पित किये गये है तथा सूक्त–सख्या 41 मे भी 13 से 15 तक के मन्त्रो मे 'विश्वे देवाः' का स्तवन उपलब्ध होता है।

'विश्वे देवाः', अथवा, सर्वदेवो का एक विस्तृत देवसमूह है, जिसका यज्ञ मे महत्वपूर्ण स्थान है। यह एक काल्पनिक यज्ञीय समूह है, जिसका प्रयोजन सभी देवो का प्रतिनिधित्व करना है, जिससे सभी देवो के लिए उद्दिष्ट स्तुतियो मे कोई देव छूट न जाये। किन्तु, कभी –कभी सर्व–देवो को एक सङ्कीर्ण समूह माना गया प्रतीत होता है, क्योकि, इनका वसुओ और आदित्यो जैसे अन्य देव–समूहो के साथ–साथ आह्वान किया गया है।[1]

'विश्वे देवाः' मानव का कल्याण करते है। सबके सो जाने पर ये हमारी रक्षा करते है। तथा सुख दु ख के क्रम के व्यवस्थापक है। सूर्य का नियमन और रात्रि का आगमन 'विश्वे देवा' के ही अधीन है। 'विश्वे देवा' देवताओ का समूह है और इसमे अनाहूत देवताओ का भी समावेश हो जाता है।

नोट : 1. [द्र०–ऋ०2-3-4]।

द्यावापृथिव्यौ

वैदिक देवताओ के स्वरूप–विवेचन के प्रसङ्ग मे, 'द्युलोक' तथा 'पृथ्वी लोक'—इनकी एक युगल देवता—'द्यावापृथिवी'–के रूप मे कल्पना की गयी है। 'द्यौः' के स्थान पर भी 'द्यावापृथिवी' शब्द का प्रयोग अधिकता से हुआ है। ऋग्वेदीय द्वितीय मण्डल मे 32 वे सूक्त के प्रथम मन्त्र मे तथा 41वे सूक्त के 19वे से 21वे तक के मत्रो मे 'द्यावापृथिवी' का स्तवन एवम् आह्वान किया गया प्रतीत होता है।

'द्यावापृथिवी' को 'रोदसी' के नाम से भी अभिहित किया गया है। 'द्युलोक' की पिता के रूप मे तथा 'पृथिवी लोक' की माता के रूप मे कल्पना की गयी है। ये दोनो अत्यन्त बुद्धिमान् है। तथा पिता के समान सबकी रक्षा करते हैं। 'द्यावापृथिवी' महान् देवता है। ये कभी भी वृद्ध नही होते, ये विस्तृत तथा लम्बे–चौडे है। ये सबको अन्न,धन,यश एव स्थान प्रदान करते है। ये सम्पूर्ण भूमण्डल की सर्वथा रक्षा करते है तथा आचरणो व नियमो का पालन करते है। ये शरीर के पोषक तत्व को प्रवर्धित करते है। यज्ञ के प्रसङ्ग मे, इन देवो के सम्बन्ध मे,यज्ञस्थल पर आकर आसीन होने की,द्युलोकवासियो के साथ अपने स्तोताओ के पास आने की,अथवा, यज्ञ को देवो तक पहुँचाने की कल्पना की गयी है["द्यावा नः पृथिवी इम सिघ्रमद्य दिविस्पृशम्। यज्ञ देवषु यच्छताम्।।[1]

'द्यावापृथिवी'—इन दोनो युगल देवताओ का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। ये दोनो ही देव बहुत कुछ समवर्गीय है। ये दोनो सदा एक साथ रहते है तथा एक दूसरे पर समान अधिकार रखते है। अन्य युगल देवताओ की अपेक्षा, निःसन्देह , यह युगल घनिष्ठतर सम्बन्धयुक्त है।

नोट : 1-[ऋ०2-41-20]

रुद्र

१ रुद्र झञ्झावात एव मृतात्माओ का अधिदेव माना गया है। 'रुद्र' शब्द की व्युत्पत्ति प्राय सर्वत्र ,/'रुद्र अश्रुविमोचने' रोना, चिल्लाना चीखना'– धातु से मत्वर्थीय 'रक्' प्रत्यय होने पर निष्पन्न बतलायी गयी है। 'रुद्र' शब्द की कतिपय अन्य व्युत्पत्तियॉ इस प्रकार सम्भाव्य है – (१) 'वृध् वृद्धौ'> रुध् 'र'> 'रूद्र', (2-)'क्रुध् क्रोधे'– 'र'>'रूद्र' ('क्'–लोप), तथा,(३) 'रूध् (लाल होना)' 'र'>'रूद्र', इत्यादि। 'रूद्र' शब्द की व्युत्पति के प्रसड्ग मे, 'रुधिर', 'रोहित', 'लोहित', 'लोध्र',तथा, ऑग्ल'red', 'ruddy' तथा 'reddish' इत्यादि शब्द तुलनार्थ उल्लेखनीय है। ऋग्वेद – द्वितीय मण्डल के अन्तर्गत केवल ३३ वा 'सूक्त ही 'रुद्र' देवता की स्तुति के सम्बन्ध मे समग्रशः उपलब्ध होता है।

'ऋग्वेद' मे 'रुद्र' देवता को एक गौण (यद्धा,अप्रधान) देवता के रूप मे वर्णित किया गया है। 'रुद्र' के दैहिक वैशिष्ट्यो का वर्णन इस प्रकार किया है ः इसके हाथ है।["क्व 1 स्य ते रूद्र मृळयाकुर्हस्तो"[२] भुजाये हैं["वज्रबाहो"–[३] और इसके हाथ–पैर सुदृढ है।यह सुन्दर अधरो वाला ["सुशिप्रो"–[४] है। इसका रूप अत्यन्त तेजस्वी है और यह विविधरूपमय है["पुरुरूप"[५]। यह जाज्वल्यमान् 'सूर्य' के समान तथा सुवर्ण के समान प्रदीप्त है। यह सुवर्णालड्कारो से सुशोभित ["शुक्रेभिःपिपिशे हिरण्यैः"––[६] तथा विविध रूपो वाले कण्ठहार ["निष्कम्"–[७] से बिभूषित रहता है। यह रथ के आसन पर आसीन है "गर्तसदम्"–[८]।

प्रायः रुद्र' के युद्ध–आयुधो का भी उल्लेख किया गया है। एक स्थान पर इसे अपने हाथो मे वज्र धारण किये हुए तथा शक्तिशाली कहा गया है ["तवस्तमस्तवसा वज्रबाहो"–[९]। सामान्य रूप से, इसे एक धनुष और ऐसे बाणो से सुसज्जित बताया गया है, जो शक्तिशाली तथा शीघ्रगामी हैं["अर्हन्बिभर्षि सायकानि . ओजीयो रुद्र त्वदस्ति।।"–[१०]।

'रुद्र' के सम्बन्ध मे, जिस एक तथ्य का सर्वाधिक बार उल्लेख है, वह है–मरुतो के साथ इसका सम्बन्ध। यह मरुतो का पिता है["आ ते पितर्मरुता सुम्नमेतु" [११] ;अथवा, अपेक्षाकृत मरुतो को ही इसका पुत्र तथा अनेक बार "रुद्र" या "रुद्रिय" कहा गया है। 'रुद्र' के सम्बन्ध मे, यह भी कहा गया है कि इसने ही मरुतो को 'पृश्नि' के उज्ज्वल पयोधर से उत्पन्न किया ["वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि"[१२] ।

'रूद्र' को भयडकर["उग्रः"[१३] तथा,"उग्रम"[१४] और हिसक पशु की भॉति विनाशक ["मृग न भीममुपहत्नुमुग्रम्"–[१५] कहा गया है। 'रूद्र' एक वृषभ है;[१६] यह महान शक्तिशाली तथा बलशालियों मे बलवत्तम [१७] और शक्ति मे अद्वितीय ["विश्वमभ्वम्"[१८] है। यह युवा[१९] है, तथा इसे 'असुर' अथवा आकाश का महान् 'असुर' कहा गया है। यह इस विस्तृत ससार का ईशान ("ईशानादस्य भुवनस्य भूरेः) है," तथा

नोट· 1-[ऋ० 2-41-20] 2-[ऋ० 2-33-7] 3-[ऋ० 2-33-3] 4-[ऋ० 2-33-5] 5-[ऋ० 2-33-9] 6-[ऋ० 2-33-9] 7-[ऋ० 2-33-10] 8-[ऋ० 2-33-11] 9-[ऋ० 2-33-3] 10-[ऋ० 2-33-10] 11-[ऋ० 2-33-1] 12-[ऋ० 2-34-2] 13-[ऋ० 2-33-9] 14-[ऋ० 2-33-11] 15-[ऋ० 2-33-11] 16-[ऋ० 2-33-7,8] और 15 17-[ऋ० 2-33-3] 18-[ऋ० 2-33-10] 19-[ऋ० 2-33-1]

इसे 'असुर' अथवा, ' आकाश का महान् असुर' कहा गया है। यह इस विस्तृत ससार का 'ईशान'["ईशानादस्य भुवनस्य भूरेः"–[१] तथा ससार का पिता है। इसका सरलता से आह्वान किया जा सकता है["त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम्"[२] और यह कल्याणकारी है। इसका स्तवन इसलिए भी किया जाता है कि यह स्तोताओ के अश्वो को अपने क्रोध से वञ्चित रखे["अभि नो वीरो रूद्र प्रजाभिः।।"[३] और अपने मात्सर्य तथा वज्र को अपने स्तोताओ से हटा कर दूसरो को उनका लक्ष्य बनाये["मृळा जरित्रे वपन्तु सेनाः।।"––;[४]तथा, "परि णो हेती मही गात्।"[५] यह भी निवेदन किया गया है कि अपन गो–घातक तथा मनुष्य–घातक प्रक्षेप्यास्त्र को अपने स्तोताओ से दूर रखे। इसके स्तोता इस बात के लिए स्तुति करते है कि वे अक्षत तथा इसके कृपापात्र बने रहे ।[६]

'रूद की उपशमन करने की शक्ति का भी, विशेषतः, प्रायः उल्लेख किया गया है। यह ('रूद्र') उपचार प्रदान करता है ["स्तुतस्त्व भेषजा रास्यस्मे"

रास्यस्मे"–[7]इसका हाथ शामक तथा बर्धक है["क्व1 स्य ते रूद्र . भेषजो जलाषः।"–––––[८]। यह अपने उपचारो द्वारा योद्धाओ को स्वस्थ करता है, क्योकि, यह चिकित्सको मे भी श्रेष्ठतम चिकित्सक माना गया है ["उन्नो वीरॉ अर्पय . . भिषजा श्रृणोमि।।";[9] और, इसके शुभ उपचारो से (इसके)स्तोता शत शीत ऋतुओ तक जीवित रहने की आशा करते है["त्वादत्तेभी रूद्र . . . . . विषूचीः।।"–[१०]।एक अन्य मन्त्र मे,मरूतो को भी विशुद्ध एव लाभकर औषधियो से युक्त होने के रूप मे 'रूद्र' के साथ सम्बद्ध किया गया है [द्र०–"या वो भेषजा मरूतः. रूद्रस्य वश्मि।।"–[११]।

'रूद्र' को देवो के क्रोध अथवा उनके द्वारा उत्पन्न सकटो का प्रतिकार करने वाला भी कहा गया है["अपभर्ता रपसो . . . :. . .. बृषभ चक्षमीथाः।।"–][१२]। केवल विपत्तियो से रक्षा करने के लिए ही नही, वरन् समृद्धि प्रदान करने["विवासेय रूद्र स्य सुम्नम्"[१३] तथा मनुष्यो एव पशुओ के कल्याण के लिए भी 'रूद्र' का आह्वान एव स्तवन किया गया है। 'रूद्र' निः सन्देह, कार्यो का पूरणकर्त्ता, दाता तथा कल्याणस्वरूप शिव है।

नोट. 1-[ऋ०,2-33-9] 2-[–ऋ०,2-33-6] 3-[ऋ०,2-33-1]; 4- [ऋ०,2-33-11 5-[ऋ०,2-33-14] 6-[ऋ०,2-33-1एव 6]7-[ऋ०,2-33-12] 8-[–ऋ०,2-33-7] 9- [ऋ०,2-33-4] 10-[–ऋ०,2-33-2] 11-[–ऋ०,2-33-13] 12-[–ऋ०,2-33-7] 13[-ऋ०,2-33-6]

मरुत्

'मरुत् 'शब्द की व्युत्पत्ति /'मृड् प्राणत्यागे', यद्धा, /'म्रू शब्दे' धातु से 'उत्' प्रत्यय होने पर निष्पन्न मानी गयी है। 'मरूत्', वस्तुतः, देवो का एक गण है, जिसमे सब अवयस्क, समानचेता,समनिवास तथा समान उदय–स्थान वाले भ्राता सम्मिलित है, जिनका केवल बहुवचन मे ही प्रयोग किया गया है। 'ऋग्वेद ः द्वितीय मण्डल' के अन्तर्गत 34 वॉ सम्पूर्ण सूक्त मरुतो के स्तुत्यर्थ उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त,कतिपय अन्य मन्त्रो मे मरुतो को अकेले अथवा अन्य अवर देवो के साथ सयुक्त रूप से भी स्तवन एव गुण–गान किया गया है।

मरुतो के जन्म का प्रायः उल्लेख मिलता है। ये लोग 'रुद्र के पुत्र' है' जिन्हे प्रायः "रुद्रा " या "रुद्रासः" तथा कभी–कभी "रुद्रियासः" भी कहा गया है। इन्हे पृश्नि के पुत्र' भी कहा गया है तथा "पृश्निमातरः" ('पृश्नि' जिनकी माता है) यह विशेषण इनके लिए प्रायः प्रयुक्त हुआ है, क्योकि, गोरुपा 'पृश्नि' इनकी माता मानी गयी है। और, इन्हे "गोमातरः" ('गाय' जिनकी माता है) विशेषण से भी विभूषित किया गया है। यह गाय, सम्भवतः, शबलीकृत झञ्झावात–मेघो का ही प्रतिनिधित्व करती है, और,दीर्घ जल–स्रोतो वाली जो उमडती गाये आती है, वे वर्षा एव विद्युत् से परिपूर्ण मेघो के अतिरिक्त कदाचित् ही कुछ और सम्भव है। मरुतो को विद्युत् के अट्टहास से भी उत्पन्न माना गया है, इसके अतिरिक्त,इन्हे स्वोद्भूत भी बताया गया है।

मरुतो के दीप्तिमान् होने का नित्य उल्लेख मिलता है। ये स्वर्णिम, सूर्य के समान प्रदीप्त, प्रज्ज्वलित अग्नि के समान तथा लाल रग की आभा से युक्त है। ये अग्नि की ज्वालाओ की भॉति प्रदीप्त है। इनका रूप अथवा तेज अग्नि के समान है ये अग्नियो के समान, अथवा, प्रज्ज्वलित अग्नियो के समान है["अग्नयो न शुशुचाना"[1]। प्रायः, सामान्य रूप से, इन्हे प्रदीप्त और प्रकाशमान कहा गया है।

विशेषतः, मरुतो को, प्रायः 'विद्युत्' से सम्बद्ध किया गया है। जब मरुद्गण अपना घृत छिडकते है, तब विद्युत् नीचे पृथ्वी की ओर मुस्कराती है। जब ये अपनी वर्षा करते है, तब विद्युत् गाय की भॉति उसी प्रकार रॅंभाती है, जिस प्रकार अपने बछडे का पीछा करती हुई माता। ये लोग वर्षा के साथ प्रकाशित होने वाली विद्युतो के समान हैं।

मरुद्गण मालाओ तथा अलड्कारो से सुसज्जित रहते हैं । बाजूबन्द और खादि इनके विशिष्ट अलड्कार है इन अलड्कारो को धारण करके ये लोग उसी प्रकार प्रकाशित होते है, जिस प्रकार तारो से भरा हुआ आकाश, अथवा, मेघो से आ रही वर्षा की बूँदे ["द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो व्य 1भ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः।"[2]। मरुद्गण ऐसे रथो पर चलते है, जो विद्युत के समान प्रतीत होते है जो स्वर्णिम है, जिनके पहिये और चक्रधार सुवर्णनिर्मित है तथा जिनमे आयुध रखे हुए है जो अश्व इनके रथो को खीचते है।, वे अरुणिम अथवा हरे और विचारो के समान द्रुतगामी है। 'रोदसी' देवी इनके (मरुतो के) रथ पर विराजमान रहती है और इसीलिए वह इनकी पत्नी मानी जाती है। यह भी माना गया है कि मरुतों ने 'वायु' को ही अश्वो के रूप मे अपने रथ मे सन्नद्ध कर दिया था।

नोट . 1[-ऋ०2-34-1] 2-[ऋ०2-34-2]

मरूद्गण आकाश के महान् है। कोई भी अन्य व्यक्ति पराक्रम मे इनकी सीमा तक नही पहुँच सकता। मरुद्गण युवा तथा अजर है। ये असुर, प्रबल, वेगवान्, धूलिरहित, भयड्कर स्वभाव वाले तथा वन्य पशुओ की भॉति भयड्कर माने गये है। ये लोग जो ध्वनि करते है, उसका भी प्रायः उल्लेख है। उसे स्पष्ट तथा 'आकाशीय गर्जन'कहा गया है। इनके आने पर, आकाश मानो भय से गर्जना करता है। प्रायः यह उल्लेख मिलता है कि ये लोग पर्वतो को हिला देते है। और पृथ्वी तथा आकाश–दोनो को प्रकम्पित करते है। सभी प्राणी इनसे रहते है। ये प्रचण्ड वायु के समान वेगवान् तथा धूल उडाने वाले है मरूतो का एक प्रमुख कार्य वर्षा कराना है। ये वर्षा से परिवेष्टित है, ये समुद्र से उठते तथा वर्षा कराते हैं वर्षा इनके पीछे–पीछे चलती है ये जल लाते है तथा वर्षा को प्रेरित कर देते है। जब ये वायु सहित वेग से चलते है,तब कुहरे को बिखेरते है। मरुतो द्वारा करायी गयी वर्षा को लाक्षणिक रूप से 'दूध', 'घृत', 'दूध' और घृत' भी कहा गया है, अथवा, यह भी कहा गया है कि ये लोग जलधारा गिराते हैं , अथवा, पृथ्वी को मधु से सिञ्चित करते हैं। जिस जलस्रोत का ये दोहन करते है।, वह गर्जन करता हैं जब ये जल गिराते है,तब अरूणिम वृषभ रूपी आकाश गर्जन करता है। वर्षा कराने वालो के रूप मे इनकी प्रकृति के सन्दर्भ मे मरूतो। को "पुरूद्रप्सा","द्रप्सिनः" और बहुधा "सुदानवः"[१] इत्यादि विशेषणो से विभूषित किया गया है।यह भी कहा गया है कि इन लोगो ने वायु को नापा, पार्थिव क्षेत्रो और द्युलोक के उज्ज्वल प्रदेशो को विस्तारित किया और दोनो लोको को अलग–अलग स्थित किया। इन लोगो की तुलना पुरोहितो से भी की गयी है। यह कहा गया है कि 'दशग्वो' के रूप मे इन्ही लोगो ने सर्वप्रथम यज्ञ सम्पन्न कराया ["ते दशग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे";[२] तथा, "यज्ञैः सम्मिश्लाः प्रिया उत।"[3]। अन्य देवताओ की भॉति, इन लोगो को भी अनेक बार सोम–पान करने वाला कहा गया है [४]।

प्रायः मरुद्गण अपने कार्यो मे अधिक स्वतन्त्र प्रतीत होते है। इनके विषय मे कहा गया है कि इन लोगो ने अकेले ही गायो को प्रकट किया था["भृमि धमन्तो अप गा अवृण्वत"–[५] ये प्रायः मात्सर्यपूर्ण प्रवृत्तियॉ भी प्रदर्शित करते है। इनसे अपने स्तोताओ। से विद्युत् को दूर रखने तथा अपनी दुर्भावनाओ को स्तोताओ तक न पहुचने देने के लिए इनका आह्वान किया गया है। साथ ही साथ, इनके पिता 'रुद्र' की भॉति मरुद्गणो को भी उपशामक औषधियॉ लाने वाला कहा गया है। एक स्थल पर इन लोगो को विशुद्ध, हितकर और उपकारी औषधियॉ रखने वालो के रूप मे 'रुद्र' के साथ सम्बद्ध किया गया है[६]। ये औषधिया जल ही प्रतीत होती है, क्योकि मरुद्गण वर्षा द्वारा ही औषधियॉ प्रदान करते है। 'अग्नि' की ही भॉति, मरुतो को भी अनेक बार 'विशुद्ध' तथा 'शुद्ध' करने वाला अभिहित किया गया है।

नोट· 1- [ऋ०2-34-8]
2- [ऋ०2-34-12]
3- [ऋ०2-36-2]
4- [-ऋ०2-36-2]
5 - [ऋ०2-34-1]-
6- [–ऋ०2-33-13]

अपांनपात्

'अपा नपात्' नाम का अर्थ है—"जल का पुत्र"। इस देवता की, स्वतन्त्र रूप से, एक सम्पूर्ण ऋग्वेदीय सूक्त (2/35) मे प्रशस्ति उपलब्ध होती है। युवक तथा दीप्तिमान् 'जल का उज्ज्वल पुत्र' ("अपा नपात्")—यह देवता चारो ओर से जलो से घिरा रहता है,'अपा नपात्' बिना किसी इन्धन के ही जल के भीतर चमकता रहता है ["स शुक्रेभिः . घृतनिर्णिगप्सु।।",[1]जो इसे चारो ओर से घेरे रहता है तथा इसे पुष्ट करता है। युवावस्थ सम्पन्न जल इस युवक के चारो ओर प्रवहित होते हैं, तीन दिव्य स्त्रियॉ इस देवता के निमित्त अन्न धारण करती है।, यह प्रथमतया उत्पन्न करने वाली माताओ का दुग्धपान करता है ["समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः . पीयूष धयति पूर्वसूनाम्।"–[2]। विद्युत् से आवृत हुआ यह[3] देव रङ्ग–रूप मे बिल्कुल सुवर्णमय है। मन के समान वेगशाली अश्व इसे खीच कर लाते है। 'अपा नपात्' के लिए "आशुहेमन्" (=शीघ्रगामी) पद का बहुशः प्रयोग मिलता है।

इस वृषभ रूपी देव ('अपा नपात्') ने मातारूपी जलो मे गर्भ प्रकट किया, पुत्र के रूप मे यह उनका स्तनपान करता है और वे सभी इसका चुम्बन करती है ["स ई वृषाजनयत्तासु त रिहन्ति।"[4] ।जलो का पुत्र जलो के भीतर सशक्त होते हुए सुशोभित होता है ["सो अपा नपाद् विधते वि भाति।।"–[5]। विद्युत् का परिधान पहने हुए जलो का पुत्र तिरछे जलो की गोद मे सीधे आरुढ हुआ है, इसका वहन करते हुए स्वर्ण–वर्ण क्षिप्र जल इसके चतुर्दिक् गमन करते हैं ["अपा नपादा परि यन्ति यह्वीः।।"[6]। जलो के पुत्र का आकार, रूप और वर्ण स्वर्णिम है, हिरण्यगर्भ से आते हुए यह बैठकर अपने स्तोताओ को भोजन प्रदान करता है ["हिरण्यरूपः स .. .. ददत्यन्नमस्मै।।"[7]। सर्वोच्च स्थान पर खडा हुआ यह सदैव अप्रतिम वैभव से सुशोभित होता है,क्षिप्र जल–समूह अपने पुत्र के लिए भोजन के रूप मे घृत लिए हुए अपने प रिधानो से युक्त चारो ओर उडते हैं ["अस्मिन्पदे परमे . . परि दीयन्ति यहवीः।।"–[8]। जिसे कन्याऍ प्रदीप्त करती हैं, जिसका वर्ण सुवर्ण के समान है, उस जलो के पुत्र का मुख गुप्त रूप से वृद्धि को प्राप्त होता है ["तदस्यानीकमुत .... घृतमन्नमस्य।।"–[9]। इसके पास एक गाय है, जो इसी के घर मे श्रेष्ठ दूध देती है, यह जलो का पुत्र, जल के बीच अपनी शक्ति को बढाता हुआ, उपासना करने वाले के लिए धन देने की इच्छा से विशेषतः प्रकाशित होता है["स्व आ दमे सुदुघा. . . .. विधते वि भाति।।"[10] जलो का पुत्र नदियो से सम्बद्ध है["नाद्यः"[11]। जलो के पुत्र ने सभी प्राणियो की रचना की है और ये सभी लोग केवल इसी की शाखाये हैं ["अपा नपादसुर्यस्य . . ... . भुवना जजान।।"–[12]; तथा, "वया इदन्या ... . वीरूधश्च प्रजाभिः।।"–[13]। 'अपा नपात्'–देव से सम्बद्ध सूक्त के अन्तिम मन्त्र मे इस देव का 'अग्नि' के रूप मे आह्वान एव स्तवन किया गया है, अतः, इस देव को 'अग्नि' के साथ समीकृत किया जाना चाहिए।

'अपा नपात्' के विषय मे कतिपय विचारको का मत है कि यह मूलतःएक विशुद्ध और सरल जलीय व्यक्ति था,जो सर्वथा एक भिन्न व्यक्ति 'जल से उत्पन्न अग्नि' के साथ सम्बद्ध हो गया, जबकि 2/35 सूक्त मे इसका जलमय रूप ही प्रधान है। दूसरी ओर, कतिपय अन्य विद्वानो की सम्मति मे, "अपां नपात्" 'चन्द्रमा' है, जबकि मैक्स मूलर इसे 'सूर्य', अथवा ,'विद्युत्' मानते हैं।

नोट 1-[ऋ०2-35-4] 4-[–ऋ०2-35-13] 7-[–ऋ०2-33-10] 10-[–ऋ०2-35-7]
2- [ऋ०2-35-3 से 5] 5-[–ऋ०2-35-13] 8[- ऋ०2-35-14] 11-[–ऋ०2-35-1]
3-[ऋ०2-33-13–ऋ०2-33-13] 6-[ऋ०2-35-9] 9-[ऋ०2-35-11] 12-[ऋ०2-35-2]
13[-ऋ०2-35-8]

सवितृ

'सवितृ' शब्द की व्युत्पत्ति ,/'सू प्रेरणे' धातु से (कर्त्रर्थक) 'तृच्' प्रत्यय होने पर निष्पन्न मानी गयी है, जिसके अनुरुप धातुगत अर्थ है—'उत्पन्न करना', 'गति देना' 'प्रेरणा देना', या 'प्राण देना', इत्यादि। इन्ही अर्थो के अनुरूप, 'सवितृ' शब्द का अर्थ है—प्रसव करने वाला, अथवा, स्फूर्ति देने वाला देवता। अतः, 'सवितृ'—देव, निश्चय ही, विश्व मे गति का सञ्चार करने वाले तथा प्रेरणा प्रदान करने वाले 'सूर्य' का ही प्रतिनिधि माना गया है। 'ऋग्वेद——द्वितीय मण्डल' के अर्न्तगत एकमात्र 38 वे सूक्त मे, समग्र रूप से, 'सवितृ'—देव का स्तवन उपलब्ध होता है।

'सवितृ', प्रधानतया, एक स्वर्ण—देव ('हिरण्यमय'—देव) है, और, इसके प्रायः सभी अवयवो तथा उपकरणो का इसी विशेषण के साथ वर्णन किया गया है।'सवितृ' की भुजाये स्वर्णिम है। 'सवितृ' विस्तृत हाथो से युक्त है["पृथुपाणिः"[1]।'सवितृ' का स्वरूप आलोकमय तथा स्वर्णिम है। दो शीघ्रगामी अश्वो के द्वारा सञ्चालित एव स्वर्णिम रथ पर 'सवितृ'—देव सम्पूर्ण विश्व को अपने हिरण्यमय नेत्रो से देखता हुआ गमन किया करता है। यह प्राणियो के पापो तथा दोषो को दूर कर उन्हे निर्दोष बनाता है। 'सवितृ'—देव 'ऋत' का अनुगामी है।

महान वैभव से 'सवितृ' देव को ही, प्रमुख रूप से, युक्त बताया गया है। इस वैभव को 'सवितृ' ही विस्तारित , अथवा, प्रसृत करता है। यह वायु, आकाश और पृथ्वी, ससार, पृथ्वी के शून्य स्थान आदि सभी को प्रकाशमय कर देता है। यह अपनी स्वर्णिम भुजाओ को ऊँचा उठाता है, जिससे यह सभी प्राणियो को जागृत कर देता है तथा उन्हे आशीर्वाद प्रदान करता है, इसकी ये पृथ्वी के छोरो तक पहुँच जाती है ["विश्वस्य हि श्रुष्टये .
. . ..रमते परिज्मन्।।"[2]। भुजाओ को ऊपर उठाना इनका ही एक वैशिष्ट्य है, क्योकि, अन्य देवताओ की इस क्रिया की इनसे ही तुलना की गयी है।

अनेक अन्य देवताओ की भॅाति,'सवितृ'—देव को भी "असुर" कहा गया है। यह देव दृढ नियमो का पालक है।'वायु 'तथा 'जल' इसके विधानो के ही अधीनस्थ है।["आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्रा"[3]।'सवितृ' देव दिन तथा रात्रि—दोनो का स्वामी है। यह सुसवर्णमय भुजाओ सदृश्य किरणो से आकाश को व्याप्त करता हुआ आकाश मे उचित होता है। प्रदोष और प्रत्यूष—दोनो से इसका सम्बन्ध है। यह दुः स्वप्नो का नाशक है तथा दुर्भाग्य को दूर भगाता है। यह यजमानो की रक्षा करता है तथा मनुष्यो को पाप से रहित करता है अन्य देवता इसके नेतृत्व को स्वीकार करते है तथा कोई भी इसकी इच्छा का उल्लङ्घन नही कर सकता। यह सभी वाञ्छनीय पदार्थो का अधिपति है और आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथिवी से अपना आशीर्वाद प्रदान करता है ["अस्मभ्य तद्दिवो . . . . .सवितर्जरित्रे।।"[4]।

वस्तुतः, 'सवितृ'—सूक्त मे, अस्त होने वाले 'सूर्य' के रूप मे ही 'सवितृ' की स्तुति की गयी है। किञ्च, इस बात के भी सङ्केत प्राप्त होते है कि 'सवितृ' को समर्पित अधिकाश सूक्त या तो प्रातः कालीन अथवा सायङ्कालीन यज्ञ के लिए ही उद्दिष्ट हुए हैं।

नोट .

1-[ऋ०2-38-2]   2-[ऋ०2-38-2]   3- [ऋ०2-38-2]   4–[ऋ०2-38-11]

अश्विनौ

'अश्विन्' शब्द की व्युत्पत्ति 'अश्व' शब्द से मत्वर्थीय 'इन्' प्रत्यय होने पर निष्पन्न मानी गयी है 'अश्विन' –द्वय' सयुक्त देवता है, जो अविभक्त रूप से एकत्र रहते है। ये देवता सदा युगल रूप मे उपस्थित रहते है तथा "अश्विनौ" इस द्विवचन मे इनका प्रयोग किया जाता है। इनकी महत्ता 'इन्द्र' 'अग्नि' तथा 'सोम' के अनन्तर सर्वाधिक मान्य है। ऋग्वेदीय द्वितीय मण्डल के अन्तर्गत इस देवयुगल का, समग्र रूप से, एकमात्र 39 वे सूक्त मे स्तवन किया गया है, तथा, इसके अतिरिक्त,37वे एव 41वे सूक्तो के भी कतिपय मन्त्रो मे इन देवताओ का आह्वान एव स्तवन उपलब्ध होता है।

यद्यपि प्रकाश सम्बद्ध देवो के अन्तर्गत 'अश्विन्–द्वय' का एक विशिष्ट महत्त्वपूर्ण स्थान है और इनकी अभिधा भी भारतीय ही है, तथापि प्रकाश–सम्बन्धी किसी निश्चित घटना के साथ इनका सम्बन्ध इतना अस्पष्ट है कि इनकी यथार्थ मूल प्रकृति आरम्भिक काल से ही वैदिक व्याख्याकारो के लिए एक समस्या रही है। ये दोनो देवता यमज तथा अवियोज्य है 'अश्विनौ–सूक्त'(2/39) का एकमात्र प्रयोजन विभिन्न युगल वस्तुओ, जैसे–भुजाये, पैर पक्षियो के पख आदि से इनकी तुलना करना, अथवा, ऐसे पशु–पक्षियो से समीकृत करना, जो युगल रूप मे रहते है, जैसे–श्वान और बकरियॉ, हस और उत्क्रोश, इत्यादि[1]। तथापि, कतिपय ऐसे भी स्थल प्राप्त होते है, जो कदाचित् इनके मूलतः [illegible] होने का सकेत करते है, अन्यथा, युगल रूप से दोनो ही अश्विनो के लिए "दस्र" तथापि "नासत्य" विशेषण बहुशः प्रयुक्त किये गये है।

'अश्विनौ' युवा है तथा इनको देवताओ मे सबसे कम वयस्क माना गया है परन्तु, साथ ही साथ, इन्हे प्राचीन भी कहा गया है। ये प्रकाशमान, प्रकाश (यद्धा, तेजस्विता) के अधिपति, सुवर्ण की भॉति चमक धारण करने वाले तथा मधुवर्ण है। इनके अनेक रूप है, ये दोनो सुन्दर है तथा कमलो की माला से अलङ्कृत वर्णित किये गये है। ये दोनो क्षिप्र है, विचारो की भॉति, अथवा उत्क्रोश पक्षी की भॉति द्रुतगामी है। ये दोनो परम मेधावी तथा गुह्य शक्ति से युक्त माने गये है। इनके लिए ही "हिरण्यवर्तनि" (=सुवर्ण मार्ग वाला) तथा "रुद्रवर्तनि" (=लाल मार्ग वाला) विशेषणो का प्रयोग किया गया है।

सभी देवो की अपेक्षा अश्विनो को ही सर्वाधिक घनिष्ठ रूप मे 'मधु' के साथ सम्बद्ध किया गया है और इसके साथ इनका प्रायः अनेक स्थलो पर उल्लेख मिलता है। 'सोम' की अपेक्षा 'मधु' से ही इन दोनो का घनिष्ठतर सम्बन्ध माना गया है। अन्य देवताओ की अपेक्षा ये दोनो अधिक मधुपान करते है।, इनके पास मधु से परिपूरित कोष है। इनका अङ्कुश ही मधुमय नही है, प्रत्युत इनका रथ भी मधु वर्ण वाला तथा मधुधारण करने वाला कहा गया है। यह रथ अश्वो के द्वारा,अधिकतर पक्षियो या पक्षधारी अश्वों के द्वारा खीचा जाता है। इसी पर बैठकर ये दोनो एक ही दिन मे 'द्यावापृथिवी' की परिक्रमा कर आते हैं। 'उषा' तथा 'सूर्य' के उदयकाल के मध्य मे इनका अविर्भाव होता है, 'उषा' के आगमन के अनन्तर ये उसका अनुगमन करते हैं। ये दोनो अन्धकार को दूर करते है तथा मनुष्यो को क्लेश एव कष्ट पहुॅचाने वाले राक्षसो को दूर भगा देते है। इसी समय, ये दोनो अपने रथ को सन्नद्ध करके पृथ्वी पर अवतरित होते तथा अपने स्तोताओ के समर्पणो को भी स्वीकार करते है। प्रायः

नोट 1-["द्र०–ऋ०2-39-1से 7 तक]

अश्विनो का प्रकट होना, यज्ञाग्नि का प्रदीप्त होना, उषा का आगमन तथा सूर्योदय–सभी का एक साथ होना बताया गया प्रतीत होता है, आहुतियॉ ग्रहण करने के लिए केवल अपने निश्चित समय पर ही नही वरन् सन्ध्या काल, अथवा, प्रातः, मध्याह्न एव सूर्यास्त के समय भी आगमन करने के लिए अश्विनो का आह्वान किया गया है।

'सूर्य' के विलीन हो चुके प्रकाश को पुनः प्राप्त करने, अथवा, खोज निकालने वालो के रूप मे ही,मूलतः, 'अश्विनौ' की कल्पना की गयी होगी। ये दोनो देव एक विशिष्ट प्रकार के सहायता करने वाले देव माने गये है। ये लोग अन्य की अपेक्षा अधिक शीघ्रतापूर्वक सहायता करने वाले तथा सामान्य रूप से सभी विपत्तियो से मुक्त करने वाले है। इस प्रकार के अनुग्रहो के लिए नित्य ही इनका स्तवन किया गया है। सहायता प्रदान करने की अपनी प्रकृति के अतिरिक्त, ये दोनो उपशमन तथा आश्चर्यजनक कार्य करने वाले हैं और इनकी सामान्य उपकार शीलता की प्रायः प्रशस्ति उपलब्ध होती है। ये दोनो अपने स्तोताओ को वृद्धावस्था तक दृष्टिहीन नही होने देते तथा उन्हे प्रचुर सम्पत्ति एव सन्तानो से परिपूर्ण करते है। अपनी [illegible] तथा उदार व्यवहार से ये दोनो ही देव मनुष्यो को आकृष्ट कर लेते है। दान देने की भावना 'अश्विनौ' –देवताओ से विकसित मानी गयी है। जो भी दान दिया गया है, उसके ये ही दोनो देवता है। इस प्रकार, अश्विनो के वैदिक वैलक्षण्य की सङ्गति इनके इस स्वरूप–निरूपण से भली–भॉति हो जाती है।

पूषन्

"पुष्णातीतिपूषन्" इस विग्रह के अनुरूप, व्युत्पत्ति की दृष्टि से, 'पूषन्' शब्द ,/'पुष् पोषणे' धातु से निष्पन्न माना गया है, जिसका अर्थ है—'पोषणकर्ता', अथवा, 'समृद्धिदायक'। पोषण करने वाला देव ('पूषन्') 'सूर्य' की पोषण–शक्ति का प्रतीक है, और, इसी लिए, यह 'सूर्य' की पोषण–शक्ति का प्रतिनिधि देव है। 'ऋग्वेद—द्वितीय मण्डल के अन्तर्गत, देव 'पूषन' की स्तुति 40 वे सूक्त मे मन्त्र 1 से 5 तक 'सोम' के साथ युगल रूप से उपलब्ध होती है, तथा, इसके अतिरिक्त,6वे मन्त्र मे 'सोम' के साथ ही साथ 'अदिति' के साथ भी 'पूषन्' का स्तवन किया गया है। 'पूषन्' को चराचर का स्वामी तथा मार्गो का रक्षक बतलाया गया है।

'पूषन्' के व्यक्तित्व तथा मानवाकृति का कोई विशेष परिचय, स्पष्ट रूप से, प्राप्त नही होता है। 'पूषन्' को राजाओ का देवता कहा गया है, 'द्यूलोक' इसका निवासस्थान है। इसकी उपासना पशुपालक के रूप मे की जाती है। अन्य देवताओ के समान, इसमे भी वैशिष्ट्य विद्यमान हैं। यह शक्तिशाली, ओजस्वी, सबल तथा निर्बाध है, साथ ही यह अमर है तथा वैभवशाली है। यह वीरो का शासक तथा अजेय सरक्षक है।

'पूषन्' को "मार्गो का देवता" भी माना गया है। यह अपने रथ मे बैठकर भ्रमण करता है तथा सारे ससार का निरीक्षण करता है। यह मार्गो के भय को दूर भगाता है। 'पूषन्' अत्यधिक उदार है। तथा, प्रेतात्माओ को पितृलोक ले जाने का कार्य इसी का है। यह सभी प्राणियो का स्पष्ट रूप से तथा एक साथ निरीक्षण करने वाला तथा उन्हे जानने वाला देवता है। 'पूषन्' मार्गो का अध्यक्ष है तथा उन्हे विपत्तियो से दूर कर प्राणियो की रक्षा करता है। यह पशुओ का रक्षक है, यह गोचर–भूमि मे जाने वाले पशुओ के पीछे जाता है, उनकी रक्षा करता है तथा उन्हे सुरक्षित घर पहुँचा देता है। इसीलिए, इसे "विमुचो नपात्" (='मुक्ति का पुत्र') कहा गया है। "आघृणिः" (=प्रकाशमान) इसके लिए प्रयुक्त एक विशिष्ट विशेषण है।

'पूषन्' ससार का रक्षक है। यह एक द्रष्टा, पुरोहितो का रक्षक मित्र तथा सभी अभ्यर्थको का, प्राचीन काल मे उत्पन्न, एक विश्वसनीय मित्र है। यह अत्यन्त बुद्धिमान् तथा उदार [1] है। यह सभी प्रकार के धन–धान्य से सम्पन्न है। यह समृद्धि का परम मित्र तथा पोषक तत्त्वो की वृद्धि का शक्तिशाली अधिपति है। एक स्थल पर, इसे 'सर्वव्यापी'["विश्वमिन्वो"–[2] अभिहित किया गया है, तथा भक्ति की अभिवृद्धि के लिए इसका आह्वान किया गया है["द्र०–धिय पूषा जिन्वतु . .. .विदथे सुवीराः"–[3]।

'पूषन्' अतुल सम्पत्ति, सम्पत्ति के प्रवाह तथा धन के अगार का अधिपति है। जो भी समृद्धि 'पूषन्' प्रदान करता है , वह पृथ्वी पर मनुष्यो और पशुओ को प्रदत्त सुरक्षा और मनुष्यो को परलोक स्थित आनन्दमय आवासो तक इनके पथ–प्रदर्शन का ही परिणाम है। अतः, 'पूषन्' के चरित्र–सम्बन्धी अवधारणा की पृष्ठभूमि मे 'सूर्य' की उपकारी शक्ति ही है, जो कि प्रधानतया एक ग्रामीण देवता के रूप मे अभिव्यक्त हुई है।

नोट 1- ["पुरधिः"–ऋ०,2-31-4] 2- ["पुरधिः"–ऋ०,2-31-4] 3-[–ऋ०,2-40-6]।

ऋदिति

'ऋदिति' शब्द का अर्थ है–'सीमाऋो' के बन्धनो से रहित'। ,/ 'दो ऽ वखण्डने', यद्वा, ,/'दा बन्धने' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय होने पर दितिशब्द निष्पन्न हुआ है। इस प्रकार 'दिति' शब्द का अर्थ है–'जो' सीमाओ के बन्धनो मे बॅधी हो'। 'नञ्' +'दिति'='ऋदिति', अर्थात्, 'अनवखण्डिता', 'अक्षता', 'सकला', 'समग्रा', इत्यादि। इस प्रकार, सीमाओ के बन्धनो से सर्वथा रहित 'पृथिवी' की अभिमानिनी देवता–मूलप्रकृति देवमाता—'अदिति' है। अत एव, बन्धनो से मुक्ति प्राप्त्यर्थ 'अदिति' देवता की उपासना की गयी है।

देवी 'अदिति' किसी भी एक पृथक् एव स्वतन्त्र सूक्त का विषय नही बन सकी है, किन्तु, इसकी प्रसङ्गवश प्रशस्ति उपलब्ध होती है। इसका अकेले अत्यन्त दुर्लभ ही उल्लेख है, क्योकि, प्रायः नित्य ही इसका, इसके पुत्र आदित्यो के साथ, आह्वान किया गया है।

'अदिति' का कोई निश्चित दैहिक वैशिष्ट्य उपलब्ध नही होता। इसे प्रायः एक 'देवी' कहा गया है, जिसका कभी–कभी 'अनर्वा' नाम भी प्राप्त होता है["अवतु देव्यदितिरनर्वा"–[1]। यह अत्यन्त फैली हुई, विस्तृत और चौडे स्थानो वाली देवी है। यह उज्ज्वल, प्रकाशमय, प्राणियो का पोषण करने वाली और सभी की देवी है। प्रातः काल, मध्याह्न एव सायकाल के समय इसका आह्वान होता है।

'अदिति','मित्र' तथा 'वरूण' की माता है, और, साथ ही साथ, 'अर्यमन्' की भी माता है। अतः, इसे राजाओ की माता, श्रेष्ठ पुत्रो वाली, शक्तिशाली पुत्रो वाली तथा श्रेष्ठ पुत्रो वाली कहा गया है। इसका प्रायः स्तोताओ की महान् माता, 'ऋत' की अधिष्ठात्री देवी, पराक्रमी अनश्वर, विस्तृत रूप से फैली हुई, सुरक्षा प्रदान करने वाली और योग्यतापूर्वक पथप्रदर्शन करने वाली देवी के रूप मे आह्वान किया गया है। प्रायः 'अदिति' का अपनी सन्तान आदित्यो के साथ नित्य आह्वान यह प्रकट करता है कि 'मातृत्व' ही इसके चरित्र का अनिवार्य एव विशिष्ट गुण है।

"अदिति" के गुणो के सम्बन्ध मे दो प्रमुख चारित्रिक विशेषताये कही गयी है। प्रथम इसका मातृत्व है, यह एक ऐसे वर्ग के देवो की माता है, जिनके नाम इससे निर्मित मातृनामोद्गत रूप मे ही प्रकट हुए है। दूसरी प्रमुख विशेषता इसके नाम की व्युत्पत्ति के अनुकूल ही, दैहिक कष्ट तथा नैतिक अपराध के बन्धनो से मुक्त करने की इसकी शक्ति है। इस नाम पर रहस्यवादी कल्पना असीम समृद्धि के प्रतिनिधि के रूप मे इसे एक गाय बना सकती है, अथवा इसे असीम पृथ्वी, आकाश या विश्व के ही साथ समीकृत कर सकती है।

"अदिति" को "देवताओ" की माता" कहा गया है, परन्तु सभी देवता उसके पुत्र नही थे। जो देवता "अदिति" के पुत्र है, वे 'आदित्य' कहलाते है। आदित्यो की संख्या नियत नहीं है। कही तो 5, कहीं 6, कही 7, कहीं 8 'आदित्य' कहे गये है। परवर्त्ती साहित्य मे बारह आदित्यों की गणना की गयी है।

नोट 1- [ऋ०,2-40-6]

वायु

'वायु' शब्द की व्युत्पत्ति ,/'वा गतिगन्धनयोः' धातु से 'यु' प्रत्यय होने पर निष्पन्न मानी गयी है, जिसके अनुसार धातुगत अर्थ 'गति करना', अथवा,'गन्ध को ले जाना' सम्भाव्य प्रतीत होता है। इस प्रकार, 'वायु' का अर्थ 'वात' यद्वा, 'पवन ' माना जाता है। 'ऋग्वेद ः द्वितीय मण्डल' के अर्न्तगत 41वे सूक्त के मन्त्र 1 तथा 2 मे 'वायु'–देव का, अकेले ही, जबकि इसी सूक्त के मन्त्र 3 मे 'इन्द्र' के साथ आह्वान एव स्तवन किया गया है।

'वायु'–देवता तीव्र वेगशाली है, इसके वेग की उपमा प्रायः देवताओ तथा अश्वो के साथ दी जाती है। यह गर्जन करता हुआ अपने मार्ग से गमन करता है। 'इन्द्र' के साथ इसे आकाश का स्पर्श करने वाला, विचार के समान वेगवान् और सहस्र नेत्रो वाला कहा गया है। वायु समस्त भुवन का राजा है। 'वायु, के पास एक प्रकाशमान रथ है, जिसे अश्वो का एक दल, अथवा, 'रोहित' यद्वा 'अरुण' अश्वो का एक जोडा खीचता है। "नियुत्वत्" (एक दल द्वारा वहन किया जाने वाला) विशेषण प्रायः 'वायु', अथवा, उसके रथ के सन्दर्भ मे ही घटित होता है। 'वायु' के रथ मे, जिसमे 'इन्द्र' भी उसके साथ है, बैठने का आसन सुवर्णमय है और यह रथ आकाश का स्पर्श करता है। 'वायु' का स्वरूप किसी को दिखायी नही देता, केवल घोष ही सुनायी देता है।

अन्य देवताओ की भॉति 'वायु' भी सोम–प्रेमी है। इसे प्रायः अपने दल के साथ सोम–पान के निमित्त निमन्त्रित किया गया है [द्र०[1] जहॉ पहुॅच कर यह सर्वप्रथम अपना (प्रायः 'इन्द्र' के साथ भी आगमन करता है) पेय –भाग प्राप्त करता है, क्योकि, यह देवताओ मे सबसे क्षिप्र माना गया है। 'वायु, को "सोम का रक्षक भी कहा गया है और इसके लिए एक विशिष्ट विशेषण "शुचिपा" का व्यवहार भी किया गया है। 'वायु'–देवता यश, सन्तान, अश्वो के रूप मे सम्पत्ति, वृषभ तथा सुवर्ण प्रदान करता है। यह शत्रुओ को भगा देता है और निर्बल व्यक्तियो की रक्षा के लिए प्राय इसका आह्वान किया गया है।

नोट · 1-[द्र०—ऋ०,2-41-1-2 एव 3]

मित्रावरुणौ

'मित्र' एव 'वरूण' सज्ञक स्वतन्त्र देवताओ के अतिरिक्त, "मित्रावरूणौ" के युग्म का भी विवेचन मन्त्रो मे प्राय प्राप्त होता है। कभी–कभी इन दोनो देवताओ के लिए सयुक्त रूप से ''मित्रावरूणा'' शब्द का भी प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद द्वितीय मण्डल के अन्तर्गत 36 वे सूक्त के मन्त्र 6 मे तथा 41 वे सूक्त के 4 से 6 तक के मन्त्रो मे इन दोनो देवताओ का सयुक्त रूप से आह्वान तथा स्तवन प्राप्त होता है।

'मित्रावरुणौ' कवि है, श्रेष्ठ रूप मे उत्पन्न ["तुविजात''] तथा विशाल क्षेत्र वाले ["उरुक्षय"]है। ये दोनो शक्ति और अपस् ("दक्ष") के पोषक है। ये दोनो राजा है, सुपाणि है तथा गायो की रक्षा करते हुए इनमे अमृत भरते है। सायण के अनुसार ये दोनो अहोरात्र के देवता है। ये 'दिविस्पृश्', अर्थात, द्युलोकवासी है। लोग यज्ञो तथा स्तुतियो से इनकी उपासना करते है। इनकी शक्ति बहुत बडी है, जिसका कोई सामना नही कर सकता है।

'मित्रावरुणौ' से सम्बन्धित मन्त्र प्रायः अस्पष्ट है तथा उनके द्वारा 'मित्रावरुणौ' के स्वरूप एव कार्यो पर कोई विशेष प्रकाश नही पडता है। उनसे केवल यही स्पष्ट होता है कि ये दोनो "घृतस्नू" (='घृत को प्रवाहित करने वाले',अर्थात वृष्टिप्रदाता) है। 'अध्वर्यु' इन्हे हव्य तथा स्तुतियॉ अर्पित करते है, और ये स्तोता की गायो का सरक्षण करते है तथा उसे सब प्रकार से समृद्ध बनाते है ये दोनो "अनभिद्रुह्"(=शत्रुतारहित),"दानुनस्पती" (देय के अधिपति)," धृतासुती घृतयुक्त अन्न वाले), सम्राट्, स्थिर एवम् उत्कृष्ट सदस् (=गृह) मे निवास करते है। ये दोनो सोमपान के लिए प्रातः सवन मे आमन्त्रित किये जाते हैं। ये दोनो इस समग्र भुवन के सम्राट् है। दिव् के स्वामी और पृथिवी के द्रष्टा है। 'मित्रावरूणौ' धर्म, ऋत, सत्य तथा व्रत के प्रतिष्ठापक है। ये दोनो अत्यन्त याज्ञिक प्रिय देव है, जिनके लिए नयी–नयी स्तुतियो की रचना की गयी है।

सरस्वती

'सरस्वती' शब्द का अर्थ, मूलतः, 'जलमयी' था—'सरो (=तालाबो) वाली'। अपने मूल रूप मे, यह एक नदी थी, किन्तु, कालान्तर मे, उसका नदीरूप गौण तथा देवीरूप प्रधान बन गया। 'सरस्वती' पावक (=पवित्र बनाने वाली),समृद्धियुक्त धनवती ["वाजिनीवती"[1] मन्त्रो की निधि तथा यज्ञ की निर्वाहिका है। मधुर, सत्य वाणी की प्रेरयित्री एव सुमति को जागृत करने वाली 'सरस्वती' विशाल जलराशिरूपा है तथा समस्त चिन्तनशक्ति को प्रदीप्त करती है।

'सरस्वती' वाणी की देवी है तथा इसके तीनो रूपो—'इळा', 'सरस्वती' एव 'भारती' (यद्वा, 'मही')——का अपना विशिष्ट महत्व है। वाणी की अधिष्ठात्री देवी 'सरस्वती' उन व्यक्तियो को क्षीर, घृत, मधु तथा उदक प्रदान करती है जो ऋषियो के द्वारा निर्मित रसपूर्ण पावमानी ऋचाओ का अध्ययन मनन एव चिन्तन करते हैं। वाणीरुपिणी देवी 'सरस्वती' की प्रशसा मे उच्चारित यह प्रशस्ति ["अम्बितमे नदीतमे देवितमे प्रिया देवेषु जुह्वति।।"[2] सभवतया, प्राचीनतमा स्तुति है।

नोट : 1-ऋ०,2-41-18] 2-,ऋ०,2-41-16से 18]

तृतीय - अध्याय

ऋग्वेदसंहिता ः द्वितीय मण्डल

अनुवाक-1

सूक्त-1

1. हे अग्ने । तुम सद्यः दीप्तिदायक हो, तुम जल से (उत्पन्न होते हो), तुम मेघो के समन्तात् (दिवसो के साथ) उत्पन्न होते हो, ,तुम वनो से, तुम ओषधियो से, हे नृणा नृपते! तुम प्रकाशक होकर उत्पन्न होते हो।

2. हे अग्ने । होतृकर्म तुम्हारा (है), पोतृकर्म तुम्हारा (है),ऋतुगत कर्म तुम्हारा (है), नेष्ट्रकर्म तुम्हारा (है), तुम ऋतकामी के अग्नित् (हो)। प्रशास्तृ–कर्म तुम्हारा (है), तुम अध्वर्यु का कार्य करते हो, और, (तुम) ब्रह्मा हो और (तुम) हमारे सभागृह मे गृहपति (हो)।

3. हे अग्ने । तुम सज्जनो के (कामना–) सेचक इन्द्र हो तुम बहुतो द्वारा स्तुत्य (एव) नमस्करणीय विष्णु (हो)। हे ब्रह्मणस्–पते! तुम रयिविद् ब्रह्मा (हो), हे विविध रूपो को धारण करने वाले! तुम स्तुति से सयुक्त होते हो।

4. हे अग्ने! तुम धृतव्रत राजा वरूण (हो) तुम शत्रुक्षेपक (एव) स्तुत्य मित्र होते हो। तुम सज्जनो के पालक अर्यमा (हो), जिसके (दान का) सम्भोजन (होता है), हे देव! तुम यज्ञ मे भाग की कामना करने वाले अश (हो)।

5. हे अग्ने । तुम परिचर्या करते हुए (व्यक्ति) के लिए [illegible] (धन प्रदान करने वाले) त्वष्टा (हो), मित्र के समान तेज वाले (हो), स्त्रियो और सजातीयो का गण तुम्हारे लिए (है)। द्रुतगामी तुम सुन्दर अश्वसमूह को प्रदान करते हो, प्रभूत धन वाले तुम मनुष्यो के शर्ध (= प्राण) हो

6. हे अग्ने । तुम महान् द्युलोक के शत्रुक्षेपक रुद्र हो, तुम मरूत्–सम्बन्धित बल (हो) तथा अन्न पर शासन करते हो। (हे अग्ने!) सुखकर गृह वाले तुम वायु (–सदृश) अरूण (शिखाओ) से गमन करते हो (तथा) पोषक तुम परिचर्या करते हुए की अपने आप रक्षा करते हो।

7. हे अग्ने । तुम (अपने) अलङ्करण करते हुए (यजमान) के लिए धनप्रदाता (हो) , तुम रत्नधारक देव सविता हो । हे मनुष्यों के पालक (अग्ने!) ऐश्वर्यवान् तुम धन पर शासन करते हो (तथा) तुम, जिसने (अपने) यागगृह मे तुम्हारी परिचर्या की, (उसके) पालक हो।

8. हे अग्ने ! विश्वपालक, दीप्यमान तथा शोभन धन वाले तुमको प्रजाएँ (अपने) यागगृह मे प्रसाधित करती है। हे शोभन रूप वाले (अग्ने)! तुम समस्त (अपने से सम्बद्ध हविष्यादि पदार्थो) का पालन करते हो, तुम सहस्र, शत और दश (–सख्यासे युक्त) धन प्राप्त करते हो।

9. हे अग्ने । नेता (यजमान लोग) पालक (तुम्हारा) इडादियो द्वारा (यजन करते हैं)। (वे) भ्रातृत्व–भाव के लिए शरीरो मे दीप्त तुम्हारा शम्या द्वारा (यजन करते है)। जिसने तुम्हारी परिचर्या की, उसके तुम पुत्र (=पुत्रवत् पालन करने वाले) होते हो तथा विश्वस्त मित्र की भॅाति तुम (उसकी) दुःख के आक्रमण से रक्षा करते हो।

10. हे अग्ने ! तुम ज्योतिर्मय (हो), समीप से नमस्करणीय तुम श्रूयमाण (प्रसिद्धि वाले) अन्न (और) धन का स्वामित्व करते हो। तुम (हमारे) अनुकूल विशिष्टरुपेण भासित होते हो, (तुम) (हविष्य) प्रदान करने वाले के लिए जलाते हो। तुम विशिष्ट शिक्षक (और) यज्ञ के विस्तारक हो।

11. हे देव अग्ने ! तुम हविः प्रदाता (यजमान) के लिए अदिति (हो), तुम होमनिष्पादिका 'भारती' स्तुति द्वारा प्रवृद्ध होते हो। तुम शक्ति प्रदान करने के लिए शतवर्ष 'इळा' हो, हे वसुपते! तुम वृत्रहन्ता 'सरस्वती' हो।

12. हे अग्ने! सुष्ठुपोषित तुम उत्तम अन्न (या, आयुध) प्रदान करते हो, तुम्हारे स्पृहणीय (और) सम्यक् दर्शनीय वर्ण मे ऐश्वर्य आश्रित होकर रहते हैं)। तुम अन्न (हो), (पाप से) प्रकृष्ट रूपेण पार करने वाले (हो), महान् (हो) और धन की प्रफुल्लता से युक्त तुम सर्वत्र प्रख्यात हो।

13. हे अग्ने! आदित्यो ने तुम्हे (अपना) मुख (बनाया), हे क्रान्तप्रज्ञ (अग्ने)! [illegible] (देवो) ने तुम्हे (अपनी) जिह्वा बनाया। दान से समवेत (देव) यज्ञो मे तुम्हारा सेवन करते है, तुम्हारे द्वारा (ही) देव आहुत हविष्य का भक्षण करते है।

14. हे अग्ने ! तुम्हारे माध्यम से (ही) समस्त निश्छल (एव) अमरणधर्मा देव आहुत हविष्य का भक्षण करते है। मरणध र्मा (जीव) तुम्हारे द्वारा (ही) आसुति (=रसरूपादि अन्न) का आस्वादन करते है, तुमने ही दीप्त लताओ मे गर्भ उत्पन्न किया।

15. हे अग्ने ! तुम अपनी महत्ता कारण उन देवताओ से सयुक्त होते हो और उनके प्रतिनिधि बनते हो, और हे देव! (तुम उनसे) बढकर हो जाते हो । जो यहॉ अन्न है, वह तुम्हारी महिमा से है (और) द्युलोक तथा पृथिवी लोक दोनो मे व्याप्त है।

16. हे अग्ने ! दानवीर जो (यजमान) स्तोता को श्रेष्ठ मानने वाले, अश्वरूप अलङ्करण वाले दान को प्रदान करते है, उन (यजमानो) को और हम (ऋत्विजो) को तुम सचमुच निवास योग्य स्थान पर ले जाते हो। सुन्दर वीरो वाले (हम) यज्ञ मे (तुम्हारी स्तुति को) जोर से उच्चारित करे।

सूक्त-2

1. (हे यजमानो ! तुम) यज्ञ के द्वारा जातवेदस् अग्नि को प्रवृद्ध करो, हविष्य (एव) विस्तृत स्तुति के द्वारा (तुम सब) समिद्ध होते हुए, शोभन अन्न वाले, प्रकाशयुक्त, द्युलोकवासी, होम–सम्पादक तथा यज्ञों मे अग्रगण्य (अग्नि का) यजन करो।

2. हे अग्ने ! अपने झुण्ड मे गाये जिस प्रकार बछडे को, उसी प्रकार रात्रि और उषाऍ तुम्हारी कामना करती है। हे बहुतों द्वारा वरणीय (अग्ने) ! द्युलोक के समान ही व्यापक एव आत्मसयमी(तुम) माननवीय युगो मे रात्रि मे भासित होते हो।

3. देवों ने शोभन कार्यो वाले द्युलोक और पृथिवी लोक के व्यापक धनयुक्त रथ के समान होने वाले, निर्मल ज्वालाओ वाले (तथा) लोक के मूल स्थान पर मित्र के समान प्रशसनीय उस अग्नि को अन्तरिक्ष के मूल मे निःशेषण प्रेरित किया।

4. देवो ने अन्तरिक्ष मे प्रवृद्ध होते हुए, चन्द्रमा के समान शोभन दीप्ति वाले, पृथिवी के पालक, नेत्रो से देखते हुए तथा जल के समान पालक उस (अग्नि) को दोनों (–देव और मनुष्यो) को लक्षित करके अपने यागगृह और एकान्त मे स्थापित किया।

5. होम—सम्पादक वह (अग्नि) सम्पूर्ण यज्ञ को चारो ओर से व्याप्त करे, मनुष्य हविष्य (और) स्तुति के द्वारा उस (अग्नि) को साधित करते है। स्वर्णिम उष्णीव वाला, प्रवृद्ध शिखरो पर बारम्बार हिलता (या, प्रवृद्ध होता) हुआ, (वह अग्नि) तारो से (व्याप्त) द्युलोक के समान (ज्वालाओ के द्वारा) द्युलोक और पृथिवी लोक को व्याप्त करता है।

6. (हे अग्ने!) समिद्ध होते हुए, सम्यग् धन देने वाले वह (तुम) हमारे कल्याण के लिए हमारे बीच धनपूर्ण ढग से दीप्त होओ। हे देव अग्ने् मनुष्य (मुझ यजमान) की तृप्ति के लिए द्युलोक और पृथिवी को हमारे सौविध्य के लिए कर दे।

7. हे अग्ने! हमे प्रभूत (धन) दो, सहस्र सख्या से युक्त (धन दो), मन्त्र शक्ति को द्वार के समान उद्घाटित कर दो। कीर्ति के लिए मन्त्र के द्वारा द्युलोक और पृथिवी को (हमारे) अनुकूल कर दो, उषाएँ दीप्तियुक्त (तुम्हे) सूर्य के समान प्रकाशित करती है।

8. उषाओ और रात्रियो के पश्चात् समिद्ध होता हुआ, मनुष्य (यजमान) की स्तुतियो से शोभन यज्ञ वाला प्रजाओ का वह (अग्नि) स्वामी तथा यजमान के लिए अतिथिरूप वह अग्नि रक्ताभ दीप्ति से प्रकाशित होवे।

9. हे प्रभूत प्रकाश वाले अमरो मे अग्रगण्य अग्ने! (तुम्हारी) स्तुति हम मनुष्यो को प्रवृद्ध करे। (तुम्हारी स्तुति) यज्ञ मे इच्छा होने पर यजमान के लिए धेनु के समान अपने आप से अनेक रूपो वाले धन का दोहन करने वाली (होती) है।

10. हे अग्ने ! हम (अपने) बलवान् घोडे और मन्त्र द्वारा लोगो का अतिक्रमण करके (उन्हे अपने) शोभन पराक्रम [illegible] जता दे। हमारा अनतिक्रमणीय धन पञ्च प्रजाओ के उपर सूर्य के समान उच्चरूपेण प्रकाशित होवे।

11. हे अग्ने! शोभन कुलोत्पन्न दानवीर, जिसमे (अपनी स्तुतियो को) निवेदित करते है, अन्नयुक्त (यजमान) पुत्र—निमित्त जिस यागगृह मे प्रदीप्त होते हुए यज्ञ के समीप गमन करता है। अभिभवकर्त्ता (तथा) प्रशस्य वह (तुम) हमारे लिए (कल्याणकर) होओ।

12. हे जातवेदस् अग्ने ! स्तोता (ऋत्विक) और दानवीर (यजमान) —दोनो तुम्हारे आश्रय मे होवे। (तुम) हमे अत्यन्त आहलादक, प्रभूत प्रजा वाले (एव) सुन्दर पुत्र के निवास रूप धन प्रदान करो।

13. हे अग्ने !दानवीर जो (यजमान) स्तोता को श्रेष्ठ गायो वाले तथा अश्वरूप अलङ्करण वाले दान को प्रदान करते हैं, उन्हे और हम (ऋत्विजो) को (तुम) सचमुच निवासयोग्य स्थान पर ले जाते हो। सुन्दर वीरों वाले (हम) यज्ञ मे (तुम्हारी स्तुतियों को) जोर से उच्चारित करें।

सूक्त-3

1. समिद्ध होता हुआ, पृथिवी पर स्थित होता हुआ अग्नि समस्त भुवनों के समक्ष स्थित हुआ। होम—सम्पादक शोधक, प्राचीन, शोभन धन वाला तथा श्रेष्ट देव अग्नि का यजन करे।

2. प्रत्येक स्थान को प्रकट करता हुआ (अपनी) महिमा से तीनो द्युलोको को प्रकाशित करने वाला तथा यज्ञ—मूर्धा पर घृतप्रुष् मन से हविः को क्लिन्न करता हुआ 'नराशस' देवो को सम्यक् तृप्त करे।

3. हे अग्ने ! (हमारे द्वारा) स्तुत हुए, यागयोग्य तथा मनुष्यो से पूर्वभावी तुम (हमसे) अनुरक्त मन से हमारे लिए आज देवों का यजन करो। वह (तुम) मरूतो के गण (या,बल) को ले जाओ, हे मनुष्यो ! कुशासीन अच्युत इन्द्र का यजन करो।

4. हे देव ! वर्धनशील, शोभनवीर, सम्पादक, सुष्ठु पालक बर्हिः इस वेदी पर बिछी है, हे वसवः ! (तुम) घृत से आर्द्र इस (बर्हिः) पर बैठो, हे विश्वे देवो। हे अदिति –पुत्रो! यज्ञिय (तुम सब) इस पर बैठो।

5. महान्, अच्छी प्रकार से पहुँचने योग्य (तथा) नमस्कारो द्वारा पुकारी जाती हुई द्वाराभिमानिनी देवियॉ विशिष्टरूपेण उद्घाटित हो जाये। व्यापक, जरारहित (एव,यजमान के लिए) शोभन पराक्रम एव यश से युक्त वर्ण को चमत्कृत करती हुई देवियॉ अत्यधिक प्रथित होवें।

6 हमारे साधु कर्मो को (लक्षित करके) नित्यरूपेण प्रवृद्ध होती हुई, बुनकरी के समान विस्तृत तन्तु को बुनती हुई, परम्परानुकूल सुष्ठुफलदोहक तथा जलयुक्त उषा और नक्ता ने यज्ञ के रूप को निर्मित किया।

7. अग्रगण्य, प्रज्ञानयुक्त (तथा) सुन्दर शरीर वाले दिव्य दो होता मन्त्र द्वारा सरल ढग से यजन करते है। समया नुसार देवो का यजन करते हुए (वे दोनो) पृथिवी की नाभि (=वेदी) के उपर तीन शिखरो पर (हविष्य) प्रदान करते है।

8. हमारी बुद्धि (या, प्रार्थना) को पूर्ण करती हुई सरस्वती' देवी, 'इळा' और समस्त सवेगो वाली 'भारती' (–ये) तीन देवियॉ आश्रयभूत छिद्ररहित इस बर्हिः पर बैठ कर अपने बल से (हमारी) रक्षा करे।

9. स्वर्णिम (या, पीले) रङ्ग वाला, शोभनाभरण वाला, आज्ञाकारी, अन्न को धारण करने वाला, देवकामी पुत्र उत्पन्न होता है। त्वष्टा प्रजा की नाभि को हमारे लिए विमुञ्चित कर दे तथा देवो का अन्न भी (हमे) प्राप्त होवे।

10. (हमारे धार्मिक कृत्यो का) अनुमोदन करता हुआ 'वनस्पति' (हमारे) समीप स्थित हुआ, अग्नि प्रकृष्ट कर्मो द्वारा हविष्य को तैयार करे। प्रकर्षेण जानता हुआ दिव्य एव सशोधक अग्नि तीन बार सम्भक्त हविः को देवताओ के समीप तक ले जावे।

11. (मै 'अग्नि' पर) बारम्बार घृत सिञ्चित करता हूँ। (क्योकि) घृत इसकी योनि (है), वह (अग्नि) घृताश्रित (है) तथा घृत इसका धाम (है)। हे अग्ने ! अपनी इच्छा से (हविः को देवो तक) वहन करो। हे वर्षक ! स्वाहाकृत हविः को वहन करने की इच्छा करो (और, देवो को) हर्षित करो।

सूक्त-4

1. (हे यजमानो ! मै) सुष्ठु प्रकाशित होते हुए, शोभन स्तुति वाले, शोभन अन्न वाले (तथा) प्रजाओ के अतिथिरूप अन्न को तुम्हारे लिए पुकारता हूँ , जातवेदस् जो देव देवो से मनुष्यो तक के मध्य मित्र के समान काम्य (=अभीष्ट) (है)।

2. इसकी परिचर्या करते हुए भृगुओ ने (इस 'अग्नि' को) जलो के सहनिवासस्थान और मानवीय प्रजाओं के मध्य (इसे) दो प्रकार से स्थापित किया। देवो का व्यापक, द्रुतगामी अश्वों वाला यह अग्नि समस्त प्राणियो (=लोको) को अभिभूत करे।

3. (स्वर्ग मे) निवास की इच्छा करते हुए देवो ने प्रिय अग्नि को मानवीय प्रजाओ मे मित्र के समान स्थापित किया। जो (हविष्य) देने वाले के लिए (उसके) यागगृह मे दान देने वाला है, वह (अग्नि) कामना करती हुई रात्रियो को प्रकाशित करता है।

4. इस (अग्नि) की पुष्टि अपने (ही) जैसी रमणीया (है), प्रथित होते हुए तथा ज्वलनशील इसकी सदृष्टि (इसके ही समान रमणीया है), जो (अग्नि) ओषधियो के मध्य मे अपनी जिह्वा को उसी प्रकार बार–बार कम्पित करता है, जिस प्रकार रथ मे नॅधा घोडा (अपने) बालो को बार–बार कम्पित करता है।

5. मुझसे सम्बन्धित हविष्य–प्रदाताओ ने जब (अग्नि की) महत्ता की प्रशसा की, तब (उसने) कामना करने वालो के लिए (अपने) रूप को निर्मित किया। जीर्ण होता हुआ जो (आज्यादि सयोग के कारण) बार–बार तरूण (=प्रवृद्ध) होता है, वह (अग्नि) हविष्यादियो के मध्य विविध प्रकार की दीप्ति से जाना जाता है।

6. प्यासा हुआ सा जो (अग्नि) वनो मे समन्तात् दीप्त होता है, (प्रवण) मार्ग से जल के समान गमन करता है, घोडे के समान शब्द करता है। अन्धकारपूर्ण मार्ग वाला, तापक तथा रमणीय (अग्नि) तारो द्वारा मुस्कुराते हुए द्युलोक के समान दिखाई पडता है।

7 पृथिवी को चारो ओर से धारण करता हुआ, जो विशिष्ट रूप से स्थित होता है, (जो) रक्षकरहित पशु के समान स्वेच्छया गमन करता है, कान्तियुक्त, अन्धकार को व्यथित करने वाला (वह) अग्नि लताओ को जलाता हुआ मानो पृथिवी का आस्वादन करता है।

8. हे अग्ने ! मैने तुम्हारे पहले के आशीर्वाद के स्मरण मे तृतीय सवन पर मननीय स्तोत्र पढा। तुम हमे सयत वीरो वाले, महान्, कीर्तियुक्त अन्न (और) सुन्दर अपत्यो वाले धन को प्रदान करो।

9. हे अग्ने ! गुहा मे सम्भजन करते हुए, कल्याणकर वीरो वाले, शत्रुओ का अभिभव करने वाले गृत्समद (ऋषियो) ने तुम्हारे द्वारा जिस प्रकार श्रेष्ठत्व को प्राप्त किया, (उसी प्रकार, तुम) हमारे वीरो (और) स्तोता के लिए (अपने) उस (श्रेष्ठ) धन (=अन्न) को प्रदान करो।

सूक्त-5

1. होम–सम्पादक, अत्यन्त बुद्धिमान् (एव) पालक (अग्नि) पालक (यजमानो और उनकी) रक्षा के लिए उत्पन्न हुआ। अन्नयुक्त (हम) प्रकर्षेण पूज्य, जयशील (एवं) नियन्त्रक धन को प्राप्त करने मे समर्थ होवे।

2. यज्ञ के नेतृत्व करने वाले जिस (अग्नि) मे सप्त रश्मियॉ वितत हैं, वह पोता मनुष्य की भॉति देवो से सम्बद्ध उन समस्त (कर्मो) को प्रेरित करता है।

3. (हे अग्ने !) इस (यज्ञ) को अनुलक्षित करके (यजमान) जो (हविः) धारण करता है, मन्त्रो को उच्चारित करता है, उसे (तुम) समझो। (वह अग्नि) समस्त काव्यों (या, कर्मो) के चारो ओर चक्र के (चारो ओर) नेमि के समान व्याप्त हुआ है।

4. दीप्तियुक्त प्रशास्ता (अग्नि) वस्तुतः चमत्कृत बुद्धि के साथ उत्पन्न हुआ, इसके दृढ नियमो को जानता हुआ (यजमान) शाखाओ के समान बढता है।

5. जो इस (अनुष्ठीयमान कर्म) को प्राप्त करती है, वे व्याप्त , प्रीणयितृ (एव) स्वयं सरणशील (अङ्गुलियॉ) इस (अग्नि के) तीनो (गार्हपत्यादि मूर्तियो) के श्रेष्ठ वर्ण की बारम्बार परिचर्या करती है।

6. जब घृत को धारण करती हुई स्वसा (स्वसृस्थानीया जुहू) माता सबकी निर्मात्री भूमि (वेदी के समीप) पहुँचती है, तव (याग मे) उन (जुह्वादियो) के आ जाने पर अध्वर की कामना करने वाला (अग्नि) वृष्टि से यव के समान मुदित होता है।

7 ऋत्विक् (अग्नि) (अपने) कर्म के लिए स्वय ही ऋत्विक्–कर्म करे, (इसके अनन्तर,) हम स्तोत्र का सम्भजन करे और याग (–योग्य) अत्यधिक (हविः) प्रदान करे।

8 हे अग्ने ! विद्वान् (यजमान) समस्त यजनीय (देवो) को जिस प्रकार सन्तुष्ट करे (उसके लिए वैसा तुम करो)। हम जिस यज्ञ को करते है, यह तुम्हारे लिए ही (है।)

सूक्त-6

1. हे अग्ने ! (तुम) मेरे इस (अधीयमान) समिधा (और) उपसदन साधनभूत (हविष्य) को स्वीकार करो। (मेरी) इन स्तुतियो को भी सुनो।

2 हे बलपुत्र, व्यापक यज्ञरूप (तथा) सुष्ठु उत्पन्न अग्ने। (हम) इस (आहुति) तथा इस सूक्त के द्वारा तुम्हारी परिचर्या करे।

3 हे धनदाता अग्ने ! परिचरणकर्त्ता (हम) स्तुतियो द्वारा सम्भजनीय (तथा, हिरण्यरूप) धनो के इच्छुक तुम्हारी स्तुतियो द्वारा परिचर्या करे।

4 हे वसुपते (एव) वसुप्रदातर् (अग्ने) ! अन्नवान् तथा विद्वान् वह (तुम) (हमारे स्तोत्र को) समझो, द्वेष करने वालो को हमसे पृथक् करो।

5 वह (अग्नि ही) हमारे लिए द्युलोक से वृष्टि (करता है), वह (अग्नि ही) हमारे लिए अप्राप्य बल (प्रदान करता है), वह (अग्नि ही) हमारे लिए अपरिमित प्रकार के अन्न को (प्रदान करता है)।

6. हे (देवों के) सर्वोत्कृष्ट दूत (–रूप) (एव) सर्वाधिक यजनीय होता (अग्ने) ! (तुम) हमारी स्तुति द्वारा पूजा करने वाले (तथा) (अपनी) रक्षा के इच्छुक के पास (उसके रक्षार्थ) गमन करो।

7. हे क्रान्तप्रज्ञ (अग्ने) ! (यजमान और यष्टव्य–) दोनो के जन्मो को जानते हुए तुम (मनुष्यों के) हृदय मे (हो), स्वजनो से सम्बद्ध (तथा) मित्रो से सम्बद्ध दूत के समान गमन करते हो।

8. (हे अग्ने !) (सबको) जानते हुए से वह (तुम) हमारे मित्र होओ, हे चेतनावन् ! देवताओं का अनुक्रम से यजन करो और (मेरे) इस कुश (के आसन) पर आकर बैठो।

सूक्त-7

1 हे (देवो में) सर्वोत्कृष्ट भारत, ऋत्विजो के सम्बन्धी (तथा) व्यापक अग्ने । (तुम) दीप्तिमान् (तथा) बहुतो द्वारा स्पृहणीय श्रेष्ठ धन का आहरण करो।

2. (हे अग्ने !) देव और मनुष्यो की (कोई कष्टकर) शक्ति हम पर शासन न करे और (तुम) उसी (शक्ति) से (तथा) शत्रुता से (मेरी) रक्षा करो।

3 और, तुम्हारे द्वारा (अनुगृहीत) हम (अपने) द्वेषको का उदक–सन्बन्धिनी धारा के समान अतिक्रमण करके गमन करे (अर्थात्, उन्हे पराभूत करे)।

4. हे शोधक अग्ने ! दीप्तियुक्त (एव) वन्दनीय (तुम) अत्यधिक विभासित होते हो। तुम घृत (की आहुतियो) द्वारा पूजित (हो)।

5. हे भारत (ऋत्विजो के पुत्रस्थानीय) अग्ने ! इच्छायुक्त (गायो), सेचक (बलीवर्दो) (तथा) अष्टपदा (गर्भिणी गायो) से आहुत(=आरधित) तुम हमारे लिए (होते) हो।

6 (जिनका) अन्न समिधा (है), (जिनमे) घृत सिक्त (होता है), (वे ही) पुरातन, होम–निष्पादक, वरणीय (और) बल के पुत्र ('अग्नि') अतीव रमणीय (है)।

सूक्त-8

1 सर्वाधिक यशस्वी (एव) उदार अग्नि के अश्वो की उसी प्रकार स्तुति करो, जिस प्रकार अन्न की इच्छा करता हुआ (व्यक्ति) गमनार्थ घोडो की स्तुति करता है।

2. शोभन नेतृत्व वाला, अजरणीय, जरारहित तथा शोभन उपक्रम (=रूप वाला) जो (वह) अग्नि हविः प्रदाता के (कल्याण के) लिए उसके शत्रु का नाश करता हुआ आहुत (=आराधित) होता है।

3 सुन्दर ज्वाला वाले जो अग्नि गृह मे आते हुए दिन रात स्तुत होते हैं, जिनका व्रत (कभी) क्षीण नही होता है।

4. विविध रङ्गो वाला, अजर रश्मियो द्वारा अभिव्यक्त होते हुए (अग्नि) (अपने) प्रकाश से, किरण से (युक्त) सूर्य के समान विभासित होता है।

5. उक्थ (=सूक्त), अत्रि को अनुलक्षित करके, स्वयमेव दीप्तिमान् अग्नि को प्रवुद्ध करते हैं, (वह) अग्नि सभी एश्वर्यो को धारण करता है।

6. (किसी के भी द्वारा) हिसित न होते हुए हम 'अग्नि', 'इन्द्र', 'सोम' (तथा अन्य सभी) देवो की रक्षाओ से युक्त होवे, रक्षाओ से युक्त (हम) (अपने) युद्धेच्छुक (शत्रुओ) को अभिभूत करें

सूक्त-9

1 होम –सम्पादक, विशिष्ट दान वाला, देदीप्यमान, शोभन बल वाला, अहिंसित व्रत रूपी प्रकृष्ट बुद्धि वाला, सर्वोत्तम, सहस्रोपलब्धिधारक (एव) दीप्तियुक्त जिह्वा वाला 'अग्नि' होतृषदन (=उत्तरा वेदी) पर आसीन हुआ।

2 हे (कामना–) सेचक ! तुम (यज्ञ मे) हमारे दूत (होओ), तुम (हमारे) आपत्तियों से पार करने वाले (और) रक्षक (होओ), तुम धन के आभिमुख्येन प्रणेता (होओ)। हे अग्ने ! प्रमाद न करते हुए (तथा) प्रकाशित होते हुए (तुम) हमारे पुत्र के पुत्र होने पर (अस्मद् सम्बद्ध) शरीरो के रक्षक होओ।

3. हे अग्ने ! (हम) परम उत्कृष्ट जन्मस्थान ('द्युलोक') (तथा) अवर (जन्मस्थान–'अन्तरिक्ष') मे अवस्थित होने वाले तुम्हारी स्तुतियो द्वारा परिचर्या करते है, जिस योनि से (तुम) उत्पन्न हुए हो, (मै) उस (प्रदेश) का यजन करता हूँ, (तुम्हारे) समिद्ध होने पर (अध्वर्य्वादि) तुम्हे हविष्यो की आहुति प्रदान करते है।

4 हे अग्ने ! सर्वोत्तम पुरोहित (तुम) हविष्य द्वारा (देवो का) यजन करो, क्षिप्रकारी (तुम) देव अन्न को (हमे) प्रदान करो, तुम धनो के श्रेष्ठ स्वामी हो, तुम देदीप्यमान वाणी के प्रज्ञाता हो।

5. हे (शत्रु–) क्षेपक अग्ने ! प्रतिदिन (होत्रकाल मे) उत्पन्न होते हुए तुम्हारे दोनो (प्रकार के) धन (कभी) क्षीण नही होते है। हे अग्ने ! (तुम) स्तोता को अन्नयुक्त करो, (उसे) शोभन पुत्र रूप धन का स्वामी बना दो।

6 (हे अग्ने !) इस रूप से युक्त (एव) शोभन धन वाले वह (तुम) हमारे लिए, (होओ), देवो के यजन करने वाले, सर्वाधिक पूजक, अहिंसित, (देवो के) रक्षक और हमे आपत्तियो से पार करने वाले (होओ), हे अग्ने ! कान्तियुक्त और धनयुक्त (तुम) क्षेमपूर्वक दीप्त होओ।

सूक्त-10

1. आह्वान–योग्य (एव) पिता के समान मुख्य 'अग्नि' मनुष्य (यजमान) द्वारा वेदि पर समिद्ध हुआ। दीप्ति का आच्छादन करता हुआ, अमरणधर्मा, विज्ञानयुक्त, अन्नयुक्त (तथा) बलवान् वह ('अग्नि') (सबके द्वारा) परिचरणीय है।

2. अमरणधर्मा, विशिष्टप्रज्ञ (एव) विचित्र दीप्तियो वाला 'अग्नि' समस्त स्तुतियो द्वारा (किये जाने वाले) मेरे आह्वान को सुने, (उस 'अग्नि' के) रथ को 'श्यावा' वर्ण वाले (अथवा) 'रोहित' वर्ण वाले अथवा 'अरूण' वर्ण वाले अश्व खीचते हैं और ('अग्नि') (रथ को) विभिन्न दिशाओ मे ले जाता है।

3. (अध्वर्युओ ने) ऊर्ध्वमुख अरणि (या, काष्ठ) मे सुष्ठु प्रेरित ('अग्नि') को उत्पन्न किया , 'अग्नि' विविध औषधियो मे गर्भ (रूप से) (अवस्थित) है। रात्रि मे उत्तम ज्ञानवान् ('अग्नि') अन्धकार द्वारा अनाच्छादित (एव) महादीप्तियुक्त (होकर) वास करता है।

4 (मै) समस्त प्राणियो को अधिष्ठित करते हुए, विशाल, प्रवर्तमान रूप द्वारा प्रवृद्ध, (हविर्लक्षण) अन्न से व्याप्त, बलवान् (एव) स्पष्ट दृश्यमान 'अग्नि' को हविष्य (और) घृत से दीप्त (या, सिञ्चित) करता हूँ।

5 (मै) सभी दिशाओ मे देखते हुए ('अग्नि' को) दीप्त करता हूँ (और, 'अग्नि')निर्बाध मन से उस (हविः) का सेवन करे। मर्त्यों द्वारा श्रवणीय, स्पृहणीय वर्ण वाला (तथा) (देदीप्यमान) शरीर द्वारा बारम्बार हिलता हुआ 'अग्नि' अभिमर्शनीय नही होता ।

6 (हे अग्ने !) श्रेष्ठ (तेज) द्वारा शत्रुओ का अभिभव करते हुए (तुम) भजनीय स्तोत्र (अपना) समझो, तुम्हारे द्वारा प्रेरित (हम) मनु के समान (तुम्हारे स्तोत्र को) उच्चारित करे। धन सभक्ता (मै) स्तुतिकामी (मन) से सम्पूर्ण (एव) मधुसमवेत 'अग्नि' का आह्वान करता हूँ।

सूक्त-11

1 हे इन्द्र ! आह्वान को सुनो, हिसा मत करो, तुम्हारे धनो के दानार्थ (हम) पात्र हो जाये। (यजमान को) धन प्रदान करने की इच्छा वाली बहती हुई नदियो के सदृश (हविष्य) सचमुच तुम्हे प्रवृद्ध करें।

2. हे इन्द्र ! तुमने जिन विशाल जलराशियो को उन्मुक्त किया, हे शूर ! पूर्वकालीन, 'अहि' के द्वारा परिष्ठित उन जलराशियो को तुमने बढाया। उक्थो द्वारा प्रवृद्ध होते हुए 'इन्द्र' ने अपने को अमरणधर्मा समझने वाले हिसक को मार डाला।

3. हे शूर ! 'रूद्र' से सम्बन्धित जिन स्तुतियो मे तुम अब भी कामना करते हो, तुम्हारे लिए ही हैं। जिन पर तुम प्रसन्न रहते हो, गतिशील 'इन्द्र' के लिए दीप्तिपूर्ण धवल वर्ण वाली स्तुतियाँ तुम्हारें पास जाती हैं।

4 हे इन्द्र ! (हम) तुम्हारी उज्ज्वल शक्ति को प्रवृद्ध करते हुए (तुम्हारे) शुभ्र वज्र को (तुम्हारी) बाहुओ पर रखते है। हे इन्द्र प्रवृद्ध होते हुए दस्युओ की प्रजा को हमारे लिए वज्र के द्वारा पराजित कर दो।

5 हे शूर ! गुफाओ मे स्थित, छिपाने योग्य जलो में छिपे हुए मायावी राक्षसो से निवास करते हुए जलो तथा आकाश को भी स्तब्ध किये हुए (अपने) पराक्रम से 'अहि' को मार डाला।

6. हे इन्द्र ! (हम) तुम्हारे पूर्वकालीन महान् कार्यो की स्तुति करे और (हम) (तुम्हारे) नूतन कर्मो की (भी) स्तुति करे। तुम्हारे दोनो भुजाओ पर चमकते हुए वज्र की स्तुति करें (और) तुम्हारे पराक्रम के सूचक दोनो अश्वो की स्तुति करें।

7 तीव्रता से गमन करते हुए (या, यजमान के लिए धन की कामना करते हुए) जलवृष्टि करने वाले दोनो घोडो ने शब्द किया , समतल भूमि विशेष रूप से फैल गई, मेघ भी फैलता हुआ (स्थिर बना दिया गया)।

8. प्रमाद न करता हुआ मेघ (भी) स्थिर कर दिया, माध्यमिका वाक् के साथ-साथ शब्द करता हुआ (मेघ) सञ्चरित हुआ। (स्तोताओ ने) दूरस्थ, 'इन्द्र' द्वारा प्रेरित अत्यधिक शब्दमयी वाणी को प्रवृद्ध करते हुए अत्यधिक प्रथित किया।

9. 'इन्द्र' ने विशाल जलराशि को आवृत कर लेटे हुए मायावी 'वृत्र' को मार डाला, शब्द करते हुए शक्तिशाली इसके वज्र से भयभीत 'द्यावापृथिवी' कॉप उठे।

10 मानव हितकारी (होकर) ('इन्द्र') ने जब अमानवीय ('वृत्र') को मार डाला, (तब) शक्तिशाली इस (इन्द्र) के वज्र ने अत्यधिक क्रन्दन किया। मायावी दानव की मायाओ को धराशायी कर दिया (और) अभिषुत 'सोम' (को) प्रदान किया।

11 हे शूर इन्द्र ! अभिषुत 'सोम' का पान करो, 'सोम' तुम्हे हर्षित करे, पूरित होते हुए तुम्हारे उदर–पार्श्वों को वढा दे, इस प्रकार से अभिषुत (एव) आपूरित होने वाले 'सोम' ने 'इन्द्र' को तृप्त किया।

12 (हे इन्द्र !) मेधावी स्तोता (हम) भी तुम्हारे सरक्षण मे हो जाये , 'ऋत' (=यज्ञ) की इच्छा करते हुए कर्म से सयुक्त हो रक्षा की कामना से युक्त (हम) शोभन स्तुति को प्राप्त करे (और) शीघ्र ही तुम्हारे दान के लिए पात्र हो जायें।

13 हे इन्द्र ! जो (हम) तुम्हारी सहायता से शक्ति को प्रवृद्ध करते हुए सहायता की कामना वाले (है), तुम्हारे आश्रय मे हो जाये, हमारे लिए उस धन को प्रदान करो, जिसे अत्यधिक बलशाली (हम) चाहते है।

14. हे 'इन्द्र'! (तुम) निवास देते हो (और) हमे मित्र प्रदान करते हो, हे 'इन्द्र' ! मरूतों से सम्बद्ध गण को हमारे लिए देते हो। एक साथ प्रसन्न होने वाले जो हर्षित होते हुए तथा वायु के समान गति वाले प्रथमतः आहूत सोम को पीते है।

15 हे इन्द्र ! विशेषेण तृप्त होते हुए (और) शक्तिशाली होते हुए जिनके ऊपर (आप) प्रसन्न रहते है, (वे मरूत्) 'सोम' को पियो। हम (लोगो को सङ्ग्रामो मे पार लगाने वाले तुमने बृहद् स्तुतियो के द्वारा 'द्युलोक' को बढाया ।

16. हे तारक ! वे सचमुच महान् (है), जो उक्थो के द्वारा सुखकर तुम्हारी परिचर्या करते है। कुश को फैलाते हुए अथवा यज्ञ को करते हुए तुम्हारे ही द्वारा रक्षित व्यक्तियो ने (ही) धन को प्राप्त किया।

17 हे शूर इन्द्र ! विशाल त्रिकद्रुको मे ही प्रसन्न होते हुए 'सोम' को पियो, श्मश्रु में लिपटे हुए 'सोम' को बार–बार हिलाते हुए (एव) प्रसन्न होते हुए (तुम) निचोडे गये 'सोम' को पीने के लिए दो घोडो पर चढकर जाओ।

18 हे शूर इन्द्र ! (उस) बल को धारण करो, जिसके द्वारा मकडी के सदृश बिल को (तुमने) टुकडें–टुकडें कर दिया, आर्यजन के लिए प्रकाश को प्रकट किया, हे इन्द्र ! (तुमने) राक्षसो को बायीं ओर कर दिया।

19. (हे इन्द्र !) (हम) उस (व्यक्ति) की कोटि में पहुँच जाये, जो (हम) तुम्हारी श्रेष्ठ सहायता से सम्पूर्ण स्पर्धियो (और) दस्युओ को पार करते है (और) (तुमने) हमारे लिए 'त्वष्टा' के पुत्र 'विश्वरूप' को 'त्रित' की मित्रता के लिए हिसित किया।

20. इस मदकर (एव) चुआये जाते हुए 'त्रित' के लिए प्रवृद्ध होते हुए (तुमने) 'अर्बुद' को मार डाला, 'सूर्य' की भॉति, चक्र को घुमाया; 'अङ्गिरस्' से युक्त 'इन्द्र' ने 'बल' को हिसित कर दिया।

21. हे इन्द्र ! तुम्हारी वह धनवती दक्षिणा स्तोता के लिए, निश्चय ही, कामनाओं का दोहन करने वाली हो, स्तोताओ को शक्ति प्रदान करो, ऐश्वर्य का देव ('भग') हमे लॉघ कर न दे, उत्तम पुत्रो से युक्त (हम) यज्ञ में (तुम्हारी) स्तुति करे।

अनुवाक–II

सूक्त-12

1. जिस प्रधान (एव) मनस्वी देव ने उत्पन्न होते ही (अपने) पराक्रम से देवताओ को अभिभूत कर लिया, जिसकी शक्ति से द्युलोक तथा पृथिवी लोक कॅाप गये, हे लोगो ! महान् बल की महिमा से (युक्त) वह (ही) 'इन्द्र' (है)।

2 जिसने कॉपती हुई पृथिवी को स्थिर किया, जिसने इधर–उधर चलने वाले पर्वतो को (अपने–अपने स्थान पर) स्थापित किया, जिसने विस्तृत अन्तरिक्ष को नापा , जिसने द्युलोक को (गिरने से) रोका, हे लोगो ! वह (ही) 'इन्द्र' (है)।

3 जिसने 'वृत्र' को मार कर सात नदियो को प्रवाहित किया , जिसने 'बल' की गुफा से गायो को बाहर निकाला, जिसने दो पत्थरो (या, बादलों) के मध्य मे 'अग्नि' को उत्पन्न किया, जो युद्धों मे (शत्रु का) विनाश करने वाला (है), हे लोगो ! वह (ही) 'इन्द्र' (है)।

4. जिसके द्वारा ये सम्पूर्ण (वस्तुएँ) गतिशील कर दी गयी है, जिसने निकृष्ट दास वर्ण को गुफा मे कर दिया, जिसने शिकार को जीत लेने वाले शिकारी की भॅाति शत्रु के धनो को छीन लिया, हे लोगो ! वह (ही) 'इन्द्र' (है)।

5 जिस भयड्करं (देव) के विषय मे, "वह कहॉ (है)?" ऐसा (लोग) पूँछते हैं, और, इसके विषय मे, "यह नही है" इस प्रकार (भी) (लोग) कहते है, वह (देव) विजेता की भॉति शत्रु के धनो को सर्वतः नष्ट कर देता है, हे लोगो ! वह (ही) 'इन्द्र' (है), इसमे श्रद्धा धारण करो।

6. जो समृद्ध (व्यक्ति) का प्रेरक (है), जो निर्धन का (प्रेरक है), जो याचना करने वाले (तथा) स्तुति करने वाले पुरोहित का (प्रेरक) है, जो सुन्दर हनु वाला, जो ('सोम' पीसने के लिए) पत्थरो को सयोजित करने वाले (तथा) 'सोम' का अभिषव करने वाले (यजमान) का रक्षक (है), हे लोगो ! वह (ही) (इन्द्र) (है)।

7. जिसके अनुशासन मे घोडे (है), जिसके (अनुशासन मे) गाये (है), जिसके (अनुशासन मे) ग्राम (हैं), जिसके (अनुशासन मे) सम्पूर्ण रथ (है), जिसने 'सूर्य' को (उत्पन्न किया है), जिसने 'उषा' को (उत्पन्न किया है), जो (बादलो में से) जलो का लाने वाला (है), हे लोगो ! वह (ही) 'इन्द्र' (है)।

8. शब्द करती हुई (तथा) एक साथ गमन करती हुई (शत्रुओ की सेनाएँ) जिस (देव) को विविधप्रकारेण (स्वरक्षार्थ) पुकारती है; (जिसको) उत्कृष्ट (तथा) अधम–दोनो (प्रकार के) शत्रु (स्वसहायतार्थ बुलाते है), जिसको एक ही (प्रकार के) रथ पर बैठे हुए (दो रथी) पृथक्–पृथक् बुलाते हैं, हे लोगो ! वह (ही) 'इन्द्र' (है)।

9. जिसके बिना लोग विजय प्राप्त नही करते है, युद्ध करते हुए (लोग) रक्षा के लिए जिसे बुलाते हैं, जो सम्पूर्ण (जगत्) का प्रतिनिधि है; जो स्थिर (पदार्थो) को चलायमान कर देने वाला (है), हे लोगो ! वह (ही) 'इन्द्र' (है)।

10 जिसने महान् पाप को धारण करने वाले (तथा) ('इन्द्र' को) न मानने वाले अनेक (व्यक्तियो) को वज्र से मार डाला, जो हिसा करने वाले (या, दर्पयुक्त) (व्यक्ति) के हिसा–कर्म (या, दर्प) को सहन नहीं करता है, जो दस्यु का वध करने वाला (हैं), हे लोगो ! वह (ही) 'इन्द्र' (है)।

11 जिसने पर्वतो पर निवास करते हुए 'शम्बर' को चालीसवे वर्ष मे खोज निकाला, जिसने बल को प्रदर्शित करते हुए (तथा) (जल को घेर कर) शयन करते हुए दनु-पुत्र 'अहि' को मार डाला, हे लोगो ! वह (ही) इन्द्र (है

12 सात किरणो (या, मेघो) वाले, वर्षणशील (तथा) वृद्धिशील (या, बलशाली) जिस (देव) ने 'सात' सिन्धुओ को बहने के लिए विसर्जित किया, हाथ मे वज्र को धारण करने वाले जिसने द्युलोक मे आरोहण करते हुए 'रौहिण' को मार डाला, हे लोगो ! वह (ही) 'इन्द्र' (है)।

13. इसके लिए, 'द्युलोक' (तथा) 'पृथिवी' भी झुक जाते है, इसके पराक्रम से पर्वत भी डर जाते है, जो वज्र सदृश भुजाओ वाला प्रख्यात सोमपानकर्त्ता (है), जो हाथ मे वज्र धारण करने वाला (है) हे लोगो वह इन्द्र है।

14 जो अभिषव करने वाले (व्यक्ति) की रक्षा करता है, जो (हविः) पकाने वाले (व्यक्ति) की, जो (अपनी) रक्षा के लिए स्तुति करने वाले (व्यक्ति) की (तथा) जो स्तोत्र (-पाठ) करने वाले (व्यक्ति) की रक्षा करता है, स्तोत्र जिसकी वृद्धि करने वाला (है),'सोम' जिसकी यह अन्न (या, धन) जिसकी (वृद्धि करने वाला है), हे लोगो ! वह (ही) इन्द्र (है)।

15 (हे 'इन्द्र' !) भयानक जो (तुम) अभिषव करने वाले (तथा) (हविः) पकाने वाले (व्यक्ति) के लिए अन्न को पुनः -पुनः प्रदान करते हो, वह (तुम) निश्चय ही यथार्थभूत हो। हे इन्द्र ! तुम्हारे प्रिय हम सभी दिनो मे उत्तम वीरो से युक्त (होते हुए) (तुम्हारे लिए) स्तोत्र उच्चारित करे।

सूक्त-13

1 (हे इन्द्र !) उन जलो के चारो ओर (वर्षा-) ऋतु ('सोम' को) जन्म देने वाली (है,) जिन (जलों) मे (यह) बढता है, (उन जलो मे) शीघ्र उत्पन्न (होकर) सम्यक् प्रविष्ट हुआ। वह प्रवृद्ध होने वाला (और) चुआने योग्य हो गया, 'सोम' का वह जलात्मक रस पीने योग्य (=अमृत तुल्य), प्रथम (प्रख्यात) (तथा) प्रशसनीय है।

2. रस को धारण करती हुई एक साथ ये (जलराशियॉ) चारो ओर गमन करती है, सम्पूर्ण खाद्य- पदार्थो से युक्त ('इन्द्र') भोजन प्रदान करता है, प्रवहणशील (जलो) के प्रवाहित होने के लिए समान मार्ग (है), जिसने उन (सब) को निर्मित किया, वह (तुम) प्रशसनीय हो।

3. (यजमान) जब (हविष्) प्रदान करता है, (तब,) एक (पुरोहित) क्रमशः (मन्त्रों का) उच्चारण करता है, (उस कर्म मे) तत्पर दूसरे रूप को परिमार्जित करता हुआ (ऋत्विज्) उसे (उसके समीप) पहुॅचाता है, (और, 'ब्रह्मा') एक की सम्पूर्ण गलतियो को परिमार्जित करता है, जिसने उन (सब) को (निर्मित) किया, वह (तुम) प्रशंसनीय हो।

4. जिस प्रकार अतिथि के लिए धारक धन को, (उसी प्रकार,यजमान) प्रजाओ के लिए पोषक तत्व का विभाजन करते हुए स्थित होता है, पालक (यजमान से प्राप्त) भोजन (=हविष्य) को, सेतुबन्ध (-कर्म) को करता हुआ (व्यक्ति) दॉतों से खाता है, जिसने उन (सब) को किया, वह (तुम) प्रशसनीय हो।

5. (तुमने) पृथिवी को 'सूर्य' के सम्यग् दर्शनार्थ निम्नवर्ती कर दिया (और) हे 'अहि' के हन्तर् ! जिसने नदियो के मार्गो को उन्मुक्त कर दिया, देवताओ ने उस (तुम) देव ('इन्द्र') को स्तोत्रो के द्वारा उत्पन्न किया (तथा) जलो द्वारा अन्नवान् को; जिसने उन (सब) को किया, वह (तुम) प्रशसनीय हो।

6 जो (तुम) अन्न प्रदान करते हो और (जिस तुमने) शुष्क और मधु-सदृश आर्द्र (पदार्थ) से दोहन किया, जो विवस्वान् (के विषय) मे निधि को धारण करता है, (तुम) सम्पूर्ण (जगत्) का अकेले (ही) स्वामित्व करते हो,

वह (तुम) प्रशसनीय हो।

7. जिस (तुम) ने पुष्पवती तथा फलवती, तप्त कर देने वाली औषधियो को खेतो मे (अपने) नियम (=कर्म) से धारण किया और जिस (तुम) ने विविध (प्रकार की) 'सूर्य' की किरणो को उत्पन्न किया और जिस महान् प्राणिसमूह को (तुमने) चारो ओर उत्पन्न किया, वह (तुम) प्रशसनीय (हो)।

8 हे बहुकर्मन् । जिस (तुम) ने नृमर–पुत्र 'सहवसु' को मारने के लिए शक्तिमती वज्रधारा के निर्मल मुख के समीप तुरन्त ही अन्नप्राप्ति के लिए शत्रु (=हिसक) के विनाश के लिए पहुँचाया, वह (तुम) प्रशसनीय (हो)।

9 जब श्रेष्ठ व्यक्ति के यहाँ प्रसन्नता होने पर, स्तोता (यजमान) की रक्षा करते हो, उस समय दस अथवा सौ तुम्हारे अश्व रथ का वहन करते है, सुष्ठु रक्षक (तुमने) 'दभीति' के लिए बिना रस्सी मे बाँधे ही शत्रुओ को बाधित कर दिया, वह (तुम) प्रशसनीय हो।

10 सम्पूर्ण नदियो ने इस ('इन्द्र') के लिए शक्ति को क्रमशः प्रदान किया, (और,लोगो ने) इसके लिए धन को ध ारण किया है। (हे इन्द्र !) (तुमने) छः विस्तृत (लोको) को दृढ किया (तथा) पञ्च जनो के चारों ओर स्थित होकर (उनके) प्रेरक हो गये हो, वह (तुम) प्रशसनीय हो।

11 हे वीर इन्द्र ! तुम्हारी शक्ति सुष्ठु प्रशसनीय (है), जो (कि) एक (ही) कर्म के द्वारा धन को प्राप्त कर लेते हो, बलशाली 'जातूष्ठिर' (राजा) के लिए (तुमने) अन्न (प्रदान किया), बलपूर्वक जो (तुमने) सम्पूर्ण (कर्मों) को किया, (वह) (तुम) प्रशसनीय हो।

12 (जिस तुमने) त्वरायुक्त (लोगो) को वेगयुक्त जल को पार करने के लिए जल प्रवाह को 'वय्य' तथा 'तुर्वीति' के लिए शान्त कर दिया, जल के नीचे डूबते हुए, (अपने को) कान्तिमान् बताते हुए, अन्धे तथा पङ्गु 'परावृज्' को निकाल दिया, वह (तुम) प्रशसनीय हो।

13. हे वासक ! (तुम) हमे उस धन को देने के लिए सामर्थ्ययुक्त बनाओ, निवासयोग्य तुम्हारे धन अनेक (हैं)। हे इन्द्र ! जो (हम) रमणीय धन की इच्छा वाले (है), प्रतिदिन धन की कामना करते है, (हम) यज्ञ मे (अपने) उत्तम वीरो से युक्त (होते हुए) योग्य रीति से (तुम्हारी स्तुतियाँ) उच्चारित करे।

सूक्त-14

1. हे अध्वर्युओ ! 'इन्द्र' के लिए अमत्रो के द्वारा 'सोम' का आहरण करो, मदकर अन्न को ('इन्द्र' के लिए) सिञ्चित करो, सचमुच, पराक्रमी ('इन्द्र') इसके पान का इच्छुक (है), शक्तिशाली ('इन्द्र') के लिए (सोमरूपी) आहुति करो, वह इसकी कामना करता है।

2 हे अध्वर्युओं ! जिसने जल को आवृत करने वाले वृत्र को , अशनि के द्वारा वृक्ष के समान मार डाला, ('सोम') की) कामना करने वाले उस ('इन्द्र') के लिए इस ('सोम') का आहरण करो, यह 'इन्द्र' इस ('सोम') के पान के योग्य है।

3 हे अध्वर्युओ ! जिसने 'दृभीक' को मार डाला, जिसने गायो को बाहर निकाला, निश्चय ही, 'बल' को हिसित किया, उसके लिए इस ('सोम') को (लाओ), 'अन्तरिक्ष' मे 'वायु' के समान (एव) वस्त्रो के द्वारा वृद्ध के समान 'इन्द्र' को सोमो से आवृत कर दो।

4. हे अध्वर्युओ ! जिस ('इन्द्र') ने 'निन्यानवे' बाहुओ का प्रदर्शन करने वाले उरण को हिंसित किया और जिसने 'अर्बुद' को अधोमुख करके बाधित किया, उस 'इन्द्र' को 'सोम' की आहुति दिये जाने पर (स्तोत्रो से) प्रेरित करो।

5 हे अध्वर्युओ ! जिस ('इन्द्र') ने 'स्वश्न' को मारा, जिसने शोषणरहित 'शुष्ण' को स्कन्धविहीन (करके) (मार डाला), जिसने 'पिप्रु', 'नमुचि' (तथा) जिसने 'रुधिक्रा' को (मार डाला), उस 'इन्द्र' के लिए (सोमरूपी) अन्न की आहुति करो।

6. हे अध्वर्युओ ! जिसने 'शम्बर' के प्राचीन सैकडो नगरो को पत्थर के समान विदीर्ण कर दिया , जिसने 'वर्चिन्' के सैकडो–सहस्रो पुत्रों को धराशायी कर दिया, उस ('इन्द्र') के लिए 'सोम' का आहरण करो।

7 हे अध्वर्युओ ! जिस मारक (=हिसक) ने पृथ्वी की गोद मे सैकडो–सहस्रों को मार डाला, 'कुत्स' के, 'आयु' के (तथा) 'अतिथिग्व' के पुत्रो को निः शेषेण मार डाला, इस ('इन्द्र') के लिए 'सोम' का आहरण करो।

8. हे अध्वर्युओ ! नेतृत्वशील (तुम) जिस (यज्ञीय अन्न) की कामना करते हो, उसे 'इन्द्र' के लिए आनन्द से वहन करते हुए (शीघ्र ही) (उस कामना को) ('इन्द्र' से) प्राप्त करो। हे याज्ञिको ! (यज्ञ की) प्रसिद्ध के लिए (तथा) 'इन्द्र' के लिए हाथ से शुद्ध किये गये 'सोम' की आहुति करो।

9 हे अध्वर्युओ ! शीघ्रतापूर्वक काष्ठ के पात्र मे शोधित ('सोम') को ले आओ, हस्तनिर्मित ('सोम') का सर्वतः सेवन करता हुआ (इसकी) कामना करता है, 'इन्द्र' के लिए तुम मदकर 'सोम' की आहुति दो।

10. हे अध्वर्युओ ! जैसे गाय का थन दूध से (परिपूर्ण रहता है, (उसी प्रकार,) उदार दानी 'इन्द्र' को सोमो से परिपूर्ण कर दो, मै इसके विषय मे भली–भॅाति जानता हूँ। पूज्य ('इन्द्र') इस ('सोम') को देने की इच्छा करने वाले को अनेकशः जानता है।

11. हे अध्वर्युओ ! जो (अन्तरिक्ष मे) दिव्य धन का (और) जो पृथिवी–सम्बद्ध धन का शासक (है), उस ('इन्द्र') को सोमो द्वारा, जैसे ऊर्दर (–पाश्वं) को यव से, (उसी प्रकार) परिपूर्ण करो, वह कर्म तुम्हारा होवे।

12. हे वासक ! हमे उस धन को देने के लिए समर्थ (=सक्षम करो), निवासयोग्य तुम्हारे धन अनेक (हैं)। हे इन्द्र ! धन की इच्छा वाले (हम) प्रतिदिन धन की कामना करते है, (हम) यज्ञ मे उत्तम वीरो से युक्त (होते हुए) योग्य रीति से (तुम्हारी स्तुतियॉ) उच्चारित करे।

सूक्त15

1 निश्चय ही, (मैं) शक्तिशाली (एव) सत्य (–भूत) ('इन्द्र') के महान (तथा) प्रामाणिक कार्यो को प्रकर्षेण कहता हूँ, जिसने 'त्रिकद्रुक' (–यागो) मे अभिषुत ('सोम') का पान किया (तथा) इसके मद मे 'इन्द्र' ने 'अहि' का वध किया।

2 (जिसने) आधाररहित (स्थान) पर महान् द्युलोक को स्थिर किया, द्यावापृथिवी (तथा) अन्तरिक्ष को (प्रकाश से) परिपूर्ण किया, उसने पृथ्वी को धारण किया तथा विस्तृत किया, 'इन्द्र' ने उन (कार्यो) को सोम के मद मे किया।

3 यागगृहो के समान पूर्व दिशा मे विशेषेण (तथा) वज्र के द्वारा गृहो के समान नदियो के मार्ग को खोदा, दूर तक जाने वाले मार्ग से सरलतापूर्वक गमन किया , 'इन्द्र' ने उन (कार्यो) को 'सोम' के मद मे किया।

4 (उस) 'दभीति' के अपहरणकर्ता असुरो के पास जाकर उसने सम्पूर्ण आयुधो को अग्नि में जला दिया, (उसने 'दभीति' को) गो, अश्व (तथा) रथो से सयुक्त कर दिया, 'इन्द्र' ने उन (कार्यो) को 'सोम' के मद में किया।

5 उस विशाल नदी को (जिसने) स्थिर किया, उसने स्नान करने मे असमर्थ (ऋषियो) को कुशलतापूर्वक पार करा दिया, वे (नदी को) ऊपर करके धन पाने के लिए चल पडे, 'इन्द्र' ने उन (कार्यो) को 'सोम' के मद मे किया।

6. उसने (अपनी) महिमा से 'सिन्धु' को उत्तर की ओर प्रवाहित किया, (अपने) वज्र से (उसने) 'उषस्' की गाडी को चूर–चूर कर दिया, वेगरहित (शत्रुओ) को (अपनी) वेगयुक्त सेनाओ से छिन्न–भिन्न करते हुए, 'इन्द्र' ने उन (कार्यो) को 'सोम' के मद मे किया।

7. वह 'परावृज्' (–ऋषि) कन्याओ के छिपने (की बात) जान कर प्रकट होता हुआ खडा हो गया, (और, वह) पङ्गु (होते हुए भी) उठ खडा हुआ (और) विविधतया देख लिया गया, 'इन्द्र' ने उन (कार्यो) को 'सोम' के मद मे किया।

8 अङ्गिरसो के द्वारा स्तुत होते हुए ('इन्द्र' ने) 'वल' को विदीर्ण कर दिया, (उसने) उसने पर्वतो के दृढ (बन्द) द्वारो को हटा दिया, इन (पर्वतो) के कृत्रिम अवरोधो को छिन्न–भिन्न कर दिया, 'इन्द्र' ने उन (कार्यो) को 'सोम' के मद में किया।

9 (तुमने) दस्युओं–'चुमुरि' और 'धुनि'– को स्वप्न से संयोजित करके मार डाला (और) 'दभीति' की सहायता की , वेत्रधारी द्वारपाल ने भी यहाँ पर (असुरो के) धन को प्राप्त किया; 'इन्द्र' ने उन (कार्यो) को 'सोम' के मद मे किया।

10. हे इन्द्र ! तुम्हारी वह धनवती दक्षिणा स्तोता के लिए, निश्चय ही, (कामनाओ का) दोहन करने वाली हो, (वह) (तुम्हारे) स्तोताओं के लिए सहायक हो, (हमें) छोडकर मत दो, हमको (भी) ऐश्वर्य (प्राप्त हो) , उत्तम वीरो से युक्त (हम) यज्ञ में योग्य रीति से (तुम्हारी) (स्तुति) उच्चारित करे।

सूक्त-16

1. मै श्रेष्ठ (देवो) मे ज्येष्ठतम तुम्हारे लिए मानों सम्यक् प्रज्जवलित अग्नि मे (प्रक्षिप्त होने के लिए) हविष्य का सम्भरण करता हूँ (तथा, उसे) शोभन स्तुति (अर्पित करता हूँ)। (हम) जरारहित, (शत्रु को) जीर्ण करते हुए, (सोमाभिषव से) सिञ्चित (तथा) चिर युवा 'इन्द्र' को रक्षार्थ आहूत करते हैं।

2 जिस महान 'इन्द्र' के विना यह (जगत्) कुछ (भी) नही है, इसमे सम्पूर्ण पराक्रम निहित (है) , (वह) उदर मे 'सोम' शरीर मे बल (तथा) सामर्थ्य, हाथ मे वज्र (तथा) शिरस् मे प्रज्ञा को धारण करता है।

3 (हे इन्द्र !) जब (तुम) तीव्रगामी (अश्वो) के द्वारा अनेक योजन गमन करते हो, (तब) तुम्हारा बल पृथिवी और आकाश से पराभूत होने को नही (है), न (तो) तुम्हारा रथ (ही) समुद्रो (और) पर्वतो से पराभूत होने को (है) (और) न (ही) कोई भी तुम्हारे वज्र को पा सकता है।

4 सभी इस पूजनीय, धर्षक, (कामना–) सेचक (तथा) प्रतिस्पर्धी ('इन्द्र') के लिए कर्म का सम्भरण करते हैं, (हे) यजमान् !) सेचक (तथा) अधिक बुद्धिमान (तुम) हविष्य द्वारा यजन करो, हे इन्द्र ! (तुम) (कामना) सेचक तेज से 'सोम' का पान करो।

5. (कामना) सेचक मधु का मादक कोश, (कामना) सेचक अन्न वाले, (कामना) सेचक ('इन्द्र') के पानार्थ प्रवहमान है, दोनो 'अध्वर्यु' (कामना) सेचक (है), (कामना) सेचक पाषाण (कामना) सेचक ('इन्द्र') के लिए (कामना–) सेचक 'सोम' को निचोडते है।

6 .हे इन्द्र ! तुम्हारा वज्र शक्तिशाली (है), और, तुम्हारा रथ शक्तिशाली (है), (तुम्हारे) (दोनो) घोडे शक्तिशाली (है) (तुम्हारे) आयुध शक्तिशाली (है), हे वर्षक ! तुम शक्तिशाली (हो) (और) मदकर ('सोम') का स्वामित्व करते हो, (तुम) शक्तिशाली 'सोम' के (पान से) तृप्त होओ।

7. (मै) नाव की भॉति (पारक), जनसमूह मे स्तुति की कामना से युक्त (एवं) धर्षक तुम्हारे पास सोमसमर्पणो मे मन्त्र के सहित पहुॅचता हूँ। हमारी स्तुति के (विषय मे) बार–बार·समझो, धनो के स्रोत की भॉति 'इन्द्र' को (हम) सिञ्चित करते है।

8 जिस प्रकार अन्न से तृप्त गाय बछडे की ओर (जाती है), (उसी प्रकार, तुम) कष्ट आने से पूर्व हमारी ओर आओ। हे शतक्रतो ! वर्षक (युवक) जैसे पत्नियो से (युक्त) होते है, वैसे ही) (हम) तुम्हारी कृपाओ (या, स्तुतियों) से सयुक्त (हो)।

9 हे इन्द्र ! तुम्हारी वह धनवती दक्षिणा स्तोता के लिए, निश्चय ही, (कामनाओ का) दोहन करने वाली हो, (वह) (तुम्हारे) स्तोताओ के लिए सहायक हो, (हमे) छोडकर मत दो, हमको (भी) ऐश्वर्य (प्राप्त हो), उत्तम वीरो से युक्त (हम) यज्ञ मे योग्य रीति से (तुम्हारी) (स्तुति) उच्चारित करे।

सूक्त-17

1. इस ('इन्द्र') के लिए , अङ्गिरसो के समान नूतन (स्तोत्रो) को प्राप्त करो, जिस प्रकार इसकी शक्तियॉ पहले की तरह प्रवृत्त होती हैं; जो सम्पूर्ण गोत्र शक्ति द्वारा आवृत किये गये थे, 'सोम' के मद मे उन दृढ (बन्द) द्वारों को ('इन्द्र' ने) उद्घाटित किया।

2 वह, जिसने प्रथम ('सोम'–) पान के लिए (अपनी) शक्ति को मापते हुए (अपनी) महिमा को प्रवृद्ध कर दिया; शूर ('इन्द्र') जिसने युद्धो में (अपने) शरीर को (कवच) से आवृत किया है, (अपनी) शक्ति से शीर्ष पर 'द्युलोक' को धारण किया है।

3. इसके पश्चात्, (तुमने) प्रधान (एव) महान् वीर–कर्म किया, जो प्रारम्भ में इसके मन्त्र के द्वारा (यजमान के लिए) बल को प्रेरित किया, स्वर्णिम अश्वयुक्त रथ पर स्थित ('इन्द्र') के द्वारा विशेषेण च्युतिशील, प्रवर्त्तक (या, अभिवृद्धिकारी) (तथा)

साथ–साथ (दौडने वाले) (अश्व) [illegible] प्रकर्षेण भाग रहे है।

4 तदनन्तर,शासक बना देने वाला, प्रकृष्ट अन्न से युक्त, जो सर्वतः सम्पूर्ण प्राणिजातो के प्रति (अपनी) महत्ता द्वारा प्रबुद्ध हो गया, पालक 'अग्नि' ने (अपनी) ज्योति से द्युलोक तथा पृथिवी को भर दिया तथा व्याप्त अन्धकार को ढँक लिया।

5 उसने प्राचीन चलने वाले पर्वतो को दृढ किया (तथा) मेघो के जलो को बरसाया, जिसने सबको (सोमरस का) पान कराने वाली पृथ्वी को धारण किया (तथा, अपनी) माया से द्युलोक को नीचे गिरने से रोक लिया।

6 वह ('इन्द्र') इस (जगत) के लिए पर्याप्त (है), जिसे 'प्रजापति' ने (दोनो) भुजाओ से सम्पूर्ण मनुष्यो की अपेक्षा (उत्कृष्ट) ज्ञान से निर्मित किया, अत्यधिक शब्द करने वाले जिस ('इन्द्र' के) वज्र द्वारा 'क्रिवि' को पृथ्वी पर, शयन करने के लिए , मार कर, आवृत कर दिया।

7 माता पिता के साथ रहने वाली (तथा) (पिता के) घर मे अविवाहित रहते हुए वृद्धावस्था को प्राप्त होने वाली (कन्या) के समान (मै) तुमसे सम्पत्ति (=ऐश्वर्य) की याचना करता हूँ, निश्चय ही, ज्ञापक (धन) को प्रदान करो, (अपने) (धन के) भाग को (पूर्णमात्रा मे) लाओ, जिस (धन) की अर्चना की जाती है।

8 हे 'इन्द्र' ! हम उदार दानी तुम्हारा आह्वान करते है, तुम कर्मो (तथा) धनो के दाता (हो), (तुम) विचित्र सहायता के द्वारा हमारी रक्षा करो, हे वर्षक इन्द्र ! (तुम) हमे अधिक श्रेष्ठ कर दो।

9. हे 'इन्द्र' ! तुम्हारी वह धनवती दक्षिण स्तोता के लिए, निश्चय ही, (कामनाओं का) दोहन करने वाली हो, (वह) (तुम्हारे) स्तोताओ के लिए सहायक हो, (हमे) छोडकर मत दो, हमको (भी) ऐश्वर्य (प्राप्त हो), उत्तम वीरो से युक्त (हम) यज्ञ मे योग्य रीति से (तुम्हारी) (स्तुति) उच्चारित करे।

सूक्त-18

1. प्रातः काल शुद्ध स्नात, चार (अश्व–) युगो वाला (ऋत्विज् या पाषाण), तीन कोडो वाला, सात लगामों वाला, दश अरित्रो वाला, मानव (हितकारी), (तथा) स्वर्गदायक ('इन्द्र' का) वह नवीन रथ इष्टियों (एव) स्तुतियों से गतिशील हो गया।

2. वह (यज्ञ) प्रथम (सवन) मे इस ('इन्द्र') के लिए पर्याप्त (है), वह द्वितीय और तृतीय (सवन) मे (पर्याप्त हुआ), वह मानव का आह्वानकर्ता (है), अन्य (ऋत्विजो) ने ('पृथ्वी' के) गर्भ–स्थान से ('सोम') को उत्पन्न किया, वह जयशील (तथा) वर्षक अन्य (देवो) से सयुक्त होता है।

3. (मैं) अब 'इन्द्र' के रथ मे ('इन्द्र' के) आगमन के लिए नूतन सूक्त–वाणी के द्वारा (दोनों) घोडों को सयोजित करता हूँ, अवश्य ही, (यज्ञ में) अनेक पुरोहित (होते है;) (किन्तु,) यज्ञ न करने वाले अन्य (पुरोहित) तुम्हें शीघ्र ही प्रदान करें।

4. हे 'इन्द्र' ! (तुम) (दो) घोडो से आओ, चार (अश्वो) से (आओ), छ (अश्वो) से पुकारे जाते हुए (आओं), आठ (घोडो) से (या) दस (घोडो) के द्वारा ('इन्द्र' के) (पान के लिए) सोम–पेय अभिषुत (हुआ है), हे उत्तम वीर। हिसा मत करों।

5. हे 'इन्द्र' ! 'बीस' (या) 'तीस' (अश्वो) से आओं, 'चालीस' (अश्वों) से युक्त होते हुए (आओं), 'पचास' (अश्वों) वाले सुन्दर रथो से (तथा) 'साठ' (या) 'सत्तर' (अश्वो) द्वारा 'सोम' को पीने के लिए (आओ)।

6 हे 'इन्द्र' । 'अस्सी' (घोडों) के द्वारा, 'नब्बे' (घोडो) के द्वारा (या) 'सौ' घोडो द्वारा वहन किये जाने वाले (तुम) (हमारी) ओर आओ, शुभ हव्यो से (तुम्हारा) यह 'सोम', निश्चय ही, तुम्हारी कामना से, प्रसन्नतार्थ उडेला गया है।

7. हे 'इन्द्र' । (तुम) मेरे मन्त्र को लक्ष्य करके आओ, सम्पूर्ण (गमनशील) (घोडों) को (अपने) रथ की धुरी मे सयुक्त करो, (तुम) अनेक स्थानो मे आह्वानयोग्य (हो), हे शूर । इस सवन मे (ही) आनन्दित होओ।

8 'इन्द्र' के साथ मेरी मित्रता को वियुक्त न करो, इसकी दक्षिणा हमारे लिए दोहन करने वाली हो, (हम) श्रेष्ठ रक्षक ('इन्द्र') के आश्रय के समीप रहकर प्रत्येक (सङ्ग्राम) मे विजेता होवे।

9 हे 'इन्द्र' । तुम्हारी वह धनवती दक्षिणा स्तोता के लिए, निश्चय ही, (कामनाओ का) दोहन करने वाली हो, (वह) (तुम्हारे) स्तोताओ के लिए सहायक हो, (हमे) छोड कर मत दो, हमको (भी) ऐश्वर्य (प्राप्त हो), उत्तम वीरो से युक्त (हम) यज्ञ मे योग्य रीति से (तुम्हारी) (स्तुति) उच्चारित करें।

सूक्त-19

1 सोमाभिषव करने वाले मनीषी (यजमानो) के मद के लिए (इन्द्र के द्वारा) इस रूचिकर मदप्रद पेय ('सोम') का पान किया गया है, जिस प्राचीन ('सोम') मे निवास धारण करता है, प्रवृद्ध होता हुआ 'इन्द्र' तथा स्तोत्रशील मनुष्य निवास करते है।

2. इस मधुयुक्त ('सोम') के कारण हर्षित होते हुए, वज्रयुक्त हाथ वाले 'इन्द्र' ने जलप्रवाह को आवृत करने 'अहि' को छिन्न–भिन्न कर दिया; घोसलो की ओर पक्षियो के समान, नदियो के जलप्रवाहो को समुद्र की ओर सर्वतः प्रतिवर्तित कर दिया।

3. 'अहि' को मारने वाले उस अद्भुत सामर्थ्यवान 'इन्द्र' ने जलो के प्रवाह को समुद्र की ओर प्रेरित किया (उसने) 'सूर्य' को उत्पन्न किया, गायो को प्राप्त किया (और) तेज के द्वारा दिवसों के प्रज्ञानो को सिद्ध किया।

4. वह 'इन्द्र' मनुष्य के लिए अत्यधिक (एव) अनुपम (धनो) को प्रदान करता है, (वह) दानशील के लिए 'वृत्र' का वध करता है, जो (कि) तुरन्त ही 'सूर्य' के सङ्ग्राम मे स्पर्धा करने वाले मनुष्यो के लिए समाश्रयणीय हुआ।

5 स्तुत होने वाले उस देव 'इन्द्र' ने सोमभिषव करते हुए मनुष्य के लिए 'सूर्य' को पृथक् किया (और) जिससे (हविष्य–) प्रदाता (यजमान) ने इसके लिए प्रच्छन्न (तथा) अवद्य धन को (उसी प्रकार) सम्पादित किया, (जैसे) दया करने वाला (पिता) (पुत्र के लिए) भाग (प्रदान करता है)।

6. कान्तियुक्त उसने 'शुष्ण' को, शोषणरहित को (तथा) 'कुयव' को सारथी 'कुत्स' के लिए हिसित किया, और, 'इन्द्र' ने इस 'शम्बर' के 'निन्यानबे' नगरो को 'दिवोदास' के लिए विदीर्ण कर दिया।

7. हे इन्द्र । यश की कामना से मानो स्वय अन्न चाहते हुए (हम) इस प्रकार से तुम्हारे स्तोत्र को प्राप्त करें; (तुमसे) सुरक्षित होते हुए (हम) (तुम्हारी) उस मित्रता को प्राप्त करे; देवविरोधी 'पीयु' के (विरूद्ध) (तुम) (अपने) शस्त्र को प्रक्षेपित करो।

8 इस प्रकार, हे शूर (इन्द्र) ! गमनेच्छुक मनुष्य (जैसे) मार्गों का (निर्माण करते है), (उसी प्रकार,) गृत्समदों ने तुम्हारे लिए मन्त्रो का निर्माण किया, हे इन्द्र ! स्तोत्रो की कामना से युक्त तुम्हारे (यजमानो ने) नवीन अन्न, बल सुनिवास (तथा) सुख को प्राप्त किया।

9 हे इन्द्र ! तुम्हारी वह धनवती दक्षिणा स्तोता के लिए,निश्चय ही, (कामनाओ का) दोहन करने वाली हो, (वह) (तुम्हारे) स्तोताओ के लिए सहायक हो, (हमे) छोडकर मत दो, हमको (भी) ऐश्वर्य (प्राप्त हो), उत्तम वीरो से युक्त (हम) यज्ञ मे योग्य रीति से (तुम्हारी स्तुति) उच्चारित करे।

सूक्त-20

1 हे 'इन्द्र' ! रथ को अन्नेच्छुक (व्यक्ति) के समान, (हम) तुम्हारे लिए (सोमरूप) अन्न को प्रकर्षेण सम्पादित करते है, निश्चय ही, (तुम) हमारे (बारे) मे भली–भॅाति जानो, स्तुति करने वाले (तथा) प्रज्ञा से प्रकाशित होते हुए तुम्हारे सदृश नेतृत्वशीलो के प्रति (हम) सुख की कामना करते है।

2 हे इन्द्र ! तुम (अपनी) सहायता के द्वारा हमारी (रक्षा करो) तुम्हारे प्रति कामना करने वाले मनुष्यो के (तुम) रक्षक हो, इस प्रकार की बुद्धि से सयुक्त होकर जो तुमको प्राप्त करता है, तुम (उस) (हविष्य) प्रदाता के स्वामी (होते हो)।

3. वह युवा 'इन्द्र' हमारे लिए अनेक बार आह्वान–योग्य, मित्र (भूत), कल्याणप्रद (तथा) मनुष्यो का पालनकर्त्ता (होवे), जो मन्त्र–पाठ करते हुए, प्रार्थना करते हुए, (हविष्य को) पकाते हुए (तथा) स्तवन करते हुए (यजमान) को प्रकर्षेण अग्रसर करे।

4. (मै) उस 'इन्द्र' की स्तुति करता हूँ (तथा) उस (इन्द्र) की प्रशसा करता हूँ, जिस (के आश्रय) मे प्राचीन काल मे (उसके) (यजमान) प्रवर्धित हुए और अपने शत्रुओं को हिसित किया। याचना किया जाता हुआ वह नवीन मन्त्र (का निर्माण) करने वाले मनुष्य की धन की कामना को पूर्ण करे।

5. वह इन्द्र' अङ्गिरसो की प्रार्थना को सेवित करता हुआ (यजमान के) स्तोत्र को प्रवृद्ध करता हुआ मार्ग को प्रेरित करे, 'सूर्य' के द्वारा 'उषा' का अपहरण करते हुए 'इन्द्र' ने 'अश्न' के प्राचीन (नगरों) को वेध दिया।

6 निश्चय ही, वह प्रसिद्ध 'इन्द्र'(नामक) दर्शनीयतम देव मनुष्यों के लिए उठ खडा हुआ। स्वतन्त्रप्रज्ञ (तथा) बलवान् ('इन्द्र') ने लोको को बाधित करने वाले 'अर्शसार्न' के प्रिय सिर को काट कर दूर कर दिया।

7 उस 'वृत्र' के हन्ता "इन्द्र" ने काले वर्ण की हिसक प्रजाओ को दूर भगा दिया, मानव के लिए ,निश्चय से, पृथ्वी तथा जलो को उत्पन्न किया (तथा) यजमान के स्तोत्र को (अत्यधिक) प्रेरित किया।

8. उस 'इन्द्र' के लिए, निश्चय से, (उसके) यजमानो के द्वारा (हविष्यों सहित), बल, वर्षा की प्राप्ति के लिए, प्रदान किया गया; जब इस ('इन्द्र') की (दोनो) भुजाओं पर 'वज्र' को धारण किया गया, (तब ,इसने) दस्युओ को मार कर लौह निर्मित नगरो को विदीर्ण कर दिया।

9. हे 'इन्द्र' ! तुम्हारी वह धनवती दक्षिणा स्तोता के लिए, निश्चय ही (कामनाओ का) दोहन करने वाली हो, (वह)(तुम्हारे) स्तोताओं के लिए सहायक हो; (हमे) छोडकर मत दो; हमको (भी) ऐश्वर्य (प्राप्त हो) , उत्तम वीरो से युक्त (हम) यज्ञ मे योग्य रीति से (तुम्हारी स्तुति) उच्चारित करें।

सूक्त-21

1. हे अध्वर्युयो ! विश्वजयी, धनजयी, स्वर्गजयी, निरन्तर–जयशील, मनुष्यजयी, भूमिजयी, अश्वजयी, गायो के विजेता, जलो के विजेता (एव) यजनीय 'इन्द्र' के लिए 'सोम' को सम्पादित करो।

2 (सबका) अभिभव करने वाले, (शत्रुओ को) चारो ओर तितर–बितर करने वाले, (धन का) सम्भजन करने वाले, शत्रुओ से पराजित न होने वाले, कर्तृत्वशाली, अतिस्तुत, वाहक, दुस्तर (तथा) अत्यधिक अभिभव करने वाले 'इन्द्र' के लिए नमस्कार कथन करो।

3 सर्वत्र अभिभव करने वाले, लोगो के द्वारा सम्भजनीय, (शत्रु–) जन को अभिभूत करने वाले, (शत्रुओ को अपने अपने स्थान से) डिगा देने वाले, युद्धशील, इच्छानुसार सिञ्चित (होने वाले), सर्वत्र व्यापक, (शत्रु–) हिसक, प्रजाओ (के के मध्य) मे व्याप्त 'इन्द्र' के किये गये वीर–कर्मो को (मै) उच्चारित करता हूँ।

4 एक ही वार मे प्रभूत देने वाले, (कामना–) वर्षक, हिसक (व्यक्ति) का वध करने वाले, गम्भीर, महान्, अन्य के द्वारा व्याप्त कर्मों वाले, धन को प्ररित करने वाले, शत्रुहिसक, शक्तिशाली, प्रख्यात (तथा) शोभन यज्ञ वाले 'इन्द्र' ने 'उषस्' के प्रकाश को उत्पन्न किया।

5 स्तुतियो (यो, वुद्धियो) को प्रेरित करते हुए शक्तिशाली (अङ्गिरसो) ने जलप्रेरक 'इन्द्र' के मार्गो को यज्ञ के द्वारा जान लिया, शब्दमय, रक्षाकामी 'इन्द्र' के लिये गायो (या, स्तुतियो) को प्रेरित करते हुए धनों को उपसदन के द्वारा प्राप्त किया।

6. हे इन्द्र ! तुम हमे श्रेष्ठ धनो को, ख्याति को, दक्षता को (तथा) सौभाग्य को प्रदान करो(हमे) धनो की पोषकता शरीरो की अहिसा, वाणी की मधुरता (तथा) दिनो की श्रेष्ठता प्रदान करो।

सूक्त-22

1. पूजनीय (तथा) शक्तिशाली ('इन्द्र') ने, 'विष्णु' के द्वारा सहभागी होते हुए, 'त्रिकद्रुक' (–यागो) मे, अभिषुत (एवं) 'यव' से मिश्रित 'सोम' का इच्छानुसार पान किया है, उस (घूँट) ने इस महान् तथा शक्तिशाली 'इन्द्र' को महत् कार्य (सम्पादित) करने के लिए मदयुक्त किया है, वह दिव्य 'सोम' दिव्य 'इन्द्र' को (व्याप्त करे)।

2 तत्पश्चात्, देदीप्यमान (उस) ने (अपने) पराक्रम से 'क्रिवि' को युद्ध मे अभिभूत किया है, (उसने) 'द्युलोक' तथा 'पृथिवी' को (अपनी दीप्ति से) परिपूरित किया है, (तथा, घूँट की प्रभावोत्पादकता के द्वारा) शक्ति से प्रवर्धित हो गया है, तब, (उसने) एक (भाग) को उदर मे (ग्रहण किया है) (तथा, दूसरे को) अतिरिक्त छोड दिया है, वह दिव्य 'सोम' दिव्य ('इन्द्र') को व्याप्त करे (तथा) सत्य (–भूत) 'सोम' सत्य (–भूत) 'इन्द्र' को (व्याप्त करे)

3 (श्रेष्ठ) कर्मो के द्वारा सजातीय (तथा) शक्ति के द्वारा सजातीय (तुम) (ब्रह्माण्ड को धारण करने की) इच्छा करते हो, पराक्रमो के द्वारा प्रवर्धित (तुम) शत्रु का अभिभव करने वाले (तथा) (सद् एवम् असद् के कर्त्ता के मध्य) विभेद करने वाले (हो), (तुम) (अपने) स्तोता के लिए अभिलषणीय (तथा) उत्तम धन प्रदान करने वाले (हो) वह दिव्य 'सोम' दिव्य ('इन्द्र') को व्याप्त करे (तथा) सत्य (–भूत) 'सोम' सत्य (–भूत) 'इन्द्र' को (व्याप्त करे)।

4. हे नर्तनशील (या, सबके आनन्ददायक) इन्द्र ! प्राचीन काल में तुम्हारा वह किया गया कर्म मानवकल्याणार्थ (तथा) 'द्युलोक' मे प्रशसनीय (हुआ था), जब (तुमने) देवो के (शत्रु के) प्राण को (अपनी) शक्ति से अवरूद्ध करते हुए (वर्षा–) जलों को (बाहर) निकाल दिया, ('इन्द्र') (अपने) पराक्रम से सम्पूर्ण देव–विरोधी को अभिभूत कर दे, 'शतक्रतु' शक्ति को प्राप्त करे, (वह) (यज्ञीय) अन्न को प्राप्त करे।

अनुवाक -III

सूक्त.23

1 हे गणो के स्वामी, कवियो मे सर्वश्रेष्ठ कीर्ति वाले कवि (तथा) स्तुतियो के सर्वश्रेष्ठ स्वामी! (हम) तुम्हारा आह्वान करते है, वे प्रार्थनाओ के स्वामी ! हमारे (आह्वान को) सुनते हुए (तुम) (इस) यज्ञगृह मे (अपनी) रक्षाओ के साथ स्थान ग्रहण करो।

2. हे असुरों के नष्ट करने वाले बृहस्पते ! प्रकृष्टज्ञानयुक्त तुम्हारे द्वारा ही, (वास्तव मे) देवताओ ने (अपना) यज्ञ सम्बन्धी भाग प्राप्त किया। सम्पूर्ण मत्रो के उत्पन्न करने वाले (तुम) ही हो, जैसे महान् 'सूर्य' (अपने) प्रकाश से किरणो को (उत्पन्न करने वाला है)।

3 हे बृहस्पति ! निन्दको को तथा अन्धकार को नष्ट कर (तुम) यज्ञ के प्रकाशयुक्त (तथा) भयानक रथ पर आरूढ होते हो, (जो) शत्रुओ का दमन करने वाला, राक्षसो को मारने वाला, मेघो को तोडने वाला (एव) प्रकाश (या,स्वर्ग) को पाने वाला (है)।

4 (तुम) सुन्दर मार्गदर्शनो से ले चलते हो (तथा) (उससे) मनुष्य की रक्षा करते हो, जो तुमको (छविः) प्रदान करे, उसके पास पाप न पहुँचे। हे बृहस्पते ! मत्रो से द्वेष करने वाले को (तुम) तपाने वाले हो (तथा) क्रोध को प्रभावहीन करने वाले (हो), तुम्हारा वह माहात्म्य (वस्तुतः) महान (है)।

5 हे ब्रह्मणस्पते ! सुन्दर रक्षक (तुम) जिसकी रक्षा करते हो, उसे कहीं से न (तो) पाप, न दुर्भाग्य (ही), न (तो) शत्रु, न दोहरे आचरण वाले (=वञ्चक) (ही) पार पा सकते है, सम्पूर्ण ही (प्रकार की) हिंसिका (शक्तियो) से (तुम) (उसे) दूर कर देते हो।

6. तुम हमारे रक्षक, विशेषेण द्रष्टा (एव) मार्गदर्शक (हो), तुम्हारे व्रत के लिए (हम) स्तोत्रों द्वारा स्तवन करते है, हे बृहस्पते ! जो हमारे प्रति कुटिलता धारण करता है, उसे (उसकी) अपनी दुर्बुद्धि (ही) वेगवती (होकर) नष्ट करे।

7. और भी जो (कोई) शत्रुता रखने वाला, अभिमानी (तथा) लालची मनुष्य हम पापरहितो को हानि पहुँचायें, हे बृहस्पते ! उसे (हमारे) मार्ग से दूर करो, इस देवो के प्रीतिभोज के लिए हमारे (मार्ग को) सुष्ठु गमनयोग्य करो।

8 हे उपद्रवो से बचाने वाले ! शरारो के रक्षक, (हमारा) पक्ष करने वाले (तथा) हमारी कामना से युक्त तुमको (हम) बुलातें है। हे बृहस्पते ! देवताओ की निन्दा करने वालो को विनष्ट करो, दुष्ट बुद्धि वाले (हमसे) उत्कृष्टतर सुख प्राप्त न करे।

9. हे ब्रह्मणस्पते ! भली–भॉति बढाने वाले तुम्हारे द्वारा हम स्पृहणीय मानवीय धनो को प्राप्त करें , दूर के (और) समीप के जो शत्रु हम पर आक्रमण करते हैं, उन्हे कुचल डालो, (ताकि) वे निश्चेष्ट (हो जाये)।

10. हे बृहस्पते ! (इच्छाओ को) पूर्ण करने वाली (और) प्रचुर धन वाली तुम्हारी (मैत्री) के द्वारा हम श्रेष्ठ शक्ति प्राप्त करे; (हमारा) दमन करने का इच्छुक (कोई) दुष्ट–बुद्धि हमारा स्वामी न बने, सुन्दर प्रार्थनाओ वाले (हम) स्तुतियो के द्वारा प्रवर्धित होवें।

11 हे ब्रहमणस्पते ! (तुम) वास्तव मे, कभी समर्पण न करने वाले, शक्तिशाली, युद्ध मे जाने वाले, शत्रु को निःशेषण तपाने वाले, युद्धो मे (शत्रुओ का) अभिभव करने वाले, ऋण से दूर करने वाले (तथा) भयानक (एव) अभिमानयुक्त बलवानो के भी दमन करने वाले (हो)।

12 देवविरोधी मन से जो (हमे) हानि पहुँचाता हे, (जो) भयानक (अपने को) (बडा) मानता हुआ स्तुति गायन करने वाले (हम) को मारना चाहता है, हे बृहस्पते ! उसका शस्त्र हमे प्राप्त न करे, (उस) शक्तिशाली दुष्ट (व्यक्ति) को क्रोध को (हम) निराकृत कर दे।

13 युद्धो मे बुलाने योग्य, नमस्कार के द्वारा समीप पहुँचने योग्य, सङ्ग्रामो मे गमनशील, प्रत्येक प्रकार के धनो को जीतने वाले स्वामी 'बृहस्पति' ने (हमारा) दमन करने की इच्छा रखने वाली सम्पूर्ण हिसिका (सेनाओ) को (युद्ध मे टूटे हुए) रथो के समान विनष्ट कर दिया है।

14. अत्यन्त तीक्ष्ण जलाने वाले (अपने) शस्त्र से राक्षसो को जला दो, देखे गये पराक्रम से युक्त तुम्हारी निन्दा करते है। जो तुम्हारा प्रशसनीय (पराक्रम) हो, उसे प्रकट करो, हे बृहस्पते ! (तुम) निन्दकों को विशेष रूप से बाधित करो।

15 हे बृहस्पते ! जिससे श्रेष्ठ (ब्राह्मण) अधिक रूप से पूजा करे, जो प्रकाशयुक्त (तथा) शक्ति से युक्त मनुष्यो (के मध्य) में विशेषेण प्रकाशित होता है, जो सामर्थ्य द्वारा दीप्त होता हो, हे यज्ञ के पुत्र ! (तुम) वह विचित्र ध ान हमे प्रदान करो।

16. हे बृहस्पते ! हमको चोर (शत्रुओ) के लिए मत (दो), जो हत्या करने वाले स्थान पर आनन्दपूर्वक घूमते हुए (दूसरो के) धन का लोभ करते है (और) देवताओ को अलग करने (का विचार) हृदय में लाते है, (वे) (तुम्हारे) 'सामन् (–शस्त्र) (की महिमा) की सीमा नही जानते।

17. कवि 'त्वष्टा' ने निश्चय ही, सभी प्राणिजातो से ऊपर प्रत्येक 'सामन्' से (सारभूत) तुमको उत्पन्न किया, वह 'ब्रहमणस्पति' महान् यज्ञ के धारण करने वाले के ऋण को जानने वाला, (यजमान के) ऋण को दूर करने वाला (तथा, उसके) शत्रुओ का मारने वाला (है)।

18. हे अङ्गिरस् ! जब (तुमने) गायो के बाडे को (जिसमे 'वल' ने उन्हें बन्द किया था) खोला, पर्वत ने तुम्हारे आश्रय के लिए (अपने द्वार को अपने आप) खोल दिया । 'इन्द्र' के साथ, हे बृहस्पते ! (तुमने) अन्धकार के द्वारा परितः आच्छादित जलों के समुद्र को प्रवाहित किया।

19. हे ब्रह्मणस्पते ! इस (जगत्) के नियामक तुम (इस) सुन्दर स्तोत्र को जानो, (हमारी) सन्तान को (कार्य मे) प्रवृत्त करो, वह सम्पूर्ण कल्याणकारी (है), जिसकी (आप जैसे) देव रक्षा करते हैं, उत्तम वीरो से युक्त (हम) यज्ञ मे प्रभूत (इस स्तोत्र) को उच्चारित करे।

सूक्त -24

1. हे बृहस्पते! वह (तुम) इस (सोम) समर्पण को अनुगृहीत करो, जो (तुम) स्वामी होते हो, (हम) इस नवीन (एवं) महती स्तुति के द्वारा (तुम्हारी) पूजा करते हैं जैसे तुम्हारा मित्र (भूत)(हमारा) सेचक(यजमान)(तुम्हारा) स्तवन करता है, (उस प्रकार) वह (तुम) हमारी स्तुति को सफल करो।

2. जिसने (अपनी) शक्ति से नमनशीलों को पूर्णतया झुका दिया और क्रोध द्वारा 'शम्बर' (के नगरो)को विदीर्ण कर दिया, (उस) 'ब्रह्मणस्पति ने अच्युतो को (भी) च्युत किया (तथा) धनयुक्त पर्वत मे विशेषण प्रवेश किया।

3 देवताओ मे सर्वश्रेष्ठ देव ('बृहस्पति') का वह कर्म (है) (कि दृढ (पदार्थ) (भी) शिथिल पड गये (तथा) कठोर (पदार्थ) मृदु हो गये , ('बृहस्पति' ने) गायो को बाहर निकाला, मन्त्र के द्वारा 'वल' को विदीर्ण किया, अन्धकार को छिपाया (तथा) प्रकाश का विशेषेण दर्शन कराया।

4 'ब्रह्मणस्पति' ने (अपनी) शक्ति से जिस पाषाणमुख (तथा) मधुप्रवाह वाले कुएँ को सर्वतः खोदा, सूर्यसदृश उसे ही समग्र (देवो) ने अत्यधिक रूप से पिया (तथा) साथ–साथ जल–जल प्रवाह को प्रवाहित किया।

5. (हे यजमानो !) ('ब्रह्मणस्पति' की) उन प्राचीन (एव) विविध (उदारताओ)ने तुम्हारे लिए भावी (वर्षाओ के) द्वारो को महीनो मे (तथा) वर्षो मे उद्घाटित किया, जो (दो) लोक परस्पर (एक) दूसरे की ओर) विचरण करते है, बिना प्रयत्न किये(ही) 'ब्रह्मणस्पति' ने (उन) प्रज्ञानो को (स्तुतियो) का विषय) बनाया।

6. चारो ओर गमन करते हुए जिन्होने पणियो की उत्कृष्ट गुहा मे स्थित उस निधि को प्राप्त किया, उन्होने विद्वानो ने अनृत (पदार्थो) को देख कर (=जान कर), जहॉ से वे आये थे, पुनः (वही) प्रवेश करने के लिए चले गये

7. ऋतयुक्त कवि अनृत को देखकर पुनः (इस स्थान से) आकर महान् पथ पर चल पडे, उन्होने (दोनो) बाहुओ से प्रज्ज्वलित उस 'अग्नि' को पाषाण पर छोड दिया, वह आगन्तुक (अब) बिल्कुल नही है।

8 ऋतरूप प्रत्यञ्चा वाले अस्त्रक्षेपक धनुष के द्वारा 'ब्रह्मणस्पति' जहॉ चाहता है, उसे प्रकर्षेण व्याप्त कर लेता है, उसके वाण कार्यसाधक (है), जिनके द्वारा (वह शत्रुओ को) दूर करता है , (वे वाण) मन ुष्यों को देखने वाले (तथा) देखने के लिए कान तक खीचे जाने वाले (है)।

9 वह सम्यग् नेतृत्व करने वाला (है), वह विशिष्ट नेतृत्व करने वाला (है), पुरोहित (है), वह सुष्ठु स्तुत (है), वह युद्ध मे (प्रादुर्भूत होता है), द्रष्टा 'ब्रह्मणस्पति' जब अन्न को, स्तुतियो (तथा) धनो को धारण करता है, तब , निश्चय ही, सन्तापक 'सूर्य' अनायास तपता है।

10 वर्षणशील 'बृहस्पति' के शोभनदानयुक्त धन व्यापक, समर्थ (एव) प्रख्यात (है), अभिलषणीय (एव) अन्नयुक्त ('वृहस्पति') के (ही) वे धन (है) जिनके द्वारा मनुष्य (एव) दोनो (प्रकार की) प्रजाये भोग करती हैं।

11. सव प्रकार से रमणीय जो (तुम) निष्कृष्ट साधनता (या, समूह) मे (स्थित) व्यापक (तथा) महान् (जनों) को (अपनी) शक्ति से वहन करने की इच्छा करते हो, सम्पूर्ण (पदार्थो) को चारो ओर से आबृत करने वाला वह 'बृहस्पति' देव देवताओं के प्रति प्रथित होता है।

12. हे मघवन् ! तुम दोनो के सम्पूर्ण स्तोत्र सत्य ही (है), जल भी तुम्हारे व्रतों का उल्लङ्घन नही करते है, हे 'इन्द्र' और ब्रह्मणस्पते ! (तुम दोनों) अन्नशक्ति से युक्त होकर ही हमारे हविष्य (रूप अन्न) को लक्ष्य करके (यज्ञ मे गमन करो)।

13 और, तीव्र गति वाले वाहक (अश्व) आनुपूर्व्येण श्रवण करते है, सभायोग्य विद्वान स्तुतियो द्वारा यज्ञीय) धनो को अर्पित करता है, 'ब्रह्मणस्पति' अत्याचारी (असुरो) से द्वेष करने वाला (है),(वह) इच्छानुरूप ऋण को सङ्गृहीत करने वाला(तथा) युद्ध मे धनयुक्त (होवे)।

14 इच्छानुसार महान् कर्म करने वाले 'बृहस्पति' का क्रोधयुक्त विचारसत्य हुआ, जिसने गायो को बाहर निकाला (और)'द्युलोक' (मे स्थित लोगो) के लिए वितरित किया, महती जलधारा की भॉति, वह (गायो का समूह) शक्ति (के प्रभाव) से पृथक––पृथक (दिशाओ मे) गया।

15. हे ! ब्रह्मणस्पते ! प्रतिदिन सुष्ठु नियामक (हम) अन्नयुक्त धनो के स्वामी हो जाये, तुम हमें(एक) वीर (पुत्र) के बाद अनेक वीरो से सयुक्त करो, जो (तुम) स्वामित्व करते हुए स्तोत्र के द्वारा मेरे आह्वान को स्वीकार करते हो।

16 हे ब्रह्मणस्पते ! इस (जगत्) के नियामक तुम (इस) सूक्त को जानो और सन्तान को (कार्य मे) प्रवृत्त करो, वह सम्पूर्ण कल्याणकारी (है), जिसकी (आप जैसे) देव रक्षा करते है, उत्तम वीरो से युक्त (हम) यज्ञ मे योग्य रीति से (तुम्हारी स्तुति) उच्चारित करे।

सूक्त-25

1 'ब्रह्मणस्पति' जिस–जिसको (अपना) सहायक बनाता है, (वह) 'अग्नि' को समिद्ध करता हुआ हिसा करने वाले की हिसा करता है और 'ब्रह्मा' को चयन करने वाला (एव) हविष्यप्रदाता (व्यक्ति), निश्चय ही, प्रवृद्ध होता है (तथा) पुत्र के द्वारा पुत्र को (पाकर) अत्यधिक प्रवर्धित होता है।

2. 'ब्रह्मणस्पति' जिस–जिसको (अपना) सहायक बनाता है, (वह) (अपने) पुत्रो के द्वारा हिसा करने वाले (शत्रु) पुत्रो को हिसित करता है, गायो के द्वारा धन को विस्तृत करता है, अपने आप ज्ञानयुक्त होता है और उसका पुत्र तथा पौत्र वर्द्धित होता है।

3. 'ब्रह्मणस्पति' जिस–जिसको (अपना) सहायक बनाता है, वह कर्मनिष्ठ, जैसे नदी किनारो को (काटती है),(उसी प्रकार) हिसा करने वाले की (हिसा करता है), जिस प्रकार (रेत का) वर्षक बधिया (बैलो को,(उसी प्रकार) शक्ति के द्वारा (वह अपने शत्रुओ को) (मारने की) इच्छा करता है,' अग्नि' की प्रसारयुक्त ज्वाला के समान (उसे) निवर्तित करना सम्भव नही है।

4. 'ब्रह्मणस्पति' जिस–जिसको (अपना) सहायक बनाता है, उसके लिए प्रसारयुक्त दिव्य जल बहते है, कर्मनिष्ठ (के मध्य) प्रथम वह गायो (के रूप) मे (धन को) प्राप्त करता है (तथा) अप्रतिरोध्य शक्ति से युक्त (वह) अपने बल से (अपने शत्रुओं को) मारता है।

5 'ब्रह्मणस्पति' जिस – जिसको (अपना) सहायक बनाता है, उसके लिए, निश्चय ही, सम्पूर्ण नदियॉ प्रवाहित होती है, उसके लिये अविच्छिन्न (निरन्तर) (तथा) अनेक सुख प्रतीक्षा करते है, देवो के सुख (के विषय) में सौभाग्योंपेत वह प्रवर्धित होता है।

सूक्त 26

1. सरल स्तोता ही हिसा करने वाले की हिसा करता है, देवताओं की कामना करने वाला ही देवविरोधी (व्यक्ति) को पराभूत करता है, श्रेष्ठ पूजक ही सङ्ग्रामो मे कठिनाई से पार करने योग्य को हिंसित करता है, यजनशील ही यज्ञविरोधी (व्यक्ति) के भोजन को बॅटा देता है।

2. हे वीर ! ('ब्रह्मणस्पति' के प्रति)यजन करो, (विद्वेष का) मनन करने वालों के प्रति (दृढता से) अग्रसर होओ, (अपने मन को शत्रुओ के (विरूद्व) सङ्घर्ष मे अडिग रखो, हविष्य को (निर्मित करो, जिससे (तुम) समृद्ध हो सको, (हम) 'ब्रह्मणस्पति' के सरक्षण की सम्यग् याचना करते है।

3. निश्चय ही, वह मनुष्य के साथ, वह प्रजा के साथ, वह जन्म से (ही) पुत्रो के साथ (एवं) मानवों के साथ अन्न (तथा) धनो को धारण करता है जो (कि) श्रद्धायुक्त मन वाला (वह) देवताओ के पालक 'ब्रह्मणस्पति' को हविष्य से पूजता है।

4 जिसने इसके लिए घृतयुक्त हविष्यो से पूजा की, 'ब्रह्मणस्पति' उसे पूर्व की ओर प्रकर्षेण ले जाता है, (इसे) पाप से बचाता है, हिसक से (और) पाप से भी (इसकी) रक्षा करता है (और) इसके लिए विस्तृत कार्य करने वाला (तथा) अद्भुत (होता है)।

सूक्त-27

1. (मै) दीप्यमान आदित्यो के प्रति (वाणीरूपी) 'जूहू' के द्वारा घृत (या, हविष्य) छोडने वाले इन स्तात्रो को बारम्बार प्रस्तुत करता हूँ 'मित्र', 'अर्यमा'श 'भग', जन्मसिद्ध बलवान् 'वरूण' (एव) शक्तिशाली 'अश' हमारा श्रवण करे।

2 समान महत्कार्यों वाले (वे) 'मित्र' अर्यमा' (एव) 'वक्ता' आज मेरे इस स्तोत्र के द्वारा प्रसन्न होवे (वे) आदित्य जो उज्ज्वल (एव) जल के द्वारा पवित्र (है) (जो) किसी का (भी) परित्याग न करने वाले, निष्कलड्क (एव) अहिसित (है)

स्तोत्र के द्वारा प्रसन्न होवे।

3. वे विस्तृत, गम्भीर, अवञ्चित, हिसा करने की इच्छा रखने वाले (एव) अनेक नेत्रो वाले 'आदित्य',(चाहे) भ्रष्ट अथवा सद्गुणी, (मनुष्यो के) अन्तरतम (विचारो) को (चाहे) दूर से (अथवा) समीप से (उन) सम्पूर्ण दीप्यमान (देवो) के प्रति अवलोकित करते है।

4. दिव्य 'आदित्य' गतिशील (अथवा) स्थिर (सभी वस्तुओ) के धारण करने वाले, सम्पूर्ण प्राणिजात के सरक्षक, कार्यो मे अग्रशोची, मेघस्थ जल को एकत्रित करने वाले, 'ऋत' के अनुयायी (तथा) (हमारे) ऋणो के विमोचक है।

5. हे आदित्यो ! (मै) सड्कट मे सुख (एव, सुरक्षा) के उत्पत्तिस्थान (–भूत) तुम्हारे इस सरक्षण को जानने वाला होऊॅ, हे अर्यमन्, मित्र तथा वरूण ! (मै) तुम्हारे पथ–प्रदर्शन के द्वारा (मेरे मार्ग में) फन्दो के समान पापों से मुक्त हो जाऊॅ।

6 हे अर्यमन्, मित्र (एव) वरूण ! निश्चय ही, तुम्हारा मार्ग सुगम, कण्टकविहीन (तथा) उत्तम है, इस (कारण) से,

हे आदित्यो ! (हमे इस मार्ग से ले चलो), हमारे लिए अनुग्रहपूर्वक कथन करो (तथा) हमे कठिनाई से बाधित होने योग्य आनन्द प्रदान करो।

7. दीप्तियुक्त पुत्रो की माता 'अदिति' हमे (हमारे) शत्रुओ के) विद्वेष के परे नियोजित (या, स्थापित) करे, 'अर्यमा' हमे सुगम (मार्गों) से ले जाये, (और, हम) अनेक पुत्रो से युक्त (एव) अहिंसित (होते हुए) 'मित्र' (तथा) 'वरूण' के प्रभूत आनन्द को प्राप्त करने वाले (होवे)।

8. (वे) तीन लोको तथा तीन स्वर्गों (या, देवो) को धारण करते है (और) उनके यज्ञ मे तीन अनुष्ठान (समाविष्ट होते है), हे आदित्यों ! 'ऋत' के द्वारा तुम्हारी शक्तिमत्ता (उत्पादित हो गयी है), (जैसी) वह, हे अर्यमन्, मित्र (एव) वरूण ! सर्वोत्कृष्ट (है)।

9 सुवर्णमय (आभूषणों से सज्जित), उज्जवल, जल के द्वारा पवित्र, कभी (भी) न सोने वाले, नेत्रमीलन न करने वाले, अवञ्चित (तथा) विशाल कीर्तियुक्त 'आदित्य' निष्कपट मनुष्य के लिए तीन देदीप्यमान स्वर्गीय (प्रदेशों) को धारण करते है।

10. हे शत्रुविनाशक वरूण ! तुम सबके, (चाहे) वे देव अथवा मनुष्य (हों) अधिपति (होते) हो, (तुम) विशेषेण अवलोकनार्थ सौ वर्ष प्रदान करो, (और, हम) प्राचीन (ऋषियो) के द्वारा सुप्रतिष्ठित आयुष्यो को प्राप्त करे।

11 हे आदित्यो ! न (तो) दाहिना (हाथ) (और) न बायॉ (हाथ) (हमारे प्रति) विशेषेण जाना जाता है, न (तो) अग्रवर्ती और न पश्चवर्ती (मेरे द्वारा) (पहचाना जाता है) हे निवास प्रदान करने वाले ! (ज्ञान में) अपरिपक्व (तथा) (व्यक्तित्व मे) कातर (हम) तुम्हारे द्वारा निर्देशित (होते हुए) भय से मुक्त प्रकाश को प्राप्त करे।

12 जो दीप्यमान (एव) सत्यनिष्ठ (आदित्यो) को (हविष्य) प्रदान करता है, जिसे (उनकी) शाश्वत सम्पदाएँ वर्धित करती है, धनप्रदाता, विख्यात, उदार (तथा) यज्ञो मे प्रशसित वह (अपने) रथ के द्वारा अग्रसर होता है।

13 पवित्र, अनाक्रान्त, (प्रचुर) अन्न धारण करने वाला (एवं) उत्तम वीरो से युक्त (वह) उत्पादनकारी जलो (के मध्य) मे निवास करता है, कोई भी, (चाहे) समीप से (अथवा) दूर से , उसे, जो (कि) आदित्यो के उत्तम पथ–प्रदर्शन मे (सुरक्षित) है, हिसित नही करता है।

14. हे अदिते ! हे मित्र और वरूण! (तुम सब) (हम पर) कृपा करों, यद्यपि हमने तुम्हारे प्रति कोई अपराध किया है। हे इन्द्र ! (मै) भय से मुक्त महान् प्रकाश को प्राप्त करूँ, (रात्रि के) दीर्घकालिक अन्धकार हमे अभिव्याप्त न करें।

15 सयुक्त (रूप से) दोनो (–'द्युलोक' एव पृथिवी') उसको (जिसे 'आदित्य' रक्षित करते है) पोषित करते है, निश्चय ही, भाग्यशाली वह स्वर्ग की वर्षा के द्वारा वर्धित होता है, युद्धो मे (अपने) दोनो निवासो को जीतने वाला (वह) गमन करता है, उसके लिए (संसार के) दोना भाग अनुकूल होते है।

16 हे पूजनीय आदित्यो ! (मै) (तुम्हारे) रथ से, सर्वत द्वेषी के लिए (तुम) जिन मायाओ को (अविष्कृत करते हो), जाल, (जो) तुम्हारे) शत्रु के लिए विशेषेण प्रसृत हुए है, से (उसी प्रकार)(सकुशल निकल जाऊँ(, जिस प्रकार (कोई) शहसवार (मार्ग को पार कर लेता है), (और, इस प्रकार, हम) असीम आनन्द मे सुरक्षित (निवास करने वाले) होवे।

17 हे वरूण ! मै (कभी भी) धनसम्पन्न, प्रिय (तथा) विपुल दानशील सम्बन्धी (या, बान्धव) के शून्यत्व (या, अभाव) को सर्वत प्राप्त न करूँ, हे राजन् वरूण) ! (मै) (कभी भी) सुनियमित धनो से विहीन न होऊँ, (तथा) उत्तम वीरो से युक्त (हम) यज्ञ मे (तुम्हारी) योग्य रीति से स्तुति उच्चारित करें।

सूक्त-28

1. क्रान्तदर्शी स्वयशासक 'आदित्य' के लिए (मेरा) यह (सूक्त) समस्त (विद्यमान) (सूक्तो) को (अपनी) महिमा से अभिभूत कर दे, जो देव ('वरूण)' यजन करने वाले के प्रति अत्यधिक हर्षयिता (आनन्ददायक) (है), (उस) समृद्धिशाली 'वरूण' से (मै) सुकीर्ति की याचना करता हूँ।

2. गोमती (रश्मियो) से युक्त ऊषाओ के आने पर, अग्नियो के समान प्रतिदिन स्तुति करते हुए सौभग्यशाली श्रद्धापूर्ण बुद्धि वाले (तथा) स्तुति करने वाले (हम) हे वरूण ! तुम्हारे नियम (के पालन) मे रहें।

3. हे नेतृत्वशील वरूण ! अनेक वीरो वाले (हम) विस्तृत रूप से प्रशसित तुम्हारी शरण मे रहें, हे 'अदिति' के पुत्रो ! तुम (सब), (अपने) सख्यभाव के लिए, (शत्रुओं के द्वारा) अहिसित हमारे (अपराधो) को क्षमा कर दो।

4. निश्चय से, धारण करने वाले 'आदित्य' ने (नदियो को) (बहने के लिए) प्रकर्षेण मुक्त किया है, नदियाँ 'वरूण' के 'ऋत'(= नियम) के अनुसार गमन करती हैं, (जो) न विश्राम करती हैं (और) न (रथसयुक्त अश्वो को) मुक्त करती है, ये पक्षियों के समान अभिव्यापक (पृथिवी) पर तीव्र गति से गतिशील होती हैं।

5. हे वरूण ! (तुम) रस्सी के समान (मुझसे) अपराध दूर कर दो, (हम) तुम्हारे 'ऋत' के प्रवाह को बढाते चले, (स्तुति–) कर्म को बुनते हुए मेरे (जीवन–) तन्तु को छिन्न न करो, (यज्ञरूपी) कर्म के प्रसार को उचित समय से पूर्व विनष्ट न करो।

6 हे वरूण ! मुझसे सम्पूर्ण भय को दूर कर दो, हे 'ऋत' के प्रवर्तक सम्राट् ! मुझ पर अनुग्रह करो, बछडे से रस्सी के समान (मुझे) पाप से विमुक्त कर दो, तुमसे दूर रहने पर, (मै) पलक झपकाने मे (भी) समर्थ नहीं होता हूँ।

7 हे शक्तिशाली वरूण ! जो तुम्हारे (शस्त्र) तुम्हारे यज्ञ (या, प्रवर्त्तना) मे पाप करने वाले को नष्ट करते है, (उन) शस्त्रो से हमे मत (मारो), (हम) प्रकाश (के प्रदेशो) से (अपने समय से पूर्व) प्रस्थान न करे, सुष्ठु जीवन के लिए हमारे शत्रुओ को विशेषेण शिथल (या, छिन्न–भिन्न) कर दो ।

8 हे जन्मसिद्ध शक्तिशाली 'वरूण' ! (हम) तुम्हे भूत–काल मे नमस्कार (करते रहे है) आज (भी) (हम तुम्हे नमस्कार करते है) और भविष्य मे (भी) (हम तुम्हे नमस्कार करेगे) । हे कठिनाई से प्रतारणीय ('वरूण') ! (तुम्हारे) अडिग नियम तुम पर, निश्चय ही, (किसी) पर्वत के समान, अच्छी तरह टिके हुए (है)।

9 तत्पश्चात्, हे राजन् ! मेरे किये हुए अपराधो को दूर कर दो, मै दूसरे के किये हुए (अपराधो का दण्ड न भोगूँ, इस समय, निश्चय ही, बहुत सी उषाएँ (भविष्य मे) उदित होने वाली (है), हे 'वरूण' ! हम जीवों को उन (अनुदित) (उषाओ) (के मध्य) मे आदिष्ट करो।

10 हे राजन् ! मेरा जो (घनिष्ठ सम्बन्धी) अथवा जो सखा मुझ भीरू (या, कायर) को स्वप्न मे भयभीत करता है और जो चोर अथवा जो भेडिया हमे दबाना चाहता है, उससे हे वरूण तुम हमारी रक्षा करो।

11 हे वरूण ! मुझे धनयुक्त, प्रिय (एव) दानशील बान्धव का (कभी) अभाव न रहे, हे राजन् ! सुनियमित धन से (मै) (कभी) दूर न रहूँ, उत्तम वीरो से युक्त (हम) यज्ञ मे योग्य रीति से (तुम्हारी स्तुति) उच्चारित करे।

सूक्त-29

1. हे नियमो के धारण करने वाले (तथा) क्रियाशील आदित्यो ! (मेरे) अपराध को मुझसे, एकान्त में प्रजनन करने वाली (व्यभिचारिणी स्त्रीं) के समान, दूर कर दो, हे वरूण ! हे मित्र ! हे देवो ! (तुम्हारे) कल्याण (के विषय मे) जानता हुआ (मै) (स्तुति का) श्रवण करने वाले तुम्हारा, रक्षा के लिए, आह्वान करता हूँ।

2 हे देवो ! तुम विशिष्टबुद्धियुक्त (हो), तुम बल (ही) (हो) तुम (हमारे) द्वेष करने वालो को (हमसे) दूर भगा दो, और, (हमारे) शत्रुहन्ता (तुम) (उन्हे) पूर्णत· अभिभूत कर दो, और आज तथा भविष्य मे हम पर कृपा करो।

3. हे वसुओ ! अब (तथा) भविष्य में, तुम्हारे लिए (हम) क्या करे ? (अपने) सनातन बन्धुत्व (या, सम्बन्ध) के द्वारा (हम) क्या (करे) ? हे मित्रावरुणौ ! हे अदिते ! हे इन्द्र और मरुत ! तुम (सब) हममे कल्याण निहित करो।

4. जो तुम, निश्चय ही, (मेरे) धनप्रदाता बान्धव हो, वे (तुम) याचना करने वाले मुझ पर कृपा करो, तुम्हारा रथ (हमारे) यज्ञ मे मन्द गति वाला न हो, तुम्हारे जैसे बान्धवो के रहते (हमें) श्रम न करना पडे।

5 (मुझ) अकेले ने अनेक अपराध किये है, चूँकि (तुमने) मुझे, (अपने) जुआरी पुत्र को पिता के समान, शासित किया है, हे देवो ! (अपने) पाशो को (तथा) अपराधो को दूर रखो, (मुझ) पुत्र पर बाज (पक्षी) के समान मत झपटो।

6. हे यजनीयो ! (तुम) आज (हमारे) अभिमुख होओ, हृदय मे भय खाता हुआ (मै) तुम्हारे (समीप) आया हूँ। हे यजनीय देवो ! हमारी हिसक वृक से रक्षा करो, (हमारे प्रति) अनर्थ करने वाले से (हमारी) रक्षा करो।

7. हे वरुण ! मै (कभी) धनयुक्त, प्रिय (तथा) उदार दानी बान्धव के अभाव को प्राप्त न करूँ, हे राजन् ! (मै कभी) सुनियमित धनो से दूर न होऊँ, उत्तम वीरो से युक्त (हम) यज्ञ मे योग्य रीति से (तुम्हारी स्तुति) उच्चारित करें।

सूक्त-30

1. देदीप्यमान, (वर्षा के) (प्रेरित) करने वाले, (सभी के) प्रेरक (तथा) 'अहि' के वधकर्त्ता 'इन्द्र' के प्रति, जल (जल (तर्पणो मे प्रवाहार्थ) विरत नही होते है, जलो की धारा प्रतिदिन अग्रसर होती है, किस समय इनकी प्रथम सृष्टि (हुई) (थी) ?

2 (उसकी) माता ('अदिति') ने उसे मनुष्य घोषित किया, जिसने 'वृत्र' के लिए (यज्ञीय) अन्न प्रस्तुत किया, इसकी प्रसन्नतार्थ, आज्ञापरायणा नदियॉ (अपने) मार्गो पर गमन करती हुई (अपने) गन्तव्य ('समुद्र') की ओर प्रतिदिन बहती हैं।

3 निश्चय ही, (वह) 'अन्तरिक्ष' मे ऊॅचाई पर स्थित रहा, ('इन्द्र' ने) 'वृत्र' के प्रति (अपने) विनाशक (वज्र) को प्रक्षेपित किया, बादल मे आच्छादित (वह) ('इन्द्र' की ओर) वेग से आगे बढा , (किन्तु,) तीक्ष्ण शस्त्र के धारक 'इन्द्र' ने (अपने) शत्रु को जीत लिया।

4 हे वृहस्पते ! तुम जिस प्रकार वज्र के द्वारा, उसी प्रकार कान्तिमय बरछे के द्वारा, अपने द्वारों, की रक्षा करते हुए असुर पुत्रो का भेदन करो, जिस प्रकार तुमने प्राचीन काल मे अपने पराक्रम द्वारा वृत्र का वध किया, उसी प्रकार, हे इन्द्र! (तुम) (अब) हमारे शत्रु को विनष्ट कर दो।

5 हे इन्द्र ! ऊॅचाई पर (तुम) 'द्युलोक' से वज्रदण्ड को नीचे की ओर प्रक्षेपित करो, जिसके द्वारा अत्युत्कट आन्नददायक (तुम) ने (अपने) शत्रु का विशेषण वध कर दिया, (और, तुम) हमे पुत्रो, पौत्रो तथा गायो की प्राप्ति में समृद्ध बना दो।

6. हे इन्द्र तथा सोम ! (तुम दोनो) (पाप) करने वाले को नष्ट कर दो, जिससे (तुम) द्वेष करते हो, विनम्र (या, उदार) यज्ञकर्त्ता के प्रवर्त्तक (या, प्रेरक) होओ, तुम दोनो इस भय के स्थान में हमारी रक्षा करो (तथा) संसार को, अब, (भययुक्त) बना दो।

7 ('इन्द्र') मुझे कष्ट प्रदान न करे और न मुझे आलस्ययुक्त बनाये, (हम) (एक दूसरे के प्रति) (कभी भी) कथन न करे (और) न 'सोम' (के अभिषव) का अर्पण करे, (क्योकि, यह 'इन्द्र' है,) जो (मेरी कामनाओ को) परिपूरित करेगा, जो मुझे धन प्रदान करेगा, जो (मेरी प्रार्थनाओ को) सुनेगा (तथा) जो मुझे, गायो के सहित, अभिषवो का अर्पण करते हुए, फल प्रदान करेगा।

8 हे सरस्वति ! तुम हमारी रक्षा करो, मरुतों से युक्त (तथा) आक्रमणशील (तुम) (हमारे) शत्रुओ को अभिभूत कर दो, जब कि 'इन्द्र' शण्डिको के प्रमुख का, (उसे) चुनौती देते हुए (तथा) (अपनी) सामर्थ्य पर दृढ विश्वास रखते हुए, वध करता है।

9. हे बृहस्पते ! जो हमारे प्रति घात मे पडा हुआ है, अथवा, जो हमारी हिंसा की आकाङ्क्षा से युक्त है, उसे (अपने) तीक्ष्ण (वज्र) से वेध दो (और) (हमारे) शत्रुओ को (अपने) शस्त्रो द्वारा पराभूत कर दो, द्रोहयुक्त के प्रति, हे राजन् ! तुम (अपने) विनाशक (बरछे) को सर्वत· प्रक्षेपित करो।

10. हे शूर ! (तुम) हमारे पराक्रमी वीरो के सहित, तुम्हारे जो (साहसिक) कार्य (सम्पादित किये जाने है,), (उन्हे) (सम्पादित) करो, (हमारे शत्रु) दीर्घ काल तक (के लिए) (गर्व से) फूल गये है, (तुम) (उन्हे) मार कर उनके धनो को हमे सम्यक् प्रदान करो।

11. प्रसन्नता के इच्छुक (हे मरुतो) ! (मै) (स्तुति–) वाणी के द्वारा (तथा) नमस्कार के द्वारा तुम्हारे दिव्य, प्रकट (एव) एकत्र (या, सञ्चित) बल का स्तवन करता हूँ, जिस प्रकार (हम) प्रतिदिन (एतद्द्वारा) विख्यात, पराक्रमी (भावी) सन्तानो के साथ चलने वाली (तथा) सभी (प्रकार के) वीरो से युक्त सम्पत्ति को प्राप्त करे।

सूक्त-31

1 आदित्यो, रुद्रो (तथा) वसुओ से सयुक्त होने वाले 'मित्र' तथा 'वरुण' हमारे (यज्ञीय) रथ की रक्षा करे जब (यह) (नीचे की ओर) उडने वाले अन्न की कामना से युक्त, हर्षित होने वाले (तथा) वन में आसीन पक्षियो के समान एक स्थान से दूसरे की ओर) (गमन करता है)।

2. तत्पश्चात्, साथ रहने वाले देव प्रजाओ (के मध्य) मे अन्न की कामना से युक्त (तथा, आगे की ओर गये हुए) हमारे रथ की उत्कृष्ट रूप से रक्षा करे, जब शीघ्रगामी (अश्व) धूलि को (अपने) कदमो से उठाते हुए 'पृथ्वी' के ऊँचे स्थानो पर (अपने) अग्रपादो से खूँदते (या, कुचलते) हैं।

3. अथवा, वह सबका निरीक्षक (तथा) 'द्युलोक' से (आने वाले) मरुतो के दर्पयुक्त बल के द्वारा शोभनकर्मयुक्त 'इन्द्र' (हमे) विशाल (धन) के लाभ (तथा)) अन्नो की प्राप्ति (कराने) के लिए (अपनी) कृपापूर्ण रक्षाओ के द्वारा हमारे रथ की रक्षा करे।

4. अथवा, प्राणिजात का रक्षक (तथा) (देवताओ की) पत्नियो के साथ–साथ सुष्ठु प्रसन्न (होते हुए) देव 'त्वष्टा' रथ को प्रेरित करे, अथवा, 'इळा', देदीप्यमान 'भग', 'द्यावा–पृथिवी', विचक्षण (या, प्रौढ) 'पूषा' (तथा, 'सूर्या' के) (दोनो) पति 'अश्विनौ' (रथ को प्रेरित करे)।

5. अथवा, दो दिव्य, सौभाग्योपेत, जङ्गम (प्राणियो) को अनुप्राणित करने वाली (तथा) परस्पर अवलोकन करने वाली 'अहोरात्र' (सञ्ज्ञिका देवियॉ) (इसे प्रेरित करे), और, हे द्यावापृथिवी ! (मैं) तुम दोनो की, नवीन स्तोत्र के द्वारा, स्तुति करता हूँ, और, (मै) (तुम्हे) स्थायी (या, प्रतिष्ठित) (धान्य वाला) अन्न (जो कि) तीन (प्रकार के) (यज्ञीय) अन्नों से निर्मित (है), अर्पित करता हूँ।

6. (हे देवताओ ! हम) स्तुति द्वारा सन्तुष्ट तुम्हारी स्तुति को मानो पुन उच्चारित करने के लिए (तुम्हारी) कामना करते है, 'अहिर्बुघ्न्य', 'अज एकपाद्' 'त्रित', 'ऋभुक्षा' और 'सविता' भी (हमे) अन्न प्रदान करें, शीघ्रगमनशील जलों का पौत्र ('अग्नि') (हमारी) स्तुतियो (तथा) (यज्ञीय) कर्म द्वारा (सन्तुष्ट होवे)।

7. हे पूजनीय (देवताओ) ! (जो) ये (मेरी) उत्साहपूर्ण (या,गम्भीर) स्तुतियॉ तुमकों (प्रसन्न करने वाली)(हैं), (मैं) (उनकी) कामना करता हूँ। बल की इच्छा से युक्त मनुष्यों ने, अन्न की कामना करते हुए, (तुम्हारे) अनुष्ठान के लिए (स्तोत्रों को) निर्मित किया है, रथ से सम्बद्ध (शीघ्रगामी) अश्व के समान तुम) हमारे (श्रेष्ठ) कर्म के प्रति शीघ्रता करो।

11. हे वीर इन्द्र ! तुम्हारी शक्ति सुष्ठु प्रशसनीय (है), जो (कि) एक (ही) कर्म के द्वारा धन को प्राप्त कर लेते हो, बलशाली 'जातूष्ठिर' (राजा) के लिए (तुमने) अन्न (प्रदान किया), बलपूर्वक जो (तुमने) सम्पूर्ण (कर्मो) को किया, (वह) (तुम) प्रशसनीय हो।

12 (जिस तुमने) त्वरायुक्त (लोगों) को वेगयुक्त जल को पार करने के लिए जल प्रवाह को 'वय्य' तथा 'तुर्वीति' के लिए शान्त कर दिया, जल के नीचे डूबते हुए, (अपने को) कान्तिमान् बताते हुए, अन्धे तथा पंड्गु 'परावृज्' को निकाल दिया, वह (तुम) प्रशसनीय हो।

13 हे वासक ! (तुम) हमे उस धन को देने के लिए सामर्थ्ययुक्त बनाओ, निवासयोग्य तुम्हारे धन अनेक (है)। हे इन्द्र ! जो (हम) रमणीय धन की इच्छा वाले (है), प्रतिदिन धन की कामना करते है, (हम) यज्ञ में (अपने) उत्तम वीरो से युक्त (होते हुए) योग्य रीति से (तुम्हारी स्तुतियाँ) उच्चारित करे।

सूक्त ३२

1 हे द्यावापृथिव्यौ ! (तुम दोनो) इस (अपने यजमान) मेरी रक्षा करने वाली होओ, (जो कि मै) 'ऋत' की कामना करने वाला (तथा) स्तुतिवाणी द्वारा (तुम्हे) अनुकूल करने का इच्छुक (हूँ), क्योंकि, तुम दोनो का यह दीर्घतर (या प्रचुर) अन्न (है) (मै) धनो की कामना से युक्त तुम दोनो का स्तवन करता हूँ (तथा तुम्हे) महती (प्रशसा के सहित) (अनुष्ठित करता हूँ)।

2. (हे इन्द्र !) मनुष्य का प्रच्छन्न कपट हमे दिन (या,रात्रि) मे हानि न पहुँचाये, दुर्मतियों (या, द्वेषियो) के प्रति विषय (–भूत) हमे छोड मत दो, हमे (अपनी) मित्रता से वियुक्त मत करो, हमे उस प्रसन्नताकामी मन के द्वारा जानो, (हम) तुमसे उस (वरदान) के विषय मे पूँछते है।

3. (हमारे प्रति) अनुग्रहयुक्त मन से सुष्ठुपोषिता, सुसम्बद्ध अवयवो से युक्त, दुहाने वाली, दुग्ध प्रदान करने वाली (तथा) अन्नदायिका (या, अनुपम) गाय का सम्यग् वहन करो,(मै) प्रतिदिन बहुतो द्वारा निमन्त्रित, शीघ्र (–गामी) कदमों वाले, वाणी के द्वारा (शीघ्रगामी) (तथा) [illegible] तुम्हे प्रेरित (या,प्रशसित) करता हूँ।

4. मैं शोभन स्तुति के द्वारा, सुखपूर्वक निमन्त्रित की जाने वाली 'राका' का आहवान करता हूँ, सौभाग्योपेता (वह) हमारा श्रवण करे (तथा) स्वयमेव (हमारे प्रयोजन को) जान ले, (वह) (एक) अमोघ सुई के द्वारा (अपने) कर्म को सिल दे, (वह) प्रचुर (मात्रा मे) (तथा) प्रशसनीय पुत्र प्रदान करे।

5. हे राके ! जो तुम्हारी श्रेष्ठ कृपाये (तथा) सुन्दर रूप (है), जिनके द्वारा (तुम) (हविष्यो के) प्रदाता को धन प्रदान करती हो, उनके द्वारा आज प्रसन्नचित्त, सहस्र वरदानो को प्रदान करने वाली तथा सौभाग्योपेता (तुम) हमारे समीप आगमन करो।

6. हे विस्तीर्ण नितम्ब वाली सिनीवालि ! जो (तुम) देवों की भगिनी हो, अर्पित हविष्य का सेवन करो (तथा) हे देवि ! (तुम) हमे सन्तति प्रदान करो।

7 जो शोभन भुजाओं से युक्त, शोभन अड्गुलियो से युक्त (तथा) अनेक (प्रजाओं) की उत्पादयित्री (है), उस सम्पूर्ण (मानवजाति) की पालिका (या, गृहस्वामिनी) 'सिनीवाली' के प्रति हविष्य प्रक्षिप्त करो।

8 जो 'गुड्गू' (है), जो 'सिनीवाली' (=नूतन चन्द्रमा) (है), जो 'राका' (=पूर्ण चन्द्रमा) (है) (तथा) जो 'सरस्वती' (है), (उसका)(मै) आह्वान करता हूँ, (मैं) रक्षा के लिए 'इन्द्राणी' का (तथा)कल्याण के लिए 'वरुणानी' का (आह्वान करता हूँ)।

अनुवाक-IV

सूक्त-33

1 हे मरुतो के पितर । तुम्हारा सुख (हमारी ओर) आगमन करे, मुझे 'सूर्य' के सम्यग् दर्शन से वियुक्त न करो, हमारा पुत्र शत्रु पर अभिभावी हो जाये, हे रुद्र । (हम) प्रजाओ से प्रवृद्ध हो जाये।

2 हे रुद्र । तुम्हारे द्वारा दी गयी सर्वाधिक कल्याणकारिणी औषधियो से (हम) सौ वर्षो को व्याप्त करे, द्वेष करने वालो को हमे विशेषेण (दूर कर दो), पाप को विशेषेण अत्यन्त (दूर कर दो), सर्वव्यापी रोगो को विशेषेण दूर कर दो।

3. हे रुद्र । ऐश्वर्य के द्वारा उत्पन्न (जगत्) के (मध्य मे) श्रेष्ठ हो, हे वज्रहस्त । (तुम) बलशालियो मे सर्वाधिक बलशाली (हो), हमे पाप से परे कुशलतापूर्वक पार कर दो, पाप के सम्पूर्ण अभिगमनो (या, आक्रमणो) को (हमसे) दूर कर दो।

4. हे रुद्र । (हम) तुम्हे (अनुचित) नमस्कारो से क्रोधित न करे, बुरी स्तुतियो से (क्रोधित न करें), हे (कामना) वर्षक । (हम) (निम्नकोटीय देवो के) साथ आह्वान के द्वारा (तुम्हे क्रोधित न करें), (तुम) हमारे पुत्रो को औषधो के द्वारा ऊपर उठा दो, (मै) तुम्हे चिकित्सको में सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक सुनता हूँ।

5 जो आह्वानों (तथा) हविष्यों के द्वारा पुकारा जाता है,(उस) 'रुद्र' को स्तोत्रो से पृथक् (या, क्रोधरहित) करता हूँ, सरलहृदय, सुष्ठु आह्वानयोग्य, भूरे रङ्ग वाला (तथा) शोभन कपोलों से युक्त ('रुद्र') इस दुर्बुद्धि के लिए हमे हिसित न करे।

6 शक्तिशाली मरुत्सयुक्त ('रुद्र') ने अधिक शक्तिशाली अन्न से, याचना करते हुए मुझको उत्कर्षेण तृप्त कर दिया,घूप (या, उष्णता) मे (स्थित) सा (मैं), 'रुद्र' के सुख को, पापरहित (होते हुए) प्राप्त करूॅ, और , (उस रूद्र' की) सम्यक् परिचर्या करूॅ।

7. हे रुद्र । तुम्हारा वह दयालु, रोगनिवारक (एव) शीतल हाथ कहॉ है ? जो दैवी आपत्ति को दूर करने वाला (है), हे (कामना–) वर्षक । मुझे अब क्षमा कर दो।

8. भूरे, वर्षणशील, श्वेत वर्ण वाले ('रुद्र') के लिए महान् (देव) की महती (एवं) शोभना स्तुति प्रेरित करता हूँ,(हे स्तोतर् । तुम) दीप्तिपूर्ण ('रुद्र') को नमस्कारो द्वारा पूजित करो, (हम) 'रुद्र' के तेजस्वी नाम का स्तवन करते हैं।

9 दृढ अङ्गों से (युक्त), अनेक रूपो वाला, तेजस्वी (एवं) भूरे वर्ण वाला ('रुद्र') दीप्तिपूर्ण (एवं) सुवर्णमय (अलङ्करणो) से (स्वय को) अलङ्कृत करता है, इस विपुल लोक का स्वामित्व करने वाले 'रुद्र' से दैवी सम्प्रभुता (या,शक्ति) न ही वियुक्त हो।

10. (तुम) समर्थ होते हुए बाणो (तथा) धनुष को धारण करते हो, समर्थ होते हुए (ही) पूजनीय सम्पूर्ण रूपो वाला हार (धारण करते हो), समर्थ होते हुए (ही) इस विशाल जगत् के प्रति दया करते हो, हे रुद्र । (कोई भी) तुमसे अधिक समर्थ (या, ओजस्वी) नहीं ही है।

11. प्रसिद्ध ,रथासीन, युवक, सिह के समान भयङ्कर, (शत्रुओ के) समीप (पहुँचकर) मारने वाले (एव) शक्तिशाली 'रुद्र' की स्तुति करो, हे रुद्र ! स्तुत होते हुए (तुम) स्तोता के प्रति दया करो, तुम्हारी सेनाये हमसे भिन्न (अर्थात्, शत्रु) को नि शेषेण हिसित कर दे।

12 हे रुद्र ! (यह) बालक (मै) अभिवादन (या,स्तवन) करते हुए (हमारे) समीप गमन (या, यमन) करते हुए पिता के प्रति नत हो गया (हूँ), (मै) विपुल दान करने वाले श्रेष्ठ (जनों के) स्वामी की प्रशसा करता हूँ, (हे रुद्र !) स्तुत (होकर) तुम हमे ओषधियॉ प्रदान करो।

13. हे मरुतो ! तुम्हारी जो पवित्र औषधियॉ (है), जो सर्वाधिक कल्याणकारिणी (है), हे (कामना) वर्ष को ! जो सुख (की) भावना (उत्पन्न) करने वाली (है) (और) जिनको हमारे पिता 'मनु' ने वरण किया था,'रुद्र' की उन (औषधियो) को (रोग) उपशमन तथा (भय) पृथक्करण को चाहता हूँ।

14. 'रुद्र' का शस्त्र हमे दूर अलग रखे, तेजस्वी ('रुद्र') की महती दु खकारिणी बुद्धि दूर चली जाये, दृढ (शस्त्रो) को धनयुक्त (दाता यजमान) के लिए शिथिल कर दो, हे सेचनसमर्थ ! (तुम) (हमारे) पुत्र (तथा) पौत्र के प्रति दया करो।

15 हे बभ्रु वर्ण वाले ! वर्षणशील ! (सब कुछ) जानने वाले। देव ! आह्वानो को सुनने वाले रुद्र ! (तुम) जिस प्रकार न क्रोध करते हो (और) न हिसा करते हो, (उस प्रकार) यहॉ हो जाओ (या, जानो), सुन्दर पुत्रो से युक्त (हम) यज्ञ मे अत्यधिक (या,प्रौढ) स्तुतियॉ उच्चारित करे।

सूक्त-34

1 (जल–) धाराओ के प्रवाहित करने वाले, साहसपूर्ण शक्ति से युक्त, वन्य पशुओ के समान भयङ्कर, (अपनी) शक्तियो द्वारा समादर करने वाले, अग्नियो के समान देदीप्यमान् जल से लदे हुए (तथा) भ्रमणशील (मेघ) के चारो ओर बहने वाले मरुतो ने (इसकी) (एकत्रित) वर्षा को (बाहर) निकाल दिया।

2 चूकि, सुवर्णालङ्कारयुक्त वक्ष. स्थल वाले हे मरुतो ! पराक्रमी 'रुद्र' ने तुमको 'पृश्नि' के तेजस्वी थन से उत्पन्न किया, (अतएव, अपने शत्रुओ के) भक्षक (वे), नक्षत्रो के द्वारा 'द्युलोक' के समान, विशेषण जाने जाते है, (तथा,) मेघोत्पन्ना (विद्युत्) के समान, वर्षाओ (के प्रेरक) (वे) प्रकाशमान होते है।

3 जिस प्रकार (मनुष्य) युद्धो मे (उत्तेजित) गतिशील अश्वो को, (उसी प्रकार, वे सुव्याप्त (भूमि) को (जल से) सिञ्चित करते है, (वे) शब्दायमान (मेघ) के किनारों (या,सीमाप्रदेश) पर शीघ्रगामी अश्वो के साथ झपट पडते हैं, हे सुवर्णमय शिरस्त्राण से युक्त (तथा) समान मनस् वाले मरुतो ! (वृक्षो को) आन्दोलित करने वाले (तुम) (अपनी) चित्रवर्णा (मृगियो) के सहित (यज्ञीय) अन्न को (ग्रहण करने के लिए) आगमन करो।

4. अभिवृद्धिकर दान से युक्त (मरुद्गण) सदैव (यज्ञीय) अन्न (का अर्पण करने वाले) के लिए, जैसे मित्र के लिए सम्पूर्ण ये विश्व (–धारक) (जल) प्रदान करने की) इच्छा करते हैं, (वे) अश्वों के स्थान पर चित्रवर्णा (मृगियों) वाले, विपुल दान देने वाले (तथा) (लक्ष्य के प्रति) सीधे गमन करने वाले (अश्वों)के समान गतिशील (मेघों) (के मध्य) मे (अपने) (रथो के) धुरे पर बैठने वाले (हैं)।

5. हे समान मनस् से युक्त (तथा) चमकीले भालो वाले मरुतो ! (तुम) मधुर पेय (='सोम') की मादकता (के सहभागी होने) के लिए अबाधित मार्गो द्वारा चमकीली (और) परिपूर्ण थनो वाली गाय के सहित, जैसे हस (अपने) निवासस्थानो की ओर, (उसी प्रकार) आगमन करो

6 हे समान मनस् से युक्त मरुतो ! (तुम) मनुष्यो के स्तोत्रो के समान (हमारे) यज्ञो मे समर्पित अन्न की ओर आगमन करो, दुधारू गाय (=मेघ) को पोषित करो, (ताकि) घोडी के समान (यह) (परिपूर्ण) थन वाली हो जाये, (तथा) स्तोता के लिए (प्रचुर) अन्न के उत्पादनकारी (यज्ञ) कर्म को प्रदान करो।

7. हे मरुतो ! (तुम) हमे वह (पुत्र) प्रदान करो, (जो) समर्थ (हो) तथा आने वाले (तुमको) (प्रेरित करने) के लिए प्रतिदिन (तुम्हारी))उपयुक्त) स्तुतियो को (बारम्बार) उच्चारित करने वाला हो, (अपने) स्तोताओं के लिए अन्न को (तथा) (तुम्हारा) स्तवन करने वाले के लिए लाभ, प्रज्ञा (तथा) अक्षुण्ण (एव) कठिनाई से पार करने योग्य बल को प्रदान करो।

8 जब सुवर्णालङ्कारयुक्त वक्ष स्थल वाले शोभन–दानयुक्त मरुतो ने सौभाग्यशाली (अवसर) पर(अपने) रथो मे अश्वो को सयोजित किया, (तब, उन्होने) हविष्य प्रदान करने वाले मनुष्य के लिए, (अपने) वत्स के लिए दुधारू गाय के समान, प्रभूत अन्न को, (अपने) निवासस्थानो मे, परिपूर्ण कर दिया।

9 हे निवास प्रदाता मरुतो ! (तुम), जो शत्रु मनुष्य हमारे प्रति भेडिये के समान शत्रुता पोषित करता है, (उस) (द्वेषी व्यक्ति के) द्वेष से (हमारी) रक्षा करो, (अपने) दाहक (या,तापक) रोगो से उसे घेर लो, हे रुद्रपुत्रों ! भक्षणशील (शत्रु) के हिसक (शस्त्र) को निवारित (या, प्रभावरहित) कर दो।

10. हे मरुतो ! तुम्हारा वह गमन (या, सञ्चार) आश्चर्य जनक जाना जाता है, जिसके द्वारा (तुमने) 'पृश्न' (='द्यु–लोक') के थन (='मेघ') को (कसकर) पकडते हुए (इसे) (वर्षा के विषय मे) दुहा, हे अप्रतिरोध्य रुद्रपुत्रो ! (तुमने) (अपने) यजमान के निन्दक को विनष्ट किया, (और,) 'त्रित' के प्रति,(उसके शत्रुओ के) विनाश के लिए (आगमन किया)।

11 हे शक्तिसम्पन्न मरुतो ! (हम) व्यापनशील (या, विस्तारयुक्त) (तथा) अभिलषणीय (अभिषव) के समर्पण मे गन्तव्य ('यज्ञ') के प्रति (शीघ्र) गमनशील उन तुम्हारा आह्वान करते है, (अपनी) करछुले ऊँची रखने वाले (तथा) स्तोत्र–उच्चारित करने वाले (हम), उत्कृष्ट (या,प्रशसनीय) धन के लिए, सुनहरे वर्ण वाले (तथा) उदात्त (मरुतों) से याचना करते हैं।

12 'दश'–मासिक (याग) के प्रथम अनुष्ठाता ने, जिन्होने इस यज्ञ को सम्पादित किया, वे ('उषा' के प्रकाशमय होने की क्रिया मे हमे (पुन) प्रेरित करे, जिस प्रकार 'उषा' नीललोहित किरणो के द्वारा 'रात्रि' को दूर भगा देती है, (उसी प्रकार, वे) महान्, शुद्ध (तथा) कुहरे को दूर कर देने वाली दीप्ति के द्वारा (अन्धकार को छिन्न–भिन्न कर दें)।,

13. श्रुतिमधुर (वीणाओ) से (सज्जित) (तथा) नीललोहित आभूषणो से (अलङ्कृत) वे 'जल' के निवासस्थानो मे प्रवर्धित (या, प्रतिष्ठित) होते है, शीघ्रगामी बल के द्वारा मेघो को छिन्न–भिन्न कर देने वाले (वे) आह्लादपूर्ण रूप को (तथा) सुन्दर आकार को धारण करते है।

14 सहायता के लिए (उनसे) प्रभूत धन की प्रार्थना करते हुए (तथा) रक्षा के लिए (उनकी शरण लेने वाले) (हम) इस स्तोत्र के द्वारा (उनका) स्तवन करते है, पॉच (मुख्य) ऋत्विजों के समान, जिन्हें 'त्रित' ने (यज्ञ के) सम्पादन (या, साहाय्य) के लिए (तथा) (अपने) आयुधो के द्वारा रक्षा करने के लिए निरूद्ध किया था।

15 हे मरुतो ! वह (रक्षा), जिसके ,द्वारा तुम विनम्र (यजमान) को पाप से पार पहुँचा देते हो, जिसके द्वारा (तुम) (अपनी) स्तुति के उच्चारणकर्त्ता को निन्दा से मुक्त कर देते हो, (हमारी) ओर (प्रवृत्त होवे), तुम्हारी जो भद्र प्रकृति (या, कृपा (है), (वह) (अपने बछडे के प्रति) रँभाने वाली (गाय) के समान, (हमारी ओर) सुष्ठु प्रवृत्त होवे।

सूक्त-35

1 धन की कामना वाले (मैने) (इस) स्तुति की इच्छा की है, नदियो का पुत्र ('अपा नपात्') मेरी (इस) स्तुति मे आनन्द प्राप्त करे, क्या वह तीव्र गति वाला 'अपां नपात्' (स्तुतियों को) सुन्दर स्वरूप वाला करेगा (तथा) (स्तुतियो से) आनन्दित होगा?

2 इसके प्रति,हृदय से सुष्ठु रचित इस मन्त्र को उच्चारित करूँ, (क्या यह) इस (मन्त्र) को स्वीकार करेगा? श्रेष्ठ 'अपा नपात्' ने (अपने) सर्वोच्च देवत्व की महिमा से सभी लोको को उत्पन्न किया है।

3 वर्षा से आगत अन्य (जल) सयुक्त (होकर) प्रवहित होते है, पहले से ही भूमि पर स्थित अन्य (जल) वृष्ट जल उस (समुद्र) से सयुक्त होता है, नदियाँ (समुद्रगत) महान् (वडवाग्नि) को आपूरित करती है, शुद्ध जल प्रकाशित होते हुए 'अपा नपात्' के चारो ओर स्थित है।

4 दर्पहीन युवतीरूपा अलङ्कृत जलराशियाँ उस युवक के चारों ओर स्थित है, दीप्तस्वरूप वह इध्म के बिना ही घृत से आवृत जलो मे कान्त लपटो के द्वारा धनपूर्ण रूप से प्रकाशित हुआ।

5 दिव्य तीन जलस्त्रियाँ इस अव्यथित (=अडिग) के लिए अन्न प्रदान करने की इच्छा करती है, वह जलो मे, नवजात की भाँति, (धाय्या के प्रति) प्रसृत होता है, प्रथम प्रसव कारिणियो के पयस् का पान करता है।

6. यहाँ इस (अपा नपात् रूप) अश्व का जन्म हुआ तथा प्रकाश (का जन्म हुआ), (हे अपां नपात् !) (तुम) स्तोताओ की द्रोही हिसको के सम्पर्क से रक्षा करो, अपरिपक्व (ईटो से बने) किलो (=जलों) मे अन्दर स्थित स्पर्श न किये जा सकने वाले को न शत्रु पा सकता है (और) न (ही) मिथ्यावादी (रक्षोगण) ।

7 जिस के अपने गृह मे सुदुधा धेनु अमृत का दोहन करती है, (वह) सुष्ठुद्भूत अन्न को खाता है, वह 'अपा नपात् जलो के मध्य शक्ति (–उत्पादक) होता हुआ (यज्ञादि–)विधान करते हुए (व्यक्ति) के लिए धन देने के लिए प्रकाशित होता है।

8 ऋतसंयुक्त (एव) शाश्वत जो ('अपा नपात्') जलो के मध्य कान्त देवत्व (=ज्योति) के कारण अत्यधिक (रूप) प्रकाशित होता है, (वृक्षरूप) इस ('अपा नपात्') की शाखाओं की भाँति, समग्र प्राणी (तथा) लताएँ पुष्पफलादि से समृद्ध होते है।

9 'अपा नपात्' कान्ति को धारण किये हुए, ऊर्ध्वमुख, कुटिलों के हृदय पर स्थित हुआ, उसकी विशाल महिमा का वहन करती हुई स्वर्णवर्ण कामिनियाँ उसे परित· घेरे हुए है।

10. वह 'अपा नयात्' स्वर्णिम रूप वाला (तथा) स्वर्णिम कान्ति वाला (है), वह, निश्चय ही, स्वर्णवर्ण (है), (इसके) स्वर्णिम गृह से (वेदि पर) स्थित होकर स्वर्ण–प्रदाता (यजमान) इसके लिए हविष्यान्न प्रदान करता है।

11 इस 'अपा नपात्' का यह गुप्त रूप (तथा, इसका) सुन्दर नाम प्रवृद्ध होता है, स्वर्णवर्ण घृत इसका अन्न (है), जिसे इस प्रकार से युवतियाँ समिद्ध करती हैं।

12. बहुतो मे निकटतम मित्रभूत`इस ('अपां नपात्') के प्रति हम नमस्कारपूर्वक (प्रदत्त) हविष्यों के द्वारा यजन करे, (इसके) शिखर का सम्मार्जन करता हूँ, इध्मों को धारण करता हूँ। अन्न देता हूँ (तथा) ऋचाओं से परित· वन्दना करता हूँ।

13. वह रेत सेचक उन (जलो) मे इस गर्भ को उत्पन्न करता है, वह (गर्भोद्भूत) शिशु इनका (स्तन) पान करता है, (वे) इसे चाटती है। कही से भी न अम्लान हुए रङ्ग वाला वह 'अपा नपात् यहाँ अन्य (पार्थिवाग्नि) के शरीर मे प्रविष्ट होता है

14 इस सर्वोच्च स्थान पर स्थित, ध्वसरहित तेज से प्रतिदिन कान्त होते हुए 'अपा नपात्' के लिए घृतान्न वहन करती हुई (एवम्) अलङ्करणो) से (सज्जित) जलयुववियाँ स्वय इसके परित गमन करती है।

15 हे अग्ने । (तुमने) (अपने) लोगो के लिए सुन्दर गृह प्रदान किया, (अपने) दानदायको के लिए शोभन स्तवन प्रेरित किया। जो (कुछ भी) देव (लोग) सहायता देते है, वह मङ्गलमय (है), शोभन पुत्रो से युक्त होकर (हम) सभा मे (तुम्हारे प्रति) अत्यधिक स्तवन करे।

सूक्त–36

1. हे इन्द्र ! तुम्हारे प्रति अर्पित होता हुआ (अभिषव) गाय (के उत्पादो) (तथा, प्रतिष्ठित) जल को समाविष्ट करता है, (तथा,) (यज्ञ के) नेताओ ने (इसे) पाषाणो से सुविवेचित किया है (और) ऊर्णामय (निष्यन्दको) के द्वारा (इसे) आयासित (या, विकृत) किया है। जो (तुम) (देवो के) प्रथम (–भूत) (हो) (तथा) (ससार के) स्वामी होते हो, (वह तुम) 'होता' के द्वारा अर्पित (तथा) 'स्वाहा' (एव) 'वषट्' (–आहुतियो) के द्वारा पवित्रीकृत 'सोम' का पान करो।

2. हे 'भरत' के पुत्रो (तथा) 'द्युलोक' के नेतृत्वशील (मरुतो) ! यज्ञो के द्वारा एक साथ मिले हुए, चित्तीदार (घोडियो) के द्वारा (वहन किये जाते हुए) (रथ मे बैठे हुए), भालो के द्वारा देदीप्यमान तथा आभूषणो के द्वारा आनन्दित (तुम) कुशासन पर भली–भॉति बैठकर 'पोता' के द्वारा (अर्पित) 'सोम' का पान करो।

3. सुष्ठु आह्वान किये जाने वाले (तुम), निश्चय ही, हमारी ओर साथ–साथ आगमन करो (तथा) कुशासन पर प्रतिष्ठित (होकर) नि शेषेण आनन्दयुक्त होओ, तत्पश्चात् तेजोमय सहगण (का नेतृत्व करने वाले) हे त्वष्टर् ! (तुम) देवताओ (तथा, उनकी) पत्नियो के सहित (आओ) (और) (यज्ञीय) अन्न से सेवित (या,प्रसन्न) होते हुए आनन्दित होओ।

4. हे प्रतिभासम्पन्न (अग्ने) ! (तुम) यहॉ पर देवो का सम्यग् वहन करो तथा (उनका) यजन करो, देवो के निमन्त्रक (तथा हमारे प्रति) उत्सुक (तुम) तीन (वेदिरूप) स्थानो मे आसीन होओ, 'अग्नीध्र' के द्वारा (तुम्हारे प्रति) तत्पर (या, अर्पित) सोम–सम्बन्धी मधुर पेय का उपभोग करो (तथा) अपने भाग से सन्तुष्ट होओ।

5. यह वह (समर्पण), हे इन्द्र ! तुम्हारे शरीरिक पौरुष (या, सामर्थ्य) का प्रवर्धक (है), (तुम्हारी) भुजाओ मे निहित बल उच्चतम स्वर्ग मे (भी) प्रतिशोधशून्य (या,अभिभावी) (है), हे मधवन् ! (यह) तुम्हारे लिए अभिषुत (है), तुम्हारे लिए इसका 'ब्राहमण' से आहरण किया गया है, (तुम) (इसका) पान करो (तथा) सन्तुष्ट होओ।

6. ('मित्र' एव 'वरुण' ! तुम दोनो) यज्ञ को सेवित करो, मेरे आह्वान का (उसी प्रकार) अवगम करो, (जिस प्रकार) आसीन 'होता' (–ऋत्विज्) प्राचीन विशिष्ट प्रबोधनात्मक) पुकारो को आनुपूर्व्येण (उच्चारित करता है),ऋत्विजो के द्वारा) परिवेष्टित (यज्ञीय) अन्न के प्रति देदीप्यमान (युगल) (सह–) गमन (या,परिचर्या) करता है, (तुम दोनो) 'प्रशास्ता' (–ऋत्विज्) के द्वारा अर्पित सोम सम्बन्धी मधुर पेय का सम्यक् पान करो।

सूक्त-37

1. हे द्रविणोदस् ! (तुम) 'होतृ'–सम्बन्धी (अर्पण) के रूप मे (प्रस्तुत) (यज्ञीय) अन्न के द्वारा आनन्दित होओ। हे अध्वर्युओ ! वह पूर्ण तर्पण की कामना करता है, उसके प्रति, इसका आहरण करो, (और इससे) प्रभावित (वह) (तुम्हारे प्रति) दानशील (होगा) । हे द्रविणोदस् ! तुम) ऋतुओ के सहित, 'होता' के द्वारा (अर्पित किये जाने वाले)' 'सोम' का पान करो।

2. (वह,) जिसको (मैने) पहले निमन्त्रित किया, उसे अब निमन्त्रित करता हूँ, वह, निश्चय ही, आह्वानयोग्य (है), जो दानशील (के रूप मे) विख्यात है। हे द्रविणोदस्! ! अध्वर्युओ के द्वारा सोमसम्बन्धी मधुर पेय को आहृत (किया गया है), (तुम) ऋतुओं के सहित 'पोता' के द्वारा (अर्पित किये जाने वाले) 'सोम' का पान करो।

3. ये तुम्हारे वहनकर्त्ता, जिनके द्वारा तुम साथ–साथ उत्पन्न (हुए) हो, पुष्ट होवें, हे वनस्पते ! हिसा न करते हुए (तुम) दृढ होओ, हे दृढसङ्कल्पयुक्त ! आगमन करो,(और) कृपालु (या, रमणीय) (होते हुए) हे द्रविणोदस ! तुम ऋतुओं के सहित 'नेष्टा' के द्वारा (अर्पित किये जाने वाले) 'सोम' का पान करो।

4. (चाहे) (उसने) 'होता' (के अर्पण) से ('सोम' का) पान किया है, (चाहे) (वह) 'पोता' (के अर्पण) से आनन्दित हुआ है।

'द्रविणोदस्' (–ऋत्विज्) (के द्वारा अर्पित) चतुर्थ अनाहत (एवम्) अमृतोपम (या, दिव्य) चषक का पान करे।

5. (हे अश्विनौ !) आज (यज्ञ के) नेतृत्वशील (तथा) वहन करने वाले (तुम) हमारे अभिमुख (अपने) भ्रमणशील रथ को सयोजित करो, (तथा) यहाँ तुम्हारा (अश्वसम्बन्धी) बन्धमोक्ष (होवे), हविष्यो को मधुर रस से मिश्रित कर दो, हे (प्रचुर) अन्न (रूप) धन से सम्पन्न (तुम) आगमन करो, तत्पश्चात् 'सोम' का पान करो।

6. हे अग्ने ! समिधा से प्रसन्न होओ, हविष्य से प्रसन्न होओ, मनुष्य के लिए कल्याणप्रद मन्त्र से प्रसन्न होओ (तथा) शोभन स्तुति से प्रसन्न होओ, हे [illegible], ! (हविष्यो को स्वीकार करने की) इच्छा करते हुए (तुम) (समान के विषय मे) अभिलाषायुक्त सम्पूर्ण महान् देवताओ को (उन) सम्पूर्ण के द्वारा (प्रदान करो) (तथा) 'ऋतु' के सहित हविष्य का पान करो।

सूक्त-38

1. वह नेतृत्वमय, एकमात्र कर्ममय देव 'सविता' (लोगो को) प्रेरणा देने के लिए उत्थित हुआ। सचमुच, वह देवो के शश्वत्तम रत्न वितरण करता है और कुशलपूर्वक जीवन मे होत्रकर्म मे प्रसन्न रहने वाले (यजमान) को भाग प्रदान करता है।

2. ऊर्ध्वोत्थित विशालबाहु देव 'सविता' आज्ञापालन के लिए सभी के प्रति दोनो बाहुओं को ऊपर फैलाये है, शोधित जलराशियॉ भी इसके नियम मे स्थित है, यह वायु भी अन्तरिक्ष मे विश्राम करता है।

3. सचमुच, शीघ्रगामी अश्वो से चलता हुआ यात्री अश्व को रश्मियुक्त कर देता है, यह ('सविता') गमन–शील व्यक्ति को भी गमनव्यापार से विश्रान्त कर देता है, अहिहिसक ऋजीष्य की गमनकामना को भी नियन्त्रित करता है, कर्मविरतकरिणी (रात्रि) सविता के नियमानरुप आती है।

4. फैले हुए ताने–बाने को बुनती हुई रात्रि ने उसे फिर से एक बार समेट दिया है, निपुण लोक ने किए जा सकने योग्य कर्म को मध्य मे ही छोड दिया, लोक शय्या को छोड कर पुन उठ खडा हुआ, अलङ्कृत–मति 'सविता' (सायकाल को) आ पहुँचा और ऋतुओ को विभक्त कर दिया।

5. 'अग्नि' का गृह्य प्रभूत प्रकाश सम्पूर्ण जीवनभर पृथक्–पृथक् गृहो मे स्थित है। माता ने पुत्र के लिए सर्वाधिक भाग नियत किया है, उसकी इच्छानुरूप उसे 'सविता' के द्वारा प्रेषित किया।

6. जयकामी जन विविध स्थान पर जाकर पुन लौट आया, सभी विचारशील जन की (गृहप्रत्यागमन–) कामना हुई। देव 'सविता' के नियमानुरूप प्रत्येक व्यक्ति कार्य को अपूर्ण छोडकर कर घर आ गया।

7. जलीय प्राणी जलो मे तेरे द्वारा नियत भाग प्राप्त करते है, निर्जलीय प्रदेशो –अरण्यो –मे पशुगण सर्वत्र स्थित रहते है, पक्षियों के लिए वृक्ष दिया गया, इस देव 'सविता' के इन नियमो का कोई उल्लङ्घन नही करता।

8. यावन्निमेष कर्मरत 'वरुण' यथेष्ट समय तक सुखप्रद कोमल जलीय गृह को जाता है, समग्र पक्षिसमूह (नीड मे जाता है), समग्र पशुसमूह गोष्ठ मे जाता है, 'सविता' ने उत्पन्न जीवो को उनके स्थान–स्थान पर पृथ्क्–पृथक कर दिया है।

9. जिसके नियमो मे न 'इन्द्र' न 'वरुण', न 'मित्र' न 'अर्यमा', न 'रुद्र' और न ही शत्रु (लोग) उल्लङ्घन करते हैं, उस इस देव 'सविता' को कल्याणार्थ नमस्कारो के द्वारा पुकारता हूँ।

10. हम 'भग', 'घी' और 'पुरन्धि' को शक्तिशाली बनावे, नराशंस और 'ग्नास्पति' हमारी रक्षा करे, सुन्दर वस्तु के आगमन और धनो के सङ्ग्रह के सन्दर्भ मे (हम) 'सविता' के प्रिय हो सके।

11. हे सवित ! आकाश से, जलो से और पृथ्वी से तुम्हारे द्वारा प्रदत्त काम्य धन हमारे लिए आवे, स्तोताओं के लिए जो सुखकर हो, अतिप्रशसाकृत् तुम्हारे सम्बन्धी (मुझ) स्तोता के लिए (वह धन लाओ) ।

सूक्त-39

1. (हे अश्विनौ !) (अधोगामी) प्रस्तरो के समान (तुम) (हमारे शत्रुओ के विनाशरूप) प्रयोजन के लिए अवरोहण करो, वृक्ष के प्रति गिद्धो (या, लोभियो) के समान धन–धारक (यजमानो) (की प्रस्तुति) के प्रति शीघ्रता करो, स्तोत्रो को उच्चारित करने वाले (दो) ब्राह्मणो के समान यज्ञ मे (उपस्थित होओ), (तथा, भूमि मे) (राजकीय) सन्देशवाहको के समान, अनेक स्थानो मे (अभिनन्दित) (तुम) (आगमन) करो)।

2. प्रात काल गमनशील (तुम दोनो) (एक) रथ से सम्बद्ध (दो) वीरो के समान, (बकरो के) युगल के समान, शरीर के द्वारा सुशोभित होने वाली (दो) स्त्रियो के समान, (अथवा) पति–पत्नी के समान मनुष्यो (के मध्य) मे (पवित्र) कर्मो के जानकार(होते हुए) (यजमानो को) अभिलषित (प्रदान करने के लिए) साथ–साथ आगमन करो।

3. (अन्य देवो की अपेक्षा) प्रथम (तुम दोनो),सीग (के युगल) के समान, (अथवा) द्रुत (–गामी) (कदमो) के द्वारा भ्रमण करने वाले (दो) खुरो के समान, हमारी ओर आगमन करो,'चक्रवाक' (के युगल)– दिन के लिए तैयार रहने वाले–के समान,हे (हे (शत्रुओ के) विनाशक ! रथ से सम्बद्ध (योद्धाओ) के समान, (सभी वस्तुओ के सम्पादन के) योग्य (तुम दोनो) (हमारी उपस्थिति के) प्रति आगमन करो।

4. (दो) जलयानो के समान, (अथवा, कठिन स्थानो के पार) (रथ के) जुओ के समान, हमे (जीवन समुद्र के) पार पहुँचा दो, हमे आकाश के मध्यबिन्दु (='नाभि') के समान,(दो) (रथचक्रो के) अरो के समान, (अथवा) (रथचक्र के) दण्ड के समान (पार पहुँचा दो, (हमारे) व्यक्तियो के प्रति हिसा का निवारण करने वाले (दो) कुत्तो के समान होओ (तथा) स्खलन (या, पदभ्रश) के सहारे के समान (या, कवच के समान) हमारी रक्षा करो।

5. (दो) वायुओ के समान जरा के वशीभूत न होने वाले, (दो) नदियो के समान शीघ्रगामी (तथा) (दो) नेत्रों के समान तीक्ष्णदृष्टि (तुम दोनो) हमारे अभिमुख आगमन करो, (दो) हाथो के समान, (दो) पैरो के समान, (हमारे) शरीरो के कल्याण के प्रति वशवर्त्ती (तुम दोनो) उत्कृष्ट (धन) (की प्राप्ति) के प्रति हमारा नेतृत्व करो।

6. मधुर शब्दो को उच्चारित करने वाले (दो) ओष्ठो के समान, हमारे जीने के लिए (हमें) सम्पोषित करने वाले (दो) स्तनो के समान, (दो) नासिकाओ के समान, (तुम दोनो) हमारे व्यक्तियो की रक्षा करने वाले (तथा) हमारे प्रति सुखद (ध्वनियो) के श्रवण के लिए (दो) कानो के समान हो जाओ।

7. हे अश्विनौ ! (तुम दोनो) हमारे प्रति (दो) हाथो के समान शक्ति को सम्यक् प्रदान करने वाले (होओ), 'द्यु–लोक' तथा 'पृथिवी' के समान हमे वर्षा प्रदान करो, तुम्हारी कामना करने वाली इन स्तुतियो को, (तुम दोनो) सान(या, सिल्ली) के ऊपर तलवार (या, कुल्हाडी) के समान, सम्यक् तीक्ष्ण कर दो।

8. 'गृत्समद' (ऋषियो) ने (इस) स्तोत्र को (निर्मित) किया है, हे अश्विनौ ! ये स्तोत्र तुम्हारे प्रवर्धन के लिए (निमित्त–भूत) (है), (यज्ञो के प्रति) नेतृत्वशील ! (तुम दोनो) उनके द्वारा प्रसन्न होओ (तथा) (हमारे प्रति आगमन करो, शोभन पुत्रों से युक्त (हम) यज्ञ मे योग्य रीति से (तुम्हारी स्तुति) उच्चारित करे।

सूक्त-40

1. हे 'सोम' और 'पूषन' ! (तुम दोनो) धनो के उत्पादक, 'द्युलोक' के उत्पादक (तथा) 'पृथिवी' के उत्पादक (हो),(ज्यो ही तुम दोनो) उत्पन्न (हुए हो,) सम्पूर्ण प्राणिजात के सरक्षक (हो गये हो), देवो ने (तुम दोनो को) अमरता का केन्द्र (या, मूलस्रोत) (निर्मित) किया है।

2. (देवता) इन (दोनो) देवताओ को, (इनके) उत्पद्यमान होने पर, सेवित (या, प्रसन्न) करते है, ये (दोनो) अप्रिय (या, अरुचिकर) अन्धकारो को छिपा देते हैं, 'इन्द्र' इन दोनों—'सोम' तथा 'पूषा'— के द्वारा, अपरिपक्व (नवोत्पन्न) गायो या ,मेघो) मे परिपक्व (दूध) को उत्पादित करता है।

3. (कामनाओ के) वर्षक 'सोम' और 'पूषन् (हमारे प्रति) उस सात चक्रो वाले, (समस्त क्षेत्रो को) परिमित करने वाले, सम्पूर्ण (ससार) के प्रवर्त्तक, सर्वत्र विद्यमान पॉच लगामो द्वारा (नियन्त्रित) (तथा) मन के द्वारा सयोजित होने वाले रथ को त्वरायुक्त (या, प्रेरित) करे।

4. (उनमे से) एक ('पूषा') ने ऊपर 'द्युलोक' मे (अपना) निवास स्थान बनाया है, दूसरे ('सोम') ने 'पृथिवी' पर (तथा) 'अन्तरिक्ष' मे। वे दोनो हमारे प्रति अनेको के द्वारा अभिलषित (एव) अनेको के द्वारा प्रशसित (प्रचुर) (गोरूप) धन—सम्पत्ति, (जो) (आनन्दो का) मूलस्रोत (है), (उसे) हमारे लिए प्रवाहित कर दो।

5. (तुम मे से) एक ('सोम') ने सम्पूर्ण प्राणिजातो को उत्पन्न किया है, दूसरा विश्व की ओर सर्वत अवलोकन करते हुए अग्रसर होता है, हे 'सोम' और 'पूषन' ! (तुम दोनों) मेरे (पवित्र) (यज्ञीय) कर्म की रक्षा करो, तुम दोनों के द्वारा (हम) (अपने शत्रुओ की) सम्पूर्ण सेनाओ को जीत ले।

6. सम्पूर्ण (जगत्) का प्रवर्त्तक 'पूषा' (इस पवित्र) कर्म को प्रेरित करे, सम्पत्ति का स्वामी 'सोम' (हमे) सम्पदा प्रदान करे, प्रतिरोधरहित (या,शत्रुविहीन) देवी 'अदिति' हमारी रक्षा करे, शोभन पुत्रो से युक्त (हम) यज्ञ मे, योग्य रीति से, (तुम्हारी स्तुति) उच्चारित करे।

सूक्त-41

1. हे वायो । जो तुम्हारे 'नियुत्' (—अश्वो) से युक्त 'सहस्र' (—सख्यायुक्त) रथ (हैं), (उनके द्वारा तुम) सोमपान के लिए आगमन करो।

2. हे 'नियुत' (—अश्वो) से युक्त वायो । आगमन करो, यह तेजस्वी (रस) तुम्हारे द्वारा स्वीकार किया गया है, (क्योकि, तुम) अभिषव करने वाले (यजमान) के निवासस्थान की ओर गमन करने वाले हो।

3. हे (यज्ञो के) नेतृत्वशील (एव) 'नियुत्' (अश्वो) के स्वामी 'इन्द्र' तथा 'वायु' । (तुम दोनो) आगमन करो, (तथा,)गाय के दूध से मिश्रित (एव पवित्र ('सोम'—रस) का पान करो।

4. हे 'ऋत' के प्रवर्धक मित्रावरुणौं । यह 'सोम' तुम्हारे लिए अभिषुत (है), निश्चय ही, यहॉ पर मेरे आह्वान का श्रवण करो।

5. अधिपति (तथा) किसी के भी द्वारा दमन न किये जा सकने वाले ('मित्र' एव 'वरुण') सहस्र स्तम्भो से निर्मित सुदृढ (एव) श्रेष्ठ (या, रमणीय) सभा—भवन मे आसीन होते है।

6. सार्वभौम अधिपति, घृत, के द्वारा तृप्त (या,पोषित,) 'अदिति' के पुत्र (तथा) दानशीलता के स्वामी वे दोनों(मित्रावरुणौं') (अपने) निष्कपट (या, सच्चे) (यजमान) को अनुगृहीत करे।

7. हे अश्विनौ । (जिनमे) असत्य नहीं (है), हे रूद्रो । (यज्ञ के) नेतृत्वशीलो के द्वारा (जिस यज्ञ मे) पान किया जाना (है),(उस) के प्रति (प्रत्यक्ष) मार्ग से गमन करो,(जिसके लिए) (स्तोता यजमान) गायो (तथा) अश्वो (रूपी) (धन) को सुष्ठु(प्राप्त कर सके)।

8. हे वर्षक धन से युक्त । (तुम दोनो) (हमारे प्रति) (इस प्रकार के धनो का) सम्यग् वहन करो कि निन्दक मनुष्य —(हमारा) शत्रु —(चाहे)(वह) दूर चला जाये (अथवा) समीप, (इसे) तुरन्त (या,निरन्तर) (ग्रहण करने का) साहस न करे।

9 हे कृतसङ्कल्प अश्विनौ। वे तुम (तुम दोनो) हमारे प्रति नानारूप(या, बहुविध) (तथा) धनोत्पादक (या, स्वास्थ्य सम्पादक) धन का सम्यग् वहन करो।

10 'इन्द्र' (सम्पूर्ण) महान् तथा अभिभवकारी भय को, सचमुच, सर्वत नष्ट कर दे, निश्चय ही, वह दृढसङ्कल्प (तथा, सबका) विशेषेण द्रष्टा (है)।

11 और, (यदि) 'इन्द्र' हमें सुख प्रदान करें, (तो) हमे पीछे से (कोई भी) पाप प्राप्त नहीं करेगा, कल्याण हमारे सम्मुख होगा।

12. (सबका) विशेषण द्रष्टा (एव) (शत्रुओं का) विजेता ('इन्द्र'(हमारे प्रति) समग्र दिशाओं से भय राहित्य (प्रदान) करे।

13. समग्र देवताओ। (यहॉ) आगमन करो, मेरे इस आह्वान का श्रवण करो, इस कुशासन पर निःशेषेण आसीन होओ।

14. यह शुद्ध (या, अमिश्रित), मधुररसयुक्त (एवम) उत्कृष्ट आनन्दददायक पेय, 'शुनहोत्र' (ऋषियों) के द्वारा तुम्हारे लिये (तैयार किया गया है), इस अभिलषणीय (पेय) का पान करो।

15. मरुत्समूह, (जिसमे) 'इन्द्र' श्रेष्ठ (माना जाता है), देवता, (जिनमे) 'पूषा' दानशील (है), समग्र (तुम सब) मेरे आह्वान का श्रवण करो।

16. माताओ मे श्रेष्ठ, नदियो मे श्रेष्ठ, (एव) देवियों मे श्रेष्ठ हे सरस्वति । (हम) मानो प्रतिष्ठारहित हैं हे मातर् । (तुम) हमे प्रतिष्ठा (या श्रेष्ठता) (प्रदान) करो।

17. हे सरस्वति । देविभूता तुममें सम्पूर्ण अस्तित्व प्रकृतिस्थ (या आश्रित) (हैं) हे देवि । (तुम) 'शुनहोत्र' ऋषियों) (के) मध य) मे आनन्दित होओ, (तथा), हमे सन्तति प्रदान करो।

18. हे उपहारो से सुसम्पन्ना सरस्वती। (तुम) इन स्तोत्रों का सेवन करो, जिनको 'गृत्समद' (—ऋषि), हे (प्रभूत) जलयुक्ता । देवताओ मे प्रिय (—भूता) तुम्हारे प्रति मननीय (के रूप मे) अर्पित करते हैं।

19 .('द्युलोक' एव 'पृथिवी' –दोनो–, जो) यज्ञ के (समय) सौभाग्य (प्रदान) करते है,) (वेदिका की ओर) प्रकर्षेण गमन करे, निश्चय ही, (हम) तुम दोनो को (आगमनार्थ) सम्प्रार्थित करते है, और, (साथ ही,) हविष्यो के वहनकर्त्ता 'अग्नि' को (भी) (सम्प्रार्थित करते है)।

20. 'द्युलोक' (तथा) 'पृथिवी' स्वर्ग तक पहुँचने वाले (तथा) (स्वर्गविषयक) सिद्धिप्रद इस हमारे यज्ञ को देवो के प्रति अर्पित करे।

21. यज्ञार्ह (या, यजनीय)(तथा) द्रोहरहित देव आज यहॉ पर सोमपान के लिए तुम दोनो के समीप सम्यग् आसीन होवे।

सूक्त-42

1. भविष्यदर्थ को सूचित करते हुए, जैसे नाविक नाव को(उसी प्रकार,) पुन शब्द करता हुआ 'कपिञ्जल' वाक् को प्रेरित करता है।

हे शकुने! (तुम) सुन्दर कल्याणमय होओ, किसी भी दिशा मे तुझे पराजय न प्राप्त हो।

2. श्येन तुम्हारा वध न करे, न गरूड (और) ने इषु धारण करने वाला (इषु–) प्रक्षेपक वीर तुम्हारा वध करे। पितर्–सम्बद्ध (दक्षिण) दिशा मे पुन–पुन शब्द करते हुए कल्याणमय (तुम) यहॉ सुन्द्रर कल्याणमय शब्द करो।

3. हे शकुन्ते ! सुन्दरकल्याणमय (तुम) भद्रवाक् (होकर) गृहो के दक्षिण ओर शब्द करो, चोर हम पर शासन न करे, पापेच्छुक हिसक (हम पर) (शासन न करे)। (हम) सुन्दर पुत्रो से युक्त (होकर) यज्ञीय सभा मे अत्यधिक स्तोत्रोच्चारण करे।

सूक्त-43

1. पक्षियॉ समय–समय पर अन्न की सूचना देते हुए स्तोताओ की भॉति दक्षिण ओर से अति–स्तवन करे। जैसे सामगायनकर्त्ता 'गायत्र' और 'त्रैष्टुभ', (तथैव, सामकार 'गान ' और 'श्रौत'–)उभयविघ वाक् का उच्चारण करता है और सुशोभित होता है।

2. हे शकुने ! 'उद्गाता' की भॉति सामगान करते हो, 'ब्राह्मणाच्छसी' की भॉति सवनो मे स्तव करते हो, जैसे रेत सेचक अश्व शिशुमती अश्वा के पास जाता है, (उसी प्रकार) आकर हे शकुने ! हमारे सभी ओर भद्र का कथन करो, हे शकुने ! हमारे सभी ओर पुण्य का कथन करो।

3. हे शकुने ! समन्तात् शब्द करते हुए तुम भद्र का कथन करो,शान्त रह कर (भी) हमारे लिए शोभना मति का ज्ञापन करो। जब उडते हुए शब्द करते हो, 'कर्करि' (वाद्य यन्त्र) की तरह ('शब्द करते हो) । शोभन पुत्रो से युक्त (हम सब) यज्ञीय सभा में अत्यधि ाक स्तवन करे।

शब्दकोश

अ, अन–नञ् समास का पूर्व घटक, 'अभाव,सत्ता राहित्य,द्र०'न'।

अ–क्रिया रूपो मे भूतकालद्योतकाश।

अश– स० पु०, 'भागवितरक देवविशेष, भाग' अवे–अस्त्र।

अश्, अश्'प्राप्त करना'> अश, अश्नोति, अश्नुते=Attains.

अशु–स०पु०, सोमलता पिञ्जूल, सोमलता शाख–स्नूह, रश्मि, किरण, तन्तु, सोमरस। अवे० नॉम्यासुश्=नम्राशु, नाम्याशु।

अहस्–स न०,'पाप, कष्ट, हिसाभावना, विपत्ति, उद्विग्नता, सकीर्णता,√ 'अघ पापकरणे–'अस्', अघ् >अह् आग। तु०– आगस्, (अन्) अद्य, अद्य अहुर, अड्रो(मन्यु), अघो, अघोर, लै० Angustus, गा०–Aggvus, अहति=लै०–Ango, Anxiety, Anger , Angry.

अवे, अवे, आजह,अजह,आजो–बूज 'विपत्ति मुक्तिप्रद'

अहु– वि०पु०, 'सकीर्ण,विपत्तिग्रस्त'। तु अहस्।

अक्तु– स० पु०, 'व्यञ्जक, प्रकाश, दिवस, रश्मि, सूर्योदय के पूर्व रात्रि का अश, अन्धकार,√ 'अञ्जू कान्तौ'–'तु'।

अगोपा– वि०पु०, 'रक्षकरहित, रक्षकविहीन', गां पातीति >गुप्– क्विप्–गोपा,, नञ्।

अग्नि– स०पु०,'देवता विशेष, आग, अथर तु०–लै०–अनल Ignis,

लिथु०–UNGINS INGNIS.√ 'अञ्ज् कान्तौ'–

'इ' तु०– अनल, महा (अ) नस, अङ्गिरस्, अङ्गार, अङ्गारधानी, अगीठी।

अग्नित्– स०पु०, 'अग्नि को समिद्ध करने वाला पुरोहित, अग्नीध्र, अग्नि– √ 'इन्ध । ध् >द्>त्।

अग्रे– स०न०,, प्रारम्भ, उच्च बिन्दु, श्रेष्ठ, पुरस्, अज् √ 'अञ्ज्गतौ'–'र',तु०अ०–AGO, AGAIN,

अवे०–अग्र,अघ्र, अघ्रएरथ।

अग्रनीति– स० स्त्री, 'अग्रनयन, समुन्नति, उन्नयन, नेतृत्व,√ 'नी नयने'–'क्तिन्'।

अघ– स० न०, 'पाप, कष्ट, हिसेच्छा, बुराई, विशेष पापेच्छुक, पापरूप, बुरा, हिसक, द्र०–अहस्, तु०–अवे०–अक, अघ, अड्र, लै०–ANGO, आसै० ANGE, 'ANXIOUS' ज० - ENGE, ANGST (कष्ट), 'NARROW'√ अड्घ् ='विरुद्ध होना, विपरीत होना' >NEGATE, NO,NOT> अन्=,IM, UN, IN, अवे० अक कु–अवे० अक, अड्र =UGLY, AWKWARD, न, नहि,नतु, not, मा

अघशस– वि०पु०, पापभावना से हिसा करने वाला, पाप को कहने वाला'–(i) शस्, शस् 'कहना', (ii) हिंसा करना, तु०–'शस्त्र', नृशंस। शत् > शस् 'मारना', शत्–त्रु, यद्वा, शत्–रु ।

अङ्ग– स० पुं०, अग्नि के लिए सम्बोधन,√ 'अञ्जू कान्तौ'> अङ्ग, तु० अ० ANGEL,अपि च अग्नि, अङ्गार,अङ्गिरस्।

अङ्ग– स० न०, शरीरावयव,√ 'अञ्ज्गतौ। झुकना, मुडना,> अङ्गम्, तु०– अड्घ्रि।

अङ्गिरस्– स० पु०, कान्त, दूत, अग्निपूजक, अड्रोत्पन्न, ऋषि विशेष। √ 'अञ्ज् दीप्तौ' > अङ्ग–इरस्।

अङ्गिरस्वत्– वि०पु०, अङ्गिरसो से युक्त, अङिरस्+वतुप्। अङ्गिरस्वत्– अङ्गिरस् के समान।

अच्छ– नि०, प्रति, ओर, अ– प एक०>आत् अत्, अत्–श। अवे०–आत्–आअत्, अत् >अथ।

अच्छिद्यमाना वि०स्त्री०, अविच्छिन्न, सतत, निरन्तर। √ 'छिद्' कर्मणि शानच्–टाप्–नञ्, प्र० एक०।

अच्छिद्र वि०न०, छिद्ररहित, नीरन्ध्र, सघन, निरन्तर।√ 'छिद्'–'र' नञ् बहु०।

अच्युत– वि०पु०, अडिग, च्युतिरहित,स्थिर, दृढ,न–√ 'च्यु गतौ' –'त', श्च्यु> च्यु, प्रा०फा० अशियव (त)=अच्यवत्, आ–शु,–शु>

रघस् > √ 'च्यु गतौ' – 'त', शच्यु> चयु, प्रा० फा० अशियव (त)= अच्यवत, आ–शु> रघस्, शीघ्र, शव, तु० अ०– **Soon, Swift,**

अज– स०पु०,वि० √ जन्मरहित,अज एकपात्,न– √ 'जन् प्रादुर्भावे,√ 'अज्' अज–'गतिशील'। **(ii)** 'बकरा'> अजिन= अवे – अजएन

अज चर्मादि।

अजर– वि०पु०, जरारहित, युवा, अजीर्ण, न– √ 'जृ वयोहानौ'– 'अ', यद्वा, न जरा विद्यते ऽस्येति।

अजस्र– वि०पु०, सतत, निरन्तर, अविच्छिन्न, न–√ जस् 'विच्छिन्न होना'– र, तु० जसुरि–थकाऊ, गम् >गच्छ्–जस्, यद्वा, अज् गतौ, अस्–र।

अजुर्य– वि०पु०, अजर, जरारहित, अजीर्ण, युवन्, अ√ 'जृ वयोहानौ'–'य'।

अजुष्ट– वि०पु०, अप्रिय, असेवित, √ 'जुष् प्रीतिसेवनयो –'क्त', √ 'यु' तु०–अ०–**UNITE, JOIN, YOKE,** तु०–युवन्, योनि, √ 'यु', >√ 'युष्'–योषा, >जुष्–जुष्ट,जोष्टर् >दोस्त,√ 'चुष्' > चूचुकम्, चाटु।

अञ्जन्– वि० पु०, 'व्यक्त करता हुआ, व्यक्त होता हुआ',

वि–√ 'अञ्ज् दीप्तौ'–'शतृ'।

अञ्जान– वि०पु०,' व्यक्त होता हुआ, व्यक्त करता हुआ,'

√ 'अञ्ज्'–'शानच्'।

अञ्जि– स० स्त्री,'अलङ्करण, आभूषण', अञ्ज्–इ।

अत – नि०, 'इसलिए, यहाँ से', अ–त (तस् पञ्चम्यर्थ)।

अतमान– वि०पु०,'गतिशील, चलता हुआ',√ 'अत् सातत्यगमने' –शानच्–म् द्वि० एक०।

अतस– वि०न०, 'नीरस, शुष्क,' तु०–स० एधस्, अवे०√ अएध जलना–अएथ। द्र० अएथ्र–'इध्म'–अएथ्य–समित्पाणि शिष्य–अएथ्रय इति, आतर्= अथर, 'अग्नि', आचार्य।

अतसाय्य– वि०पु०,'जलाने वाला'।

अति– उप०,√ 'अत् गतौ'–'इ' अधिक, उस पार,आगे', अवे–अइति, लै०–**ATAVUS.**

अतिथि–वि०पु०, 'भ्रमणकारी, यात्री, आगन्तुक,' अत्–इथि, अवे० पयो अस्तिश्=प्रिय अतिथिः।

अतिथिग्व– स० पु०, 'गतिशील गायो वाला, ऋषिविशेष', ग्व–गु,तु०–पृषद्गु=अवे०–'पर्शत्–/'गु।

अत्क– सं०पु०, 'आभूषण, वस्त्राभूषण', अवे०–अत्क,अध्क।

अत्य– स० पु०,'गमनशील, गतिशील, तीव्र, क्षिप्र', √ 'अत् सातत्यगमने'–'य'।

अत्र–नि०,'यहाँ, इस स्थान पर', अवे०–अथ्रा, अथ्र, इथ्र > इधर।

अथ– नि०, 'इसके पश्चात्', तु०–अवे० आत् (प० ए०व०), आअत्, अत् >आदि, अथ।

अदाभ्य– वि०पुं०, 'अहिंस्य, **UNDECEIVABLE'** √ 'दभ् हिंसायाम् = अवे, अघओय, अधतार्यमाण,। हिंसायाम्' 'णिच्',तु०–अवे० अधलोमन्, 'अहिंसा, न छला जाना', दभ्=**DECEIVE.,**

अदिति– स० स्त्री, ईरान की दैत्या या दइति नदी–तत्सम्बद्ध भूभाग,> दैत्या=दैत्यातटवासी जन, अदिति–ईरान से भिन्न भारतभूमि, अ– √ 'धा' 'दा'–'ति' अवेस्ता–दाइति=दिति।

अदेव– वि०पु०, 'देवविरोधी, देवरहित',√ 'दिव् दीप्तौ', अवे०दएव='दुरात्मा'।

अदेवयन्त्–वि०पु०, 'देव की कामना न करता हुआ, देव–क्यच्–शतृ,नञ्, तु० अवे०–'अ–दएवयस्न' 'देवपूजक, दुरात्मापूजक'।

अद्भुत– वि०पु०, 'अतिभूत,अद्भुत, आश्चर्यजनक, सुन्दर, अच्छा रहस्यमय,' अवे०–'अब्द' अब्दतॅम=अद्भुततम'।

अद्य– नि०, 'आज', √ 'दिव् कान्तौ'> दिव.> द्यव्,स० एक०'द्यविद्यवि', दिव्–अस्> दिवस,–द्युस्, अन्येद्यु', द्यौस्, दिव> दिवा (तृ०एक०), दिवे दिवे, स–द्यस्=SAME DAY,अद्य=अस्मिन् द्यवि, तु० लै० HO& DIV,ध्रु >अधुना, अ=सूचक, सर्वनामाधार, ना =तृ ए व०।

अद्य– वि.पु.,'खाने योग्य' √ 'अद् भक्षणे'–'य'।

अद्रि– स० पु०, 'पाषाण, दृषद्, शिला, पर्वत, मेघ,' अद्–रि अर्काद्रि।

अद्रुह्,–वि पु., द्रोहरहित, दयालु, धोखारहित, सत्यभूत, मिथ्यारहित, प्रवञ्चनाविहीन। द्रुह् = अवे – द्रुज्।

अध – नि०,इसके बाद, तु अवे अध, गा. अवे –अदा।

अधर – वि पु 'निम्नवर्ती, निकृष्टभूत, तु लै – ENFERUS, अवे अधरि गा तथा अ UNDER अधस्–र।

अधि – उपसर्ग,'ऊपर, मे, पर', लै०–ad; अ०–ad; अ– √ धा–इ(कि) अधि।

अधीति – अधि √ इ–ति,'अध्ययन', √ 'इ गतौ अध्ययने वा'।

अधिवक्तर् – वि०पु०,'पक्षधरवक्तर्, सस्तुति करने वाला', >अ०–ADVOCATE, वच्, वक्ति = talks, वाच्=voice वाच्य =vocal.

अध्वर– स० पु०, घ्वृ > धूर्व्, ध्वर् हिसायाम्–अ,नञ्, बहु०।

अध्वर्यु– स० पु० 'पुरोहित, यजुर्वेदीय पुरोहित,' अध्वर्– यु (क्यच्–उ)।

अध्वरीय–अध्वर से नाम धातु'। अध्वरीयसि 'अध्वर्यु का काम करते हो, यज्ञ की कामना करते हो,' अध्वर् + क्यच् (नामधातु), लट्, म०पु०,ए०व०।

अध्वस्मन्–वि०पु०, ध्वस्मन्–DUST - धूलि, धूम, √ ध्वस्' 'मन्' –नञ्, 'धूलिरहित, अरेणु, निर्मल, स्वच्छ, शुद्ध'।

अध्वन्– स० पु०, मार्ग, पन्थन', √ 'अत् सातत्यगमने'–'वन्', अवे–अदवन्,अध्वन्।

अनस्– स० न०, शकट, रथकर्त >गर्त, लै०–ONUS, √ अञ्ज् गतौ'–'अस्'। तु०–अनस्–वह्> अनडुह् 'शकटवाही वृषभ'।

अनानुद्–वि०पु०,'बार–बार न देने वाला, एक ही बार मे पर्याप्त दे देने वाला,' अनु–पुन.–पुनः ददाति इति, अनुद., नञ् तत्पु०।।

अनप्नस्–वि०पु०, 'सम्पत्तिहीन, धनरहित, दरिद्र, कर्महीन,' √ 'अप्–आप् लम्भने' = to obtain, तु०लै० OPS, OPUS, अपस्–अप्नस् 'कर्म' सम्पत्ति, नञ् । अपस्य=लै०– OPERARI.

अनभिद्रुत–वि०पु०, द्रोह न करने वाले, द्रोहरहित, दयालु।

अनभिम्लातावर्ण–वि०पु०, जिसका रग फीका नहीं पडता, न कुम्हलाए स्वरूप वाला, √ म्ला–क्त, न अभिम्लातः वर्ण यस्य, बहु० स०।

अनभिशस्त– वि०पु०, अप्रशस्य, निन्दित, √ 'शस् प्रकथने'–'(त)' (अभि–,नञ्।

अन्र्वन्–वि०,अर्वन्–अहिसक, 'आक्रमण करने वाला', arm, army,-नञ्–अधृष्ट,अनाक्रान्त।

√ 'ऋ प्रहारे'> अर्–वन्, ऋ–प्रहारे तु०–समर,रण अरि, अरुष, अरुण = प्रा० फा०–हमरत, समृति, √ ऋष् तु०–ऋष्टि, √ अर्श–त, अर्शरोग √ रिष्, रूष्।

अनवद्य–वि०पु०, निष्कलङ्क०, अनिन्द्य, वद्–यत् वद्य, >नञ्–अवद्य, नञ्–अनवद्य।

अनवभ्रराधस्– वि०पुं०, अव+ √ भृ अवभ्र यद्वा अवभ्रष्ट समाप्ति अपहरणे, अनवभ्र=अनपह्रत, असमाप्त–राधस् धन वाला, टिकाऊ धन देने वाला, स्थिर धनप्रद, स्थिर धन।

अनवहवर– वि०पु०, कौटिल्यरहित, ऋजु, सरल, √ ध्वृ ह्वृ>–ह्वर्–ह्वल्–कौटिल्ये, ध्वृ, तु०—GLOVE] wheel WHIRL, GUILE> √ घूर्ण घूमना, √ हिण्ड्, तु०–वि– ह्वर >विहारः। –म–द्वि०एक० । √ जृ गतौ– ज्रयस्– दरिया, जलम्, √ गल्– गलित, निर्झर जल, ह्वृ> जिहम।

अनागस्–वि०पु०, 'निरपराध', न विद्यते आगो यस्य स. बहु० स०, द्र०–अंहस्, अजह्। अघ अहुर, अंहति, अवे०–आजह्, अजह्।

अनिध्म– वि० पु०, इध्मरहित, ईधनरहित, √ इन्ध्–म नञ् बहु०, √ इन्ध् = अवे०–'अएध्', इध्म= अएश्म।

अनिभृष्टतविषि– वि०पु०, 'उद्दीप्ततेजस्'।

अनिमिष् – वि०पु०, 'निर्निमेष, निमेषरहित, अपलक रूप से' नि –√ .'मिष् पक्ष्मविक्षेपे', √ 'मित' – meet > मिथ् > तु०– स० मिथुन – MATCH, मिथस् – MUTUAL, मिथ्या – MIS, √ मिष्, मिश्र्; > मिल्, म्लिष् म्लेच्छ।

अनिशित – वि०, 'अतीक्ष्ण' कुण्ठित √ 'शोतनूकरणे' – त > निशित, नञ्–।

अनीक –स० न०, 'मुख, मुखाग्रस्वरूप, अग्रभाग', तु०–अवे०– 'अइनिक', √ 'अन् प्राणने' ईक। तु० – पर्श्वनिक। यद्वा, अनु– √ 'अञ्च्, यद्वा अनु–असि।

अनु – उप० 'पश्चात्, साथ, अनुकूल, अनुसार'। प्रा० फा०– अनुव्। अवे०– अनमन– अनुम्नस्। आनुषरु = अवे० आनुश्हक्ष्।

अनून – वि० पु०, 'अन्यून, पृथुल, बहुल, पर्याप्त', – √ 'ऊन्' (कम होना) > ऊन = 'कम' = अं० – ONE; तु०– एकोनविशति > ऊन विशति, ऊन > ONE; नि–ऊन > न्यून > नून, नञ।

अनृक्षर – वि० पु०, 'निष्कण्टक', 'ऋ > ऋष् हिसायाम्' > ऋक्ष् > ऋक्ष–र, ऋष् > अर्श।

अनृत – स० न०, 'असत्य' ऋत् – अ० RIGHT, TRUTH, REAL;

√ ऋत = ऋज् 'सरल होना, सीधे चलना' > ऋज्त >

ऋत = RIGHT, RIGHTEOUSNESS. Rightousness.; Just. ऋत = अवे, अश, ॲरॅत, अर्श ॲरॅज, अर्शतात, ऋत्व्य = ॲरॅश्य, ॲरॅश्व, अज्ञुक्त > अरजाब्ध , ऋतजीव = ॲरॅजजी, इष्ठन्रूप – रश्नुरजिश्त।

अन्त – समाप्ति, अ० END लै० ANTE; गा० ANDO IN ANDO- VOARD. ॲरॅश्वचह् त्रित–ॲरॅत। अशवज्दहे, अशवन, अशश्रथ, अशवन्त् अशवस्तॅम,

अन्तर् – नि०, अन्त – समीप, तु० अन्तर 'निकटस्थ' > अन्तम = निकटतम; तु० गा० ANOTHER; लिथु०–ANTHRAS- द्वितीय, लै०– ALTER, INTERNAL, INTERIOR, ULTERIOR, ULTRA.

अन्तर् – नि०, 'भीतर, अन्दर' = INTER; कमर् 'कोमल होना, वर्तुल होना', अवे० – कमर्–धन् > मूर्धन् > मुण्ड, मण्ड > अण्ड, मध्य, अन्तर्, केन्द्र। कपाल, कपोल, कोयल, कर्पर, खर्खर, गोल, गण्ड, मृद्, शिप्रा इत्यादि।

अन्तरिक्ष – स० न०, अन्तर् > रि (स० एक०) √ 'क्षि निवासे' > अन्तरिक्षम्, यद्वा √ 'काश् कान्तौ' क्ष्, यद्वा कृन्त् > कृष् > क्ष ।

अन्ति – नि०, 'समीप मे' अ०– NEAR. NEIGHBOUR > अन्तिक; तु० – लै० – ANTI, BEFORE, ANTICUS, FORMER, ANCIENT; – त. – अन्तित

अन्धस् – स० न०, (i) अन्न, भोजन, खाद्य; √ अद् > अन्धस्, अद्मन्।

(ii) अन्धकार, √ वृ > वृन्धस् – अन्धस्, तु० वृन्ध > अन्ध = BLIND.

अन्नम् – स० न०, खाद्य, भक्ष्य, अन्धस् भोज्यम्, √ अद् – न > ('अद् भक्षणे' – क्त), √ अद् – तु० लि० EDMI; लै० EDO, अर्मे०– UTEM; – ष० स० एक०।

अन्यत् – सर्व० न०, 'दूसरा'।

अन्य – सर्व० पु०, 'अन्यत्' एकव०, अवे०– 'अइन्य' प्रा०फा०– अनिय; लै० – alius other; अन्या, यः म्, अन्येभिः – दूसरे द्वारा किया गया।

अन्यकृत – वि० पु०, दूसरे द्वारा किया गया।

अप् – सं० स्त्री०, जल, √ आप् = obtain; अवे० – आप > आब 'जल'। तु० – 'दरियाब, 'तालाब'।

अपरम्–क्रि वि बाद का, भविष्य मे'।

अपगोह – स० पु०, तिरोभाव, छिपना, छिपाव।

अपत्यसाच् – वि० पु०, 'सन्तानो से सयुक्त', 'अप–त्य' = सन्तान, पुत्र, तु० – आपत्य = अवे. – 'आश्व्य', अ० OFFSPRING; अपत्य – साच्।

अपधा – स० स्त्री०, 'निष्क्रमण, अनावरण, आवरणहीनता'।

अपि – नि (भी) बलसूचक निपात। अवे अइपि, प्रा० अपिय् गा IBI अपिडइत्य

अपरिवष्टि –वि०पु० 'अनावृत'।

अपरिवृत – वि०पु 'स्वतत्र मुक्त अनावृत'।

अपस् – वि०, कर्मनिष्ठ, निपुण, चतुर (ii) स०पु०, कर्मनिष्ठ, अपस्विन् > अपस् तु० – अवे, – अफ्न्श्वन्त् = कर्मनिष्ठ। लै० OPERS = 'कर्म' अवे – ह्रपह

अपभर्तर् – वि० पु०, 'अपहारक, विदूरक। दूरकर्तर् – अपहरणकृत'।

अपिऽजू–वि० स्त्री०, प्रेरयित्री, प्रेरिका, गतिशील करने वाली।

अपिऽवृत– वि०, 'ढॅका हुआ, आवृत, घिरा हुआ', √ 'वृ आवरणे' 'क्त'

अपीच्य–प्रच्छन्न, आवृत, गुप्त, रहस्यमय, अपि–√ 'अच्'। अ> इ, तु०–अनीक, अनूप, प्रतीक, प्रतीप, अभीक, द्वीप, तुरीय।

अप्ऽजित्– वि०पु०, 'जल को जीतने वाला',– √ 'जि जये' – 'क्विप्'।

अप्ऽतुर्–वि०, 'कर्मनिष्ठ', √ 'तृ' यद्वा 'त्वर्', जल को पार करने वाला।

अप्य– वि०, जलीय, जलयुक्त, जल मे रहने वाला, जलचर।

अप्रच्युत– अडिग, दृढ, स्थिर, अचल, च्युतिरहित,–√ 'च्यु गतौ'– त, श्च्यु >च्यु शु, तु० आशु, शीघ्र, शव।–तानि।

अप्रति– बहु० स०,अनुकरणीय,अप्रतिम, प्रतिकृतिविहीन, अतुलनीय, अनुपम (रूप से)।

अप्रमृष्य–वि०, अविस्मरणीय, न भूलने योग्य।

अप्रयुच्छन्– वि०पु०, 'प्रमाद न करता हुआ, सावधान, तत्पर',प्र– √ 'यु' √ युच्छ'– प्रमादे–शतृ, नञ्।

अप्रशस्त– वि०पु०, अप्रशसित, निन्द्य', √ 'शस् प्रकथने'– त, प्र–नञ्–ता।

अभयम्– वि०'भयरहित, निर्भय',√ 'भी भये'–'अच्', नञ्।

भी= अवे, वी, वय, भ्यस्=व्यह उद्विग्न, व्यग्र, विज,'व्यज गतौ, जिच्,> वीज, 'वीजनम्'।

अभीति–स स्त्री०, 'आक्रमण', √ 'ई गतौ'–'क्तिन्', ई अर्थदृष्ट्या, तु०– 'ऋ गतौ'।

अभि– 'चारो ओर', अभित about] अभितर>outer, बहिर् आसै०–YMBE ज०–outer, YMBE UM 'around'.

अभ्युप्य–'आवृतकर, ढॅककर', अभि– √ 'वप्' >उप् ल्यप्।

अभिक्षतृ– वि० पु०,'विभाजक, टुकडे करने वाला', छद्='छिद् छेदने'–'तृ'–तार.।

अभिख्याय–'देखकर', √ 'ख्या दर्शने'–'ल्यप्', 'काश् दर्शने> चकाश् चक्ष्> क्ष्, ख्या।

अभिगूर्य

अभिचक्षण – वि० पु०, 'दर्शक, निरीक्षक', √ 'चक्ष'–'शानच्'।

अभित.–नि० 'चारो ओर, सभी ओर', OUT,तु० अवे०–'अइ–बितर'> विदेशीय, देशीय >भीतर। अभितर अभितर बहिर, OUTER.

अभिदिप्सुः– वि०पुं०, 'हिसेच्छुक', √ 'दभ्–दम्भ् हिसायाम'–'सन्'=दिप्स्–उ।

अभिद्रुह–'असत्यभाषण, असत्यभाषणकृत्, मिथ्योक्तिकृत्',तु० अवे०–द्रुज्, द्रॅग्वन्त्> द्रवन्त्।

अभिनक्षन्–वि०पु०, 'सर्वत्र गमनशील', √ 'नश् व्याप्तौ'–'शतृ'।

अभिभङ्ग–'छिन्नभिन्नता', √ 'भज्' विभक्त होना, छिन्न–भिन्न होना।

अभिभुवे– तु०, 'अभिभव के लिए, दमन के लिए'।

अभिमृशे–तु०, 'स्पर्श के लिए, छूने के लिए'।

अभिष्टि–स० स्त्री०, 'सहायक', अभि–अस्ति यद्वा (इ)ष्टि। लोपार्थ, तु०–परि–ष्टि, स्व–स्ति(यद्वा– 'सु'), अप–स्ति, उप–स्ति।–ये।

अभिष्टिपा– वि०पुं०, 'सहायता द्वारा रक्षक', √ 'पा रक्षणे'– 'क्विप्'।

अभिस्वर–वि०पु०,'सर्वत शब्दायमान, सर्वत शब्द–युक्त',–√ 'स्वृ शब्दे' (CALL)।•

अभ्रि–वि०पु०, अप्–जल, अभ्र–जलधारक मेघ–अप्–र अभ्र। अवे० अब्र, तु०– अब्ज–दात।

अभ्वम्– आश्चर्यपूर्ण, अद्‌भुत।

अमत्र– स०, 'पात्रविशेष'। √ 'मा माने' (नापना) अम्, तु० –हिन्दी– 'अमाना'।

अमन्यमान– वि०पु०,'न मानता हुआ', √ 'मन् विचारणे'–'शानच्' नञ्–।–नान्।

अमर्त्य– वि०पु०, 'अमानव, देव, मानवेतर', √ 'मृङ् प्राण–त्यागे'–'यत्' नञ्। मर्त्य अवे,– मश्य,

अमा–स० गृह, घर, अ – √ 'मा मापने'> न मापा गया काल– वह काल जब चनद्रमास सूर्य से आवृत होता है, दर्श >एक गृह। द्र० अमात्य

अमाजू:– पितृगृह मे दीर्घकाल तक रहने वाली अविवाहिता कन्या, अमा –गृहम्, तृ० अमा–त्य, अमा–वास्या, अमा– √ 'जृ वयोहानौ'।

अमानुष– वि०पु०, 'अमानवीय', √ 'मन् विचारणे'–'उष्'> मानुष, नञ्–।

अमित्रा– वि०पु०,'शत्रु, विरोधी', मित्–र, मित्=,MEET, तु० MEETING, COMMITTEE, SUMMON, INMATE,मि मिथ्, तु०– मिथस् >मिथुया मिथ्या –मेथि, मथुरा, मिथिला। अवे०– मएथन, मएथ >मथ। मिश्र मिश्र MIX] MIXTURE,MINGLE, √ 'मिष्', तु०–निमेषोन्मेष,> मिल्।

अमित्रदम्भन– वि० पु०,'शत्रुहिसक', √ 'दभ्–दम्भ् हिसा–याम्'–'ल्युट्', म्।

अमीवा – स०पु०, 'रोग' √ 'अम् रोगे'–'ईव' समास मे अमीव। तु०अमीवचातेन, अमीवहन्।

अमक्त– वि०पु०, 'अहिसित'।

अमृत– वि०पु०, 'अमरणधर्मा, देव', √ 'मृङ्प्राणत्यागे'– 'क्त', नञ्–बहु। – स्य–ष० एक०,–तास:–प्र० बहु०,–तेषु–स०बहु०।= अवे अमॅश

अम्बा– स० स्त्री, 'माता', अम्बितरा– माताओ मे श्रेष्ठ, अम्बितमे।

अयज्यु– वि० पु०, 'अयाजक, अपूजक, यज्ञ विरोधी' √ 'यज् पूजायाम'– 'यु', नञ्–,–ज्वो:–ष० एक०।

अयतन्त्–वि०पु०, 'प्रयत्न न करते हुए', √ 'यत्'–प्रयत्ने–'शतृ'।

अरक्षस् 'अहिस्यभाव, ARM, ARMAMENT; √ ऋ प्रहारे,

समर, अरि, समृति, समरण = प्रा० फा० – 'हमरन'> रण,>ऋष्,–ऋष्टि √ रिष् √ रूष, √ रुक्ष, रक्षस, हिंसाभावे राक्षस।

प्रवे रसह्। अरण. वि पु गमनशील, विदेशीय गतिमान, √ ऋगतौ– 'ल्युट्' अवे. अडरूत। चुमक्कड, जगली, गैरपालतू।

अरति –वि०पु० व्यापक, गतिशील, दूत, √ 'ऋ गतौ' – 'क्तिन्', प्रथमा एक०।

अरपा .– वि०पु० 'निरपराध , √ रप् आघात करना' =रिफ, तु० रिफित, रेफ, रपस् आघात, अपराध, नञ्– बहु०।

अरम् – प्रसन्नता से शीघ्रता से, अच्छी तरह से। √ 'ऋञ्ज् प्रसाधने' अरम्, तु०आं०–ARRANGE. ORNAMENT.

क्रि० वि०, अवे० अरॅम्– मइति। अरॅम्–पिथ्वा।

अरकृत् – सेवक, अग्निसेवक, परिचारक'; √ 'कृ करणे'–'क्विप्'।

अरमति – स स्त्री०, 'पवित्र विचार', अरम्–मति., √ 'मन् विचारणे'–'क्तिन'।

अर्बुद – स पु, 'मेघ, अभ्र; √ 'आप् लभने'> आप, आप; अप> भृ = मेघ, अभ्र >अम्बु> अम्बुद> अर्बुद। अभ्भस्।

अर्वन्– स पु; 'अश्व, दौड का अश्व', √ 'ऋ गतौ' – अर् 'वन्'।

अर्वता–

अर्वाक्– 'इस ओर, हमारी ओर', √ 'ऋ'– अर् – व, अर्व – √ 'अञ्च् गतौ' – अर्वाक्।

अर्वाची –

अर्वाञ्च अर्व– 'अञ्च् गतौ'– अर्वाञ्च्– 'अबसे'– पु. प्र., द्वि.बहु.।

अर्शसानस्य –

अर्ह– अवे अरॅज्।

अर्हति, अर्हति, अर्हन्।

अवत – √ 'अव रक्षणे, अविष्टम्, अवतम्, अव्तम्, अवतु, अविड्ढि, अवन्ति अव., अवस। अवनी, अवस्पत।

अव– उपसर्ग, अवे अवर् अ **DOWNWARD,** नीचे दूर।

अवऽभिनत्, –असृजत्, – पद, अवरान् अवस्रस अवस्पर्त।

अवश– 'आकाश'।

अविऽउष्टा– वि० स्त्री०, 'अप्रकाशित', वि– √ 'वश् कान्तौ' उष्– 'क्त'– 'टाप्',–नञ्।

अविता – वि०पु० 'रक्षक', रक्षितृ, √ 'अव् रक्षणे' – 'तृच्'– अवितृ।

अवित्री – अवितृ – ङीप्।

अविभि स पु, 'भेडो के द्वारा'

अविश्वऽभिन्व – म्।

अवृक – वि०पु०, 'अहिसक', √ 'व्रश्च हिसायाम्' – वृक् – **BREAK;** रूज्; अवे. वॅह्रक, वृक – ग्री० LUKOS, लै०– LUPUS, लि०– **VILKAS,** फ०– **LOUPA-WOLF.**

अरिषण्यन् – वि०पु०, 'हिसा न करते हुए', ऋ> ऋष् >रिष्, रूष्, 'रिष्'– 'शतृ', नञ्–।

अरिषण्या।

अरिष्ट– म्– 'अहिसित', √ 'रिष्'– 'क्त', नञ्।

अरिष्टा–स स्त्री, 'अहिसा, √ 'रिष्'– 'क्तिन्', नञ्– म्।

अरिष्यन्त – वि०पु०, 'हिसा न करता हुआ', √ 'रिष्' 'शतृ' –नञ्। –न्त।

अरूण – वि०पु०, 'रक्त, अरूण, क्रान्त', √ 'वृच्' रूच् = अवे –

अउरूष्– अउरूनो = अरूण।

अरूष – वि०पु०, √ 'वृच्' रूच = अवे अउरूष >अउरुश् = अरूष।

अर्क– स पु, 'स्तुति, मन्त्र, सूक्त, पूज्य, सूर्य'; √ 'वृच्' ऋच् अर्च्> अर्क्, 'वृच्' से निष्पन्न; अ.–**BRIGHT, LIGHT, BRILLIANT.**

अर्चिन्– वि०पु० याजक स्तोतृ √ वृच्>ऋच् >अर्च> णिनि।

अर्चिष्–स नं; 'चिनगारी, चमक, चिराग', √ 'वृच्' ऋच् अर्च्– इष्।

अर्णस् –स पु, ' जलस्त्रोतस्', √ 'ऋ गतौ' अर् –णस्।

अर्णोवृत –वि०पु०, –'जलस्त्रोत को आवृत करने वाला' √ 'वृ आवरणे' 'क्त'।

अर्णवम्– स पु, 'समुद्र', अर्णस्– व, सलोप, वत् >व, तु०– केशव।

अर्णसति – स स्त्री., 'जलस्त्रोत की प्राप्ति' या विजय', – तौ, √ 'सन् संभक्तौ' – 'क्तिन'।

अर्थ– स.पु. गन्तव्य √ ऋ गतौ अर्–थ, त>थ >ट, पृक्थ >ऋक्थ >अर्थ धनम्।

अधर्म् –वि.; 'आधा', अ–ऋध्–अ अर्ध; अवे.–अरॅघ = **HALF.**

अवृजिन् – वि०पुं०, 'निष्पाप', √ 'ऋज् सरलगतौ'> 'विऋज् अनृजु गतौ >वृजिन 'निषिद्ध, वर्जित, हडताल'। – ना।

अव्यथ्य – वि०पु०, ' अनुद्विग्न' अव्यथित', √ 'व्यथ्' 'य'; नञ्–।

अशनि – स. स्त्री० 'वज्र, आयुध', √ 'अद् भक्षणे' – 'अनि'।

अशीति – सख्या वि, स्त्री, 'अस्सी' अष्टन् – दशति >अशीति = **EIGHTY;** अवे अशइति।

अश्मन –

अश्मन – स 'चट्टान, पाषाणयुक्त मेघ', √ 'अश् व्याप्तौ – 'मन', अद्रि, दृषद् शिला, >शैल, कैलाश, अवे.– अस्मन् 'आकाश' पाषाण',> असग, सन्ग,, तु पासन्ता ('तराजू मे रखने का छोटा बाट')

अश् – व्याप्तौ, अश्या अश्याम्, अश्यु, अशीय, अश्नवत्

अश्व स पु, – √ अश् व्याप्तौ – 'व', घोडा अवे –'अस्प', प्रा फा – 'असवार'। – वास, वान् अश्वी।

अश्वजित – वि पु, 'अश्व को जीतने वाला', अश्व – √ 'जि जये' – 'क्विप्'।

अश्वपेशस् – वि पु, 'अश्व सदृश स्वरूप वाला', √ 'पिश् अवयवे' – 'अस्' पेशस् = प्रवे, पएसह = Face

अश्वम्ऽइष्टे–

अश्ववत्–वि०, 'अश्वयुक्त, साश्व, अश्व सहित'। अवे–अस्पवन्त्।

अश्विन्–स०पु०, 'अश्वयुक्त, अश्वारोही देव' युग्मदेवतया द्वि व मे प्रयोग।

अषाढ्ह– स० पु०, 'अजित, ऋषि विशेष का नाम,' √ 'सह् अभिभवे' षाढ> नञ्–।

अष्ट्म–'आठवॉ, अष्टन्–EIGHT, म।

अष्टापदी– वि० स्त्री०, 'आठ पैरो वाली'– OCTOPED.

अष्ट– 'आठ', EIGHT, अवे०–'अश्त' अ०–OCT, OCTOPED, OCTOBER. तु. प्र ए व अष्टौ।

'अस्–क्षेपणे,'=फेकना, अस्यति=अवे०– 'अङ्हयेति'।

'अस्– भवि'=EXIST, अस्ति, अस्ति,असत्,अस्तु,असत्, असि, असि। अ०–IST,IS,AM,ARE.

असु– स पु०, 'प्राण, श्वास,' √ 'अस् भुवि'–'उ'=अवे०–अहु, 'अङ्हु' असुभिषक् =अवे अहुविश्।

असुर– सु०पु०वि०, 'प्राणवान्, सशक्त, व्यापक, ईश्वर' तु०'अवे, अहुर, 'अहुरमज्दा'।

असुर्य– स० न०, 'देवत्व, शक्ति, शक्तिमत्ता', असुर–यत्।

अस्त– वि०पु०, फेका गया, प्रक्षिप्त', √ 'अस् क्षेपणे–'क्त', अवे०– 'ह्वस्त''सुष्ठुप्रक्षिप्त।'

अस्तर्– वि०पु०, 'क्षेपक', √ 'अस् क्षेपणे'–'तृच्'।

अस्थित– √ 'स्था'–'क्त'> स्थित, नञ्–।

अस्नातर्– वि०पु०, 'स्नान न करने वाला, जल पार न कर सकने वाला', स्ना–शौचे–तृच्, नञ्–तृन्। अर्थदृष्ट्या, तु०–स्नातक, नदी स्नातक, निष्णात, नदीष्ण, पारगत, पारीण।

नदीष्ण, पारगत, पारीण।=अवे अस्नातर् सोमप्रक्षालनकर्ता ऋत्विक् विशेष'।

अस्मत्– सर्व० उ०पु०, अहम्, अस्मै, अस्मै, अस्मभ्यम्, अस्य, अस्य, अस्माकम्, अस्मै, अस्मत्, अस्मे,अस्याम्, अस्मात्, अस्माकभि, अस्मासु, अस्मिन्।

अस्मयु– वि०,'हमे चाहने वाला,'।

अस्वप्नज– वि०पु. 'स्वप्न म उत्पन्न नहीं हुआ', तु०–अवे०– 'अख्वफ्नो' SLEEPLESS.

अस्मेर– वि०पु०', वि०पु०, 'न मुस्कराता हुआ, गम्भीर', स्मि–र,नञ्–। 'स्मि'=SMILE> स्मि–र, नञ्–।

अह– ए०, बलसूचक निपात् 'ही', √ अस् >अह ।

अहर् (–न् स्)– सं० न०, 'दिन, दिवस' √ 'स्वृ'> अहर्, अवे०–'असन्' 'दिन' अजन्।

अहि– स०पुं०, 'पापेच्छुक, हिंसक, सर्प, सर्पाकार, जलावरोधक, मेघ, वृत्र,वल, मूलत. विदेशी शासक',

अवे०–'अजि', लै० ANGUIS, अवे०–अजिरुवॅर = 'अहि श्रृङ्गभर', अजि दहाक='अहि दसाक'।–सर्प, लै०–ANGUILLA-'EEL',

अवे०– गीटर– अजि='कष्ट पर विजय'।

अहिहन्– वि० पु०, सम्बो, 'अहिघ्न, अहिमारक', √ 'हन्''क्विप्'।

अहिहन–वि०पु०,'अहिमारक'।

अह्यर्षु– सं० पु०, EAGLE, श्येन, सर्प पर झपटने वाला, सर्पहिसक', अहि–√ 'ऋ' ऋष्> अर्ष– 'उ'।

अपरिविष्ट– वि०पु०, 'अनावृत'।

अपरिवृत – वि०पु०, 'स्वतन्त्र, मुक्त, अनावृत'।

आ

आक – आ–√ 'अञ्च्' आक, यद्वा √ अञ्च् –'घञ् के' समीप मे,

आगस्– 'अघ, अहस्, पाप, हिसा, निरपराध', √ 'अघ्पाप–करणे'– 'अस्', अघस्–आगस्,द्र०–अहस्,अघ=अवे–आज,अजोबूज 'पापमुक्तिप्रद

आगति–'आगम, वापसी, प्राप्ति, पुनरागमन', आ– √ 'गम्'–'क्तिन्'।

अग्नीध्र– स०पु०,'ऋत्विक, अग्नीध, अग्नित, अग्नीध्र, अग्नि समिन्धनकर्ता= ऋत्विक् से सम्बद्ध'।

अग्नि– √ 'इन्ध् दीप्तौ'–'र'।

आयजन्– वि०पु०, 'अच्छी तरह जीतता हुआ, जयशील, √ 'जि जये'–'शतृ'।

आत्– नि०, 'इसके अनन्तर',–अत् आअत्– आत्।

आतति–वि०पु०, 'विस्तारकृत्, विस्तारक, वितन्वन्कर्त्ता', आ–√ 'तन् विस्तारे–'इ',–नि।

आतस्थिवास्–वि०पु०,'स्थित, बैठा हुआ, आसीन', आ–√ स्था'– वस् (क्वसु)

आददि– वि० पु०,लेने वाला,' आ √ दद्–इ, यद्वा, √ दा 'कि':।

आदधर्षत्–वि०पु०,'पुन पुन प्रगल्भ होता हुआ, अति धृष्ट, अति प्रगल्भ'।

आदित्य– स० पु०,दिति– दइति, दइत्या, ईरान की पवित्र नदी 'दिति' है, भूमि 'दिति' है, दितिवासी 'दैत्य' है, तदितर भारतभूमि 'अदिति' है। अदिति पुत्र अदिति पुत्र 'आदित्य' है। सूर्य के द्वादश रूपो को 'आदित्य' संज्ञा दी गयी है।

आधृष्–स० स्त्री०, 'आपत्ति, आक्रमण',– √ 'धृष् प्रागल्भ्ये'–(DARE)-'क्विप्'।

आनुषक्– वि०,'निरन्तर, सतत, अविच्छिन्न, सघन',आ–अनु–√ 'सच् समवाये'–'क्विप्'। अवे–आनुशहक्ष्

आप्–स० स्त्री,'तल', √ 'आप् लम्भने'– 'क्विप्'–प।

आपि– स० पुं०, 'साथी, मित्र, सहायक, सख्य, परिचित',

आप्–लम्भने– इ, स०–आप्त्य, आप, फा०– आथा, तु०–आप्त, श्रेष्ठ।

अपान–स०न०, 'पीने वाला', BANQUET (अं०)।

आप्य– (i) स० न०, मित्रता, साहाय्य, सखित्व।

(ii) जलीय।

(iii) वि० प्राप्तत्य।

आभृतः– वि०पु०,'आनीत, लाया गया, आह्वत,सभृतः,'आह्वतः, सभृतः,

आहृतः, 'भृ भरणे' – 'क्त' 'भृ' BEAR, BRING - 'ह्व'।

आम – वि पु अपरिपक्व, कच्चा = 'RAW' स्त्रीलिग –

आमा – 'अम्' 'चोट करना, शक्तिशाली होना', तु०– आमय, आमयित्नु, आमाशय, अमीवा।

आयजिष्ठ –वि पु ' श्रेष्ठ याजक', यजि – इष्ठन्।

आयसी–वि० स्त्री०, लौहनिर्मिता', अवे० अयस् = अयस्क–लौह; अयर्–न = IRON; लौहायस् = ताम्र, लोहो;>आयस्,–ङीप्।

आयुध– सं.न, 'अस्त्र, शस्त्र', आ– √ 'युध्'–'क्विप्'।

vk;q(i) स.पु, 'जीवन', (ii) 'जीवित, कर्मनिष्ठ', (iii) 'जीवित प्राणी, मानव'; आ– √ 'इ गतौ'– 'उ' आयु'जीवनवर्ष जीवनकाल';

आयूय – 'सयुक्त करके', √ 'यु मिश्रणे' – 'ल्यप्'।

आयै– तु, 'आगमन के लिए', आ√ 'इ गतौ'।

आरित– वि पु 'प्राप्त कराया गया', आ– √ 'ऋ गतौ'– 'णिच्'–'क्त'।

आर– नि, 'समीप, निकट, दूर' ऋ> आर्–अ;तु –

आरात्।–रे पवे आर 'दूरी'?

आरोहन्त – वि पु, 'चढता हुआ, सूरज, आरूढ होता', √ वृध् > रूध् >रूह् (ऊँचा होना) ऊपर उठना, उगना।

आद्रति– वि पु, 'गीला', आ– 'ऋद्'> √ 'आर्द्र'– र; तु अवे अरॅदी।

आर्य – स पु, श्रेष्ठ, 'जातिविशेष', √ 'ऋ गतौ' अर्य >आर्य, तु – आर्यावर्त, आर्याणा व्यचस् >ईरान, आयर लैण्ड। = अवे अइर्य।

आवदन् – वि पु 'कहता हुआ', – √ 'वद्'– 'शतृ'।

आविष्– वि, 'प्रकट', आ– √ 'वृवरणे' अनावृत APPEAR, OPEN.; अवे. आका स्त्री 'स्पष्ट', प्रकट, स्पष्टता, आकाटय, आकास्त 'स्पष्टस्थिति, आविश् 'स्पष्ट प्रकट' आविश अह आविश्य–विशेषण,

आविशम्– तु० 'प्रवेश के लिए, प्रवेशार्थ, घुँसने के लिए', √ 'विश् प्रवेशे'।

आवृत –वि पु, 'ढँका हुआ, घिरा हुआ', √ 'वृ आवरणे' 'क्त'।

आशयान –वि पु 'पडा हुआ, लेटा हुआ', – √ 'शीङ् स्वप्ने'– 'शानच्'। –

आशा–स० स्त्री०, 'दिशा, अन्तरिक्ष कोण, क्षेत्र।

आशिष्ठा–वि.पु, 'तीव्रतम गति वाला' ,। √ 'आशु'– 'इष्ठन'। = अवे आसिश्त।

आशु – वि पु, 'शीघ्रगामी', श्च्यु च्यु> शु गतौ > शु, तु –

QUICK, SWIFT; शु–रघस् >शीघ्र। 'रघुपत्वन्, आशुपत्वन्'।

आशुहेमन् – वि पु; 'शीघ्रगामी, तीव्रगामी', √ 'हि गतौ'– 'मन'। मा।

आसद्य– 'बैठकर',– √ 'सद् अवसदने' – 'ल्यप'।

आस् स पु, 'मुख' √ 'अद् भक्षणे' अस् आ – अस– क्विप,= अवे ओड्हन्, ओडहन्

आस्य– स न० मुख 'द्र आस्।

आसिचम्– 'आर्द्र करने के लिए, सीचने के लिए √ सिञ्च् = अवे० हए च्, हिन्च्।

आसीन– वि.पु.; 'स्थित्, बैठा हुआ'; आ–√ 'षद् अवसादने' 'क्त'।

आसुति – स. स्त्री, 'सोमसवन', √ 'सुञ् अभिषवे' – 'क्तिन'।

आहनस्– वि पु, 'आहन्तव्य, कूटने योग्य', आ– √ 'हन्'– 'अस्'।

आहव – सं.पु 'युद्ध की ललकार', – म्, – √ 'ह्वे आह्वाने' 'अ'।

आहुत –वि पु, –'हवन किया गया', √ हु अग्निप्रक्षेप' – 'क्त' आह, आहु ।

आहुतिम्–स. स्त्री.; 'हवन प्रक्षेपण' होना, आ–√ 'हु'– 'क्तिन। = अवे, आजूति, 'हवन, पूजा,'।

इ

इळ – वि पु, 'यजनीय', √ 'यज् पूजायाम', इज्> इज्द् > इड् >इल, ळ ।

इळा – स स्त्री, 'यज्ञान्न, यज्ञान्नादिदेवता' √ 'अद्'– EAT, इष्> इट्, इज्द्> इड् >इळा, तु अद–खद्> सुधा।

इति – नि इदम्>इत्–इ, तु.– इत्था, इत्थम्।

इत्थ – नि, प्रकारवाचक, इदम्–थ>इत्थ, (द्वि एक, तु –तृ.एक इत्थम्)–था।

इत्थाधी –वि पु, 'इस प्रकार के विचार या बुद्धि वाला'।

इद्म– सर्व, 'यह'।

इद्ध – वि पु, 'समिद्व, प्रज्वलित, प्रदीप्त', √ 'इन्ध् दीप्तौ'– 'क्त'।

इनः 'धनी' शक्तिशाली'।

इन्दु – स पु 'सोम, सोमविन्दु, चन्द्रमा' √ 'उन्द् WET– >विन्दु >इन्दु, सोमरस>चन्द्रमा।

इन्द्र– √ 'इन्ध् 'र्' >इन्द्र, 'समिद्ध, दीप्त, देवविशेष'।

इन्द्रेषिता – वि स्त्री, 'इन्द्र द्वारा प्रेषित, इन्द्र द्वारा अभीष्ट', √ 'इष्'– 'क्त'– 'टाप्'।

इन्द्रज्येष्ठ–वि पु, 'इन्द्र जिसका ज्येष्ठ है, इन्द्र के नेतृत्व करने वाला', बहु समास।

इन्द्रवायू – स पु 'इन्द्र और वायु', द्वन्द समास। प्र. द्विव ।

इन्द्राबृहस्पती – 'इन्द्र और बृहस्पति', द्वन्द समास, प्र द्विव ।

इन्द्रासोमा – 'इन्द्र और सोम', द्वन्द समास, प्र द्विव ।

इन्द्राणी – स स्त्री, 'इन्द्र की पत्नी'।

इन्द्रियम्– स न, 'इन्द्र की शक्ति, इन्द्रिय– इन्द्री सम्बन्धी' √ 'इन्ध् दीप्तौ,' इन्धते, इन्धन्वभि ।

इन्धान – वि पु; ' समिद्ध होता हुआ, प्रज्वलित होता हुआ', √ 'इन्ध दीप्तौ' – श'ानच्' ।

'इन्व् गतौ'– इन्वति।

इदम्– सर्व – सकेतसूचक, प्र पु– इमम्, इमा., इमा, इमाम्, इमौ।

इयक्षन्तः– 'इ'गतौ'।

इयान–वि पु, 'जाता हुआ', √ 'इ गतौ'– 'शानच्'।

इष् – √ 'इष्' = अद्>इष्>इट् इड् >इडा>इला>'अन्न', तु.– इळली; पुरोडाश >डोसा।

इषयन्त्–'खोजता हुआ, चाहता हुआ', √ 'वश्'>इष्>'णिच्'–'शतृ'।

इषु – स.पु; बाण, तीर'; √ 'इष् गतौ' 'उ'; √ 'ऋष्' इष् इषु, यद्वा √ 'अस् क्षेपणे'> 'इष' 'उ' = अवे. – इशु।

इषुमान् – वि.पुं; 'बाणयुक्त'।

इषित – वि पु., 'इच्छित् अभीष्ट, चाहा गया', √ 'इष्' 'इच्छ्'– 'क्त'। वश् = WISH इष् इच्छ्।

इष्णन् –वि पुं, 'चाहता हुआ', 'इष' – 'शत्'। √ 'वश्'>इष्, इच्छ्>ईह्।

इषिर –वि.पुं., 'कर्मनिष्ठ, अपस्वी, ताजा, पोषक' – रा।

इष्टि – सं स्त्री; 'यज्ञ, पूजाविधान, कामना, इच्छा', √ 'यज पूजायाम्' 'इष'–'क्तिन्'

इह – नि; स्थानसूचक,; 'यहाँ, अवे. दूध अथ HERE इधर। 'इ'– सूचक सर्व० –'ध' (= स्थानवाचक) 'ह'।

ई

ईळान – वि पु, 'स्तुत होता हुआ, पूजित', √ 'यज्' 'ईज्' >इज्द् – 'शानच्'> इळान।

ईळित वि पु, 'पूजित, स्तुत' √ 'ईड्'– ''क्त'।

ईड्य – वि पु, 'पूज्य, स्तुत्य, यजनयोग्य, यागयोग्य यजनीय' √ 'ईड्'– 'य'।

ईम् – नि 'इसे, इसको'।

'ई गतौ' – ईमहे, ईयते, ईयसे, ईयु।

ईर् प्रेरणे – ईरयामि।

'ईश् ऐश्वर्ये – ईशे , ईशत , ईशिषे,

ईशान – वि पु, 'ईश्वर, स्वामित्व करता हुआ, स्वामी',

√ 'ईश् ऐश्वर्ये' – 'शानच्', तु –अवे –अएश = ईश 'स्वामिन्'।

ईशानकृत – वि 'शासनकर्तर्, आधिपत्यदातर्'।

'दीर्घायु'

आयुष्– स न, 'जीवनावधि', आ– √ 'इ गतौ' 'उष्'। दरगायु,

उ

उक्थ – स न, स्त्रोत्र √ 'वच् प्रकथने'> 'उक्'– 'थ'।

उक्थशसस् वि पु, ' स्तोत्रोच्चारक', √ 'शस्, शस्'– 'अस्'।

उक्थ्य – 'स्तोतव्य, स्तुत्य, प्रशस्य, स्तवयोग्य', √ 'वच्' उच्> उक्, उक्थ>–स्त्रोत्र, स्तुति' –य = उक्थ्य। उक्ष् सेचने – वृद्धौ'। उक्षन्ते।

उक्षन्– स पु 'सेचक, वृषभ, वलीवर्द', √ उक्ष्–अन्, तु – OX, OXEN.

उक्षित –वि पु, 'सिञ्चित, प्रवृद्ध', √ 'उक्ष् सेचने' – 'क्त'।

उक्षमाण – 'वर्धमान, प्रवृद्ध, सिञ्चित', √ उक्ष् 'सीचना, उगना, बढना' – शानच्।

उग्र – वि पु, 'बलयुक्त, शक्तिशाली', वज् >उज्– र, शक्तिशाली होना। तु.– वाजम्, ओजस्, वज्र, अवे – 'उग्र'।

उचथम् –स न, 'स्तोत्र, सूक्त, मन्त्र, स्तुति' 'वच्'>'उच्' 'अथ'। – था।

उच्चा – नि 'उच्चै, ऊँचा', उच्च – तृ ए व, अवे। 'उस्कात्'।

उद् – उपसर्ग, 'अपर, ऊर्ध्व', अवे –'उस्' 'उज्'। √ 'वृध् वृद्धौ'– ऊर्ध्व उद्, उत्।

उत्– असृज., उत्–आजत्, उत्–ईरते, उत्तम, उत्तर।

उत्तम – वि पु, 'श्रेष्ठ, वसिष्ठ, उच्चतम', उत्– तमप्।

उत् स्नाय– 'स्नान करके, पार करके'।

उत्–अञ्चम्–'उत्तर ओर'।

उत्– गातर्– स पु, 'स्तोतर्, ऋत्विक् विशेष', √ गै शब्दे'– 'तृच',– ता (इव) ।

उत्स – स पु, 'जलस्त्रोतस्', √ 'उन्द् क्लेदने' – WET (अ) – स >'उत्स', तु –उदन् >उद> उदक , उदन्या।

उद्रि – वि पु, 'जलयुक्त', उद्र = जल, उदन् 'जल', –इनि >उद्रिण ·।

उत – नि, समुच्चयार्थीय निपात, √ 'वृध्'> उध >उद उत, ज UND; अ – AND.

उनप 'समीप, पासस में', √ 'पृच् सम्पर्के' >उप, अ –√ 'पृच्'> अप, अवे.– 'अपे' (स ए.व) = AWAY.

उप – अयन – स न, 'समीपागमन, प्राप्ति', √ 'अय् गतौ'– 'ल्युट्'।

उपमश्रवस्तम – वि पु, 'सर्वाधिक उपमायोग्य, धनकीर्त्तिवाला', उप–√ 'माङ् माने' उपमा, √ 'श्रु'– 'अस्' श्रवस् 'कीर्त्ति, यशस्', बहु समा,– तमप्।

उपयन्त्– वि पु, 'समीप जाता हुआ', √ 'इ गतौ'– 'शतृ'।

उपर – उप 'समीप' – र 'समीपतर', तु –तर >र।

उपसद्– 'सभा', उप– √ 'सद् अवसादने'– 'क्विप्'; सद् Sit; सदस् = Seat.

उपसद्य – वि पु, 'समीप बैठने योग्य' – √ 'सद्' = Sit; – 'य'।

सृजन्ति – 'सृजन करते है।

स्तिरे – 'आस्तरण किया'।

उपस्तुते – 'स्तवन करते है'।

उपस्थ – स पु, 'समीप, अङ्क' √ 'स्था' – 'क'। म्'।

उपरि – नि, 'ऊपर, घर', √ वृप् 'ऊँचा होना'– OVER, UP, UPON, ABOVE, LIFT; अवे– 'उपाइरि'।

उरू – वि पु, 'महान्, विशाल, प्रभूत, पृथु, बहुल', √ 'वृ आवरणे' – 'उ', यद्वा √ वृध्> वृ> उरू। अवे. वोउरुकवोउरुचशानि= उरुचक्षस्=सर्वद्रष्टर्, सर्वसाक्षिन्।

उरूशस – वि पु, (1) अति स्तुत (11) अति स्तोता। शस = अवे० सङ्ह, सङ्घ।

√ 'उरूष्य्– रक्षणे' उरूष्यति।

उर्वराजित् – वि पु, 'भूमिजयन् उर्वरा', अवे– वॅरॅध् >उरूघ्, उरूथ्, उरूथत् >उर्वरा। √ 'जि जये'– 'क्विप्', उरूथत्> तरू,> उरूथर उदर।

उर्वी स स्त्री, √ 'वृ आवरणे'> उर् – उ = उरू – ङीप्।

उर्विया – क्रि वि, ' विस्तार के साथ'।

उशन् – वि पु, 'चाहता हुआ, कामना करता हुआ', √ 'वश् कान्तौ' – 'शतृ'।

उशिव्–सपु०, 'कामनायुक्त, उत्सुक, उत्साही, उत्साही ऋषिविशेष', √ 'वश् कान्तौ'> उश्–इक्, अवे०–उसिक् 'दुरात्माविशेष'।

उषस्– स स्त्री०, 'प्रातर्, प्रातः कालीन सूर्योदय–ज्योतिष्, प्रकाशाधिष्ठात्री देवी', √ वस् >उष् कान्तौ–अस्, अवे०–उसह्।

उषासानक्ता–स० स्त्री० द्वि० बहु०,'उषा और रात्रि', √ 'अञ्ज्' नक्, नक्ता=NIGHT.

उष्णन्–वि०पु०,'जलाता हुआ, तप्त करता हुआ,' √ 'उष्'–न 'शतृ'।

उस्रा–स० स्त्री०, 'प्रकाशयुक्त, प्रकाशिका, कान्ति,गौ', √ 'वस्' उस्–र–टाप्। यद्वा,√ 'वह'> 'उस्', तु०–वह् उष्ट्र। स इव।

उस्रिया– स० स्त्री, 'गौ, गाय', √ 'वस् कान्तौ' उस्रा, उस्रिया। यद्वा वह् उस्।

उह्यमान– वि०पु०, 'ले जाया जाता हुआ, ढोया जाता हुआ,' √ 'वह प्रापणे'> 'उह्'– कर्मणि 'शानच्'।

ऊ

ऊर्क्– स० स्त्री०, 'कान्ति, ऊष्मा, ताप, ऊर्जा, √ 'वृच् कान्तौ' चमकना, द्र०–वर्चस् वृक्त=अ०–BRIGHT, अपि च, तु० ऊर्जस् ऊर्जा।

ऊर्जयन्–'कान्तिमान् बनाता हुआ', 'ऊर्क' यद्वा 'ऊर्जस–क्यच–'शतृ'। 'ऊर्जस्, ऊर्जा।

ऊर्जयन्ती–स्त्री०,द्र०–ऊर्जयन्।

ऊर्ण–स पु०, 'ऊन, रोम, रोमनिर्मित वस्त्र,' √ 'वृ आवरणे' >ऊर्–न, तु०–वृ> रोमन्, लोमन्, ऊण=अं०– WOOL, गा०–ULLA, लै०–VELLUS.

ऊर्णुत–

ऊर्णुते–

ऊर्दर– स० पु०, 'धान्यविशेष', ऊर्ध्व– धृ >ऊर्दर,–म्।

ऊर्ध्व– वि० पु०, 'ऊँचा,' √ 'वृध् वृद्धौ'> अर्ध्–व,–व ।

लै०–urdu-us 'ऊँचा'।

ऊर्मि– वि० स्त्री, 'लहर', √ 'वृत्' यद्वा, √ 'वृ आवरणे'>

ऊर्– मि, प्रत्ययार्थ तु०– भू–मि।

ऊर्व– वि०पु०, 'महान्, उच्च्', √ 'वृ आवरणे'> वर्, तु०–'वृ' उर्– उ, यद्वा 'वृध्'– वृ ऊर्व– उरु, वान्।

ऋ

'ऋ गतौ प्रेरणे', इयर्ति, णिच्– अर्पय।

ऋक्–स० स्त्री०, 'वृच् कान्तौ', तु०–BRIGHT > BRILLIANT,> ऋच्> अर्च् >रच्, 'अग्नि प्रज्वलित करना, पूजा करना' ।–चा, ग्भि ।

ऋधाय– (ऋध–नधातु) 'क्रोधे'।

ऋधायन्– वि०पु०, 'क्रोध करता हुआ', ऋधाय्–शतृ, –त ।

ऋजु– वि०पु०, 'सरल, सरलगति, सीधा', अ० RIGHT, UP-RIGHT , ऋज्–उ=ऋजु। तु०–अवे० ॲरॅज्क,ऋज्> राज्, राजि > रज् 'सरल, विरल। जु । जवे।

ऋजिष्य– 'तीव्र गति, क्षिप्र, आशु' ।–स ।

ऋजीषिन्–वि०पु०, 'ऋजुगामी, तीव्रगतिक, आगे वढता हुआ', √ 'ऋज् सरलगतौ' –ण ।

'ऋञ्ज् प्रसाधने',तु०–सं०– अलम् (कार), अ०– ORNAMENT, ARRANGE.

ऋञ्जते–लट्, आत्म०, प्र०पु०, एक०, निघात।

ऋणम्–स०न०, 'कमी, कर्ज, निर्वलता, अधराधी, अपराधी, उपकार',=अ०– LOAN.

ऋणचित्– वि०पु०, 'न्यूनता को जानने वाला, ऋणसग्रह–कर्तर्', √ 'चित् ज्ञाने'–क्विप्', यद्वा √ 'चि'– 'क्विप्'।

ऋणया–वि०पु०,'दोषो पर आक्रमण करने वाला', √ 'या प्रापणे'– 'क्विप्',–या ।

ऋत– स० न०, 'प्राकृतिक नियम, जलीय नियम, याज्ञिक नियम, चारित्रिक नियम, सत्य, सरलता, ऋजुता',√ 'ऋज् सरलगतौ'–'क्त' ऋज्त, यद्वा, √ 'ऋ गतौ'–'क्त', TRUE, TRUTH, RIGHT, RIGHTEOUS.

ऋतज्य– वि०पु०, ' ऋतरूप प्रत्यञ्चा वाला', √ ज्या 'बडा होना,, तु०– ज्यायान्, ज्येष्ठ, त्रिज्या, ज्यामिति।

ऋतप्रजात–वि०पु० (सम्बो०), 'ऋतोत्पन्न, स्वभाव से सरल, प्रकृत्या सरलगति', √ जन् प्रादुर्भावे'–'क्त'।

ऋतया– वि० प्रं०,'ऋतगामी', √ 'या प्रापणे'– 'क्विप्', (क्रि० वि०–'ऋजु रूप से')

ऋतायन्– वि०पु०, 'ऋत की कामना करता हुआ', 'ऋत'– 'क्यच्'– 'शतृ'।

ऋताव– वा– 'ऋतयुक्त, ऋतानुगामी, सत्यरत, ऋतावान्'– प्र० एक०।

ऋतावरी– ऋतावान्– ङीप् > ऋतावरी।

ऋतावनि–'ऋतप्रापक, सत्यभूत', ऋत्– √ 'वन् संभक्तौ, 'इ'।

ऋतु– स०पु०, 'कालविभाग वर्षादि', √ ऋ गतौ'–'तु'। तु, तून, ना, भि.।

ऋतुथा– 'ऋतु के समय, ऋतु के अनुसार', ऋतु–'था' (प्रकारवचने), तु० यथा, तथा।

ऋते– नि०, 'बिना', √ 'ऋ गतौ'–'क्त', स०एक०, विभक्ति– रूपक निपात।

ऋध्–ऋध्याम्।

ऋभु– वि०पु०, 'हुनरयुक्त, कर्मनिष्ठ, कलाविद्, ऋषि विशेष'।

ऋभुक्ष–'ऋषिविशेष, ऋभुओ की सज्ञा, मरुत् और इन्द्र आदि का विरुद'।

ऋष्टि–स०स्त्री, 'भाला, आयुध', √ 'ऋ गतौ प्रहारे', तु०–समर, समृति, समरण–रण,अ०–ARM, ARMAMENT, ARMY, ARMOUR, √ 'ऋष्'–'क्तिन्' ।–'रिष्'।

ऋष्व– वि० पु०, 'ऊँचा', √ 'वृध्', 'ऋष्' (ऊँचा होना,) बढना), अवे०–'वरॅश्नु'–'शिखर', वर्षिष्ठ ='उच्चतम', ऋष्व='ऊँचा'।

ए

एक–स०, अवे०– अएव=स०–एव, प्रा०फा०अइव,पह्ल०–अइवक, >आ०फा०–यक् एव–क>एक,तु०–एक्क>एवक् >केवल।

एकपात्–स पु० (विशे०), 'एक पैर वाला, अज एकपात देव–विशेष', पाद >पात् समासान्त 'अ' लोप,–पद्–पत्, तु०–एकपदी।

एतत्– सर्व०, 'यह'। एनम्, एतम्, एना, एता, एते।

एतश–स०प्र०, 'आशु, क्षिप्र, अश्व, सूर्य का मुख्याश्व', अत> एत–श 'गतिशील' यद्वा √ 'इ गतौ> ए– त–श।

एतो – 'जाने के लिए', √ 'इ गतौ'– 'तोसुन्'। यद्वा इ– 'तु' प० ए० व०।

'एध् वृद्धौ'–एधते।

एनस्–स०न०, 'अपराध, पाप, हिसाभाव, त्रुटि, √ 'इ गतौ'>इन्व्>एन् –अस, अवे०– अएनह्।

एव–'इस प्रकार', एतद्–वत् एव,>इदम्–वत्> एव। तु०– 'एवा'– तृ० एक० एवम्–द्वि०ए०व०।

एवयावन्–वि०पु०,'तीव्रगामिन्, आशुक्षिप्र, इच्छानुरुप–गमनकर्तर्, स्वेच्छागामिन' इस प्रकार गतिवाला, एकसमानगतिक,

एष–वि०पु०,'कर्मनिष्ठ, प्रेरक'।

एषः–सर्व०,'यह'।

ओ

सम्बोधनपरक निपात, उकारान्त प्रातिपदिक की सम्बो० एक० की विभक्ति का प्रयोग, तु०—लै०—योस्।

ओकस्– स० न०,'निवास, घर, अभीष्ट स्थान, गृह',√ उच् समवाये'–'अस्'।

ओजस्–स० न, 'शक्ति, बल, सामर्थ्य, पौरुष', √ 'वज् गतौ शब्दौ च' 'उज्'– 'अस्', तु०–उग्र, वाजम्, वज्र, अवे०–अओजह्, अओजडह्। अओगर्, तुल अआज्यह, सुपर अयोजिश्त ओजस्वत्= अओजह्वन्त्।

ओजन्यमान्– वि०पु०, 'शक्ति प्रदर्शन करता हुआ', 'ओजस्' –'क्यङ्',–'ओजाय'– 'शानच्'।– म्।

ओजीयस्– वि०पु०, 'अपेक्षाकृत ओजस्वी, ओजस्वितर', 'ओजस्विन्'–'ईयसुन्' ।य.।

ओषधि– स० स्त्री०,'वनस्पति, वृक्ष, लतागुल्मादि', √ 'उष् दाहे'–'घञ्' >'ओष पाक– 'धा'–'कि'।

ओष्ठ– स० पु०, अवे– अओश्त्र–ओश्त्र>ओष्ठ। 'वच्' वोच्>अशोच्> अओश्> अओश्त्र> ओश्त्र >ओष्ठ 'बोलने का अवयव'। यद्वा 'ऊह् ओहते' से निष्पन्न।

औ

और्णवाभ – वि० पु०, 'ऊर्णवाभ–पुत्र', √ 'वृञ् आवरणे' ऊर्–ण 'ऊन', तन्तु, तु०– उरणा 'भेड', ऊर्णनाभि नाभ् > वाभ–।

क

क –किम्, कम्, का। 'किम्' शब्द (सर्वनाम) का रूप।

ककुह्–'शिखर, उच्च बिन्दु', 'कुप्– कुभ्–उभरना–ऊँचा होना'> ककुप्–PEAK,तु०–ककुद् >डाल, अवे०–कओफ> कूह।

कत्–

कन्द् कन्दने धातु।

कनिक्रदत्–

कनी– स० स्त्री०, 'कन्या', अवे०– कइनी, कइन्या, कइनीन्, कनीनाम्।

करण–'कर्म, कर्मसाधन, कृत्य, कार्य',–करणानि।

कर्करि–स०पु०,'एक पक्षिविशेष',–रि ।

कर्ण– स० पु०, 'कान, श्रवण, श्रोत्रम्'। √ 'श्रु श्रवणे'>शर् कर् –ण। √ 'श्रु'= HEAR>EAR.

कर्णयोनि–वि०पु०, 'कर्ण स्थान तक ताना गया'।

कर्त्तवे–तु०, 'करने के लिए'।

कर्तात्–कर्त्वो।

कर्त्वम्–स०न०, 'कर्म, कार्य, कृत्य'।

कर्म–स०न०, 'कार्यम्' √ 'कृ करणे' –'मन्'।

कल्मलीकिन्– वि०, आभामय, कान्तिपूर्ण', कल्मल्–ईकन्, इभि ।

कृल्–मलम्–कान्ति, √ 'कृत् छेदने' कृत्त । नम्–द्वि० एक०।

कवि– वि०पु०,'क्रान्तप्रज्ञ, मेधिर, प्राज्ञ, रचनाकार'। काम– सं०पु०, 'इच्छा, विचार, कामना', √ 'कम् कान्तौ'– 'धज्'। म् , मम्।

कामिन्– वि०पु०, 'कामनायुक्त', काम–'इनि ।

काम्य–वि०, 'अभीष्ट, चाहा गया, कमनीय', √ 'कम् कान्तौ'–'यत्'।

कारू– स०पु० 'रचनाकार, स्तोता', √ 'स्वृ शब्दे'> कारू। तु०–'स्वृ'–CALL,'स्वृ' 'सजाना' decorate, स्वृ कृ, तु०–
√ 'स्वृ निगरणे'SWALLOW 'कवल'।

काव्यम्–स० न०, 'कविकर्म, कविता, स्तोत्र, बुद्धिपूर्ण विचार, संरचना'।

कितव–स०पु०,'द्यूतकार, जुआरी', कृतवन्त् >कितव,
√ 'कित् संज्ञाने'– कियति।

किरि– स०पु०,'रचनाकार, स्तोतर', √ 'कृ' यद्वा √ 'गृ शब्दे'
'इ', यद्वा √ 'स्वृ शब्दे'– 'इ' । तु० 'कारू', स्वृ>
स्वन् >कृण्> कष्ठ।

कुक्षि– सं० कृन्त्– कष्, कुश कुक्ष्–इ, अवे०–कुशि।

तु–कशा,कष्टि, कष्ट, निकष कूलकषा, शाण,

कक्ष्या– कसना, तु० कक्ष्– अवे० कश्,, > कोश,

कोष,> कौषेय वस्त्र।

कुत–कु=क्व–तस्,तु०–'कुह' (कु–ह)।

`कुत्स–स्य–साय।

कुमार– स०पु०, 'बालक', कम्र >कुमार, कोमल, कमर्–झुकना,

वर्तुल होना, कमर्धन् >मूर्धन। मुण्ड, मण्डल,

अण्ड, कमर्थ, कमठ, कूर्म, कपर्द, कपाल, कर्पर,

खर्पर, कपोल, केन्द्र , मध्य।

कुवय– स०,पु०, 'एक व्यक्ति विशेष',– वम्।

√ 'कृ करणे'– करत, करत, करति,क (इति क),

करिष्यत्, कृधि, कृधि, कृष्व, चकार, चकृम्,चक्रिया, चक्रिरे, चक्रे।

√ 'कृ' >'कृण्' (स्वादि)–कृणवाम्, कृणुतात्, कृणुताम्, कृणुष्व, कृण्वते।

कृण्वन्त्–वि०पु०,'करता हुआ', √ 'कृ करणे'– 'शतृ'–न्तम्, द्वि० एक०।

कृत– वि० पु०, 'किया गया', √ 'कृ'+'क्त'।

कृतब्रह्मा– वि० पु०, 'ब्रह्मन् पुरोहित का वरण करने वाला'।

कृत्नु– वि० पु०,'कर्मकृत्, कर्तर, कर्म करने वाला', √ 'कृ'–'त्नु'।

कृत्रिम–'रचित,,अस्वाभाविक', √ 'कृ'–'त्रिम'।

कृश– वि०पु०,'तनु, दुर्बल, पतला, क्षीण,' √ 'कृष्' 'क्लिश'>'कृश्' 'अ'।

कम् 'कान्तौ'–

चाकनाम–

कृष्टि– स०पु०, 'प्रजा, चर्षणि,' √ 'कृष् विलेखने'– 'क्तिन्'। =कृष्टि> FIELD, कृर्षहित–till.

कृष्णाध्वा– अन्धकारपूर्ण मार्गवाचा', अध्वन्– √ 'अत्

सातत्यगमने'–वन्, अवे० अइन्। कृष्व कृष्ण>

=BLACKनील, >कृष्व BLUE

कृष्णयोनि–वि०पु०, 'कृष्ण मूल वाला'।–'नी।

केत – स०पु०, 'इच्छा, विचार, कामना'।

केतु – स०पु०, 'पताका, प्रज्ञापक, सूचक,' √ 'चित्–कित् प्रज्ञाने'–'उ',–त्।

कोश – स०पु०, घट, कलश, निधि, कृन्त> कष् >अवे० कश ='कक्ष–कच्छ–कुक्षि कुपित, कोआश–कोश।

क्रतु – स० पु०, 'संकल्प, सक्रियता, बृद्धि, प्रज्ञा, कर्म, यज्ञ–कर्म', 'कृ'>क्र–'तु' तु०–अवे– ख्तु, INTELLECT SOCRETESE

सुक्रतु।

क्रतुमत्–वि०पु०, 'बुद्धिमान',–विद्। प्राज्ञ, प्रज्ञावान, कर्मनिष्ठ, शक्तिमान्'–विद्।

√ क्रन्द– क्रन्दस्–स० स्त्री०, 'शब्द करती हुई', द्वि व० मे पृथ्वी एव द्यौस् का वाचक, √ क्रन्द्अस्–सी।

क्व– नि०, 'कहाँ',कुह।

√ 'क्रम् पादविक्षेपे'–चक्रमन्त, चक्रमन्त। प्रक्रम=PROGRAMME.,क्रम climb mount

√ 'क्रुध् कोपे'– चुक्रुधाम।

क्षप् – स स्त्री, 'रात्रि, क्षपा, रजनी, तमिस्त्रा', अवे – क्षपर्>शब।

'क्षम् सहने' – क्षमध्वम्, क्षमध्वम्।

क्षम्य – वि पु, 'क्ष्मा सम्बद्ध, पृथिवी–स्थानीय, पृथ्वी से सम्बन्ध, पार्थिव'

'क्षय' – स पु, गृहम्, घर' √ 'क्षि निवासे'– 'अ' √ 'क्षि शासने' 'क्षय'– शासन, सत्ता।

क्षरन् – वि पु; 'प्रवाहित करती हुई', √ 'क्षृ' क्षर – √ 'क्षृ प्रवाहे' 'शतृ' क्षर् झर्, तु– निर्झर –'झरना'।

क्षा – स स्त्री, 'पृथ्वी, भूमि,' √ 'क्षि निवासे' – यद्वा– √ 'कृष् विलेखने', यद्वा 'क्षम् सहने' – क्षा।

क्षाम – 'क्षीण, शुष्क, दुर्बल'।

क्षिति – स स्त्री. 'पृथ्वी, राष्ट्र, जन, प्रजा, आवास', √ 'क्षि निवासे'–'क्तिन'।

क्षिप् – 'फेकना, बहाना, प्रक्षेप करना, – क्षिप .

क्षिप्र – 'शीघ्रता, द्रुत, आशु, √ 'क्षिप्' 'र', अवे – श्वाइव्रास्प > क्षिप्राथ्व।

क्षियन् –वि पु, 'रहता हुआ', √ 'क्षि' – 'शतृ'।

√ 'क्षि क्षये' – क्षीण होना, नष्ट होना। क्षीयते।

क्षुमत् – स न, 'कीर्ति, यशस्, प्रसिद्धि' √ 'श्रु श्रवणे >क्षु, विकारार्थ तु– श्रवण, यशस, कर्ण, निशम्य। √ 'क्षि निवासे' क्षेति, क्षेष्यन् 'निवास करने वाला'। न्त।

क्षोणि – 'पृथिवी, क्ष्मा, भूमि', क्षोणी (द्विव) 'द्यावाप्रथिवी'। तु क्षोणीभृत् – 'पर्वत'।

क्षोदस् स न, 'निर्झर, जलस्त्रोत, जलप्रवाह', √ 'क्षुद्' 'अस्', अवे क्षओदह्, शुस्ता।

ख

खादिन – खाने वाला यद्धा द्रयित।

खादि – स पु, 'वलय, मुद्रिका', ख्वज्– खन् 'चमकाना' =SHINE खन्> खादि। न् 'वलय पहनने वाला, मुद्रिका धारण करने वाला'।

खानि – स स्त्री, 'खनि, खान, खदान'।

खा – स स्त्री, 'कूप, गड्ढा', √ 'खन'> खा। – खायू।

खृगलफ – स पु, 'उलूक' CRUTCH.

ग

गण – समूह, सख्या, भीड, व्रात, वर्ग, सम्मर्द, वर्ग,। णानाम्– ष बहु.।

गणपति – वि पु, 'जन समूह का स्वामी, व्रातपति, समूहो का स्वामी, बृहस्पति का विशेषण'। म्।

गन्तृ – वि पु, 'जाने वाला, गमनकृत, गमनकर्तर्'। √ 'गम्' 'तृच'।

गभस्ति – स पु, 'हवि.पु, हस्त, रश्मि', तु– पूर्णगभस्ति। गृभ्> , तु अवे– गव दएवो।

गभस्तिपूत – वि पु, 'हाथ से शुद्ध किया गया, फैला हुआ', श्वि–श्वन् >पुण्, पू।

गभीर – वि पु, 'गम्भीर, गहरा', √ 'गभ्–जभ्–गह्–फैलना–'ईर'। तु–अवे–जफ्नु, जफर, जफन 'मुख'।

गर्त – स पु, 'रथसदस्' रथ > जगर; ०√ 'कृन्त' =CUT; कर्त T=CART; > गढ = COURT; तु–ज– KERT; स >कतरा,

कर्तश शकट, शकट्या – सडक, गर्त्या >'गली = रथ्या'। गर्तसद् – 'रथस्थ, रथ पर बैठा हुआ, रथारूढ'।

गर्भ – स पु, 'उदरस्थ भ्रूण', √ 'गृभ' गर्भ– 'अ', अवे– गरॅब, तु–अं – CALF.

गातु – स पु, 'मार्ग, गमन, साधन, पाथेय', √ 'गम् गतौ'> गा – 'तु', अवे. –गाथु – 'स्थान, समय, राजभवन' –म् – द्वि एक।

√ 'गम्' गच्छ > जस्, 'गा गतौ'। गच्छति; जगन्थ, गत्, गन्तन; गन्तम् गन्म; गहि; गात।

√ 'गा' – जिगातम्, जिगातु।

गायत्र – स न, 'छन्दोविशेष', √ 'गै शब्दे'– 'अत्र'। –म्–दि एक०।

√ 'गाह् विलोडने'– गाहेमहि।

'गृ शब्दे स्तुतौ'-

गीर्–स० स्त्री०, 'वाणी, शब्द स्तुति', अवे०–गर्, गरो–

दॅमान (ष० एक०)।

गिर्वणसम् –'स्तुतिप्रापक'।

√ 'गुह् गोपने'– गूहताम्। गुहदवधम्।

गुहा – स स्त्री०,'गुप्त स्थान', सर्वत्र तृतीयान्त विशेषणात्मक प्रयुक्त, √ 'घा' के साथ।= अवे–गूज्,गूजा सेग्ध –'गुह्मशस'–गुप्तकथन'

गुह्य–'गूढ, प्रच्छन्न, छिपा हुआ, अस्पष्ट, गुप्त', √ 'गूह'–'यत्'।

गुह्यम्–'गूढ, छिपा हुआ, प्रच्छन्न', अवे०–गूज>HIDDEN.

√ 'गृ शब्दे स्तुतौ'–गृणन्ति, गृणीमसि, गृणीषे, गृणीहि।

गृणत्– वि०पु०, 'स्तुति करता हुआ, स्तुतिकर्त्ता, कवि',

√ 'गृ शब्दे'–'शतृ'।

गृणान– वि० पु०, 'स्तुत होता हुआ,' √ 'गृ शब्दे'– 'शानच्।

गृत्स–वि०पु०,'महत्वाकाक्षी, बुद्धिमान्, चतुर, निपुण', √ 'गृध'GREED– स, गृत्समद–ऋषिविशेष। दाः। दासः।

√ गृध्–जगृधु।

गृध–वि० पु०, 'लोभी', √ 'गृधु अभिकाङ्क्षायाम्'–'र', ध्रा. (इव)।

√ 'गृभ् ग्रहणे'–GRIP, GRASP, गृभ्णाति > GOVERNS,

गृभाय, ग्रभीष्ट। = अवे, गॅरॅव, पकडना।'Govern, Catch गॅरॅज्दर्– ' गृहीतर्' गॅरॅज्दि–दान'।

गृहम्– न०, 'घर', पु०– गृह, अवे०– गॅरॅध=दएवागृह। ग्रहल'गबन'।

गृहपति– 'गृहस्वामी, गृहस्थित, अग्निविशेष'।

गौ – स स्त्री०, 'गाय', 'गम्'–'ओ', अ०–COW अवे, गाव्, गेउश् तशन्

गोऽग्राम्–'गोबहुल', अग्र–अज्–र, टाप्, 'दुग्ध– गेउश, उर्वन्।

बहुल'। गोडअर्णस्–SWARNNING WITH COW OR STARS.

गवाशिर–स०, 'गोदुग्धमिश्रित',–आ–√ श्री–,–र।

गोजित्– वि०, 'गाय को जीतने वाला'। – ते।

गोमत्– वि०, 'गोयुक्त, गाय', अवे०– गओमत्।

स्त्री०– 'गो–मती', अवे०– गओमइती।

गोप– वि०पु०, गोरक्षक, रक्षक, पालक' √ पा 'पालने–

'क्विप्'। पौ,– पा।

गोत्र–स०न०, 'गायो की रक्षा का स्थान, गोस्थान, गोष्ठ, गोशाला' गो– √ 'त्रै रक्षणे'।

गोत्रभिद्–वि०पु०, 'व्रज–भेदक, गोष्ठो को तोडने वाला',

√ 'भिद् विदारणे'– 'क्विप्।–दम्।

ग्ना – स०स्त्री' देवी' (प्राय बहु० व० मे प्रयुक्त) जन्> ग्रा गॅना, घॅना।

ग्नास्पति–'दिव्याङ्गनाओ के स्वामी'।

ग्राम– स० पु०, 'गॉंव, बस्ती', √ 'रम् क्रीडायाम्'> रामक (पह०)> रामक् ग्राम। तु०– द्रघ द्रन्ग– नगर।

ग्रावन्–स०पु०, 'पाषाण', दृघ् ग्रा>वन्, तु०–दृघ्>

दृष>दृषद् = SOLID शिला, शक्ति। गा० GAIRMUS– लिथु०–GIRNOS.

घ

घ–वाक्यालङ्कार निपात यद्वा बलसूचक> ह।

घृण्–स० स्त्री० 'घृणा, ताप उष्णता, धूप, सन्ताप', घृ> √ 'घृण् दीप्तौ'– 'क्विप्' ।– णि–स० एक०।

'घृत–स० न०, 'द्रवपदार्थ, जल, घी,' √ 'घृ क्षरणदीप्त्यो '–

'क्त', √ 'घृक्षरणे' गल्,> जृ ज्रयस्=फा०–

दरिया, जलम् झर, निर्झर– रिणी, झरण ।

√ 'घृ दीप्तौ' ह्व– हिएय, हीरक, हरि, ज्वल्–

GLOW, GLANCE, GLAMOUR ज्वल >BALCONIC

'ज्वालामुखीय'।

घृतनिर्णिज्– वि०पु०,'घृतशुद्ध, घृतावृत',– निर्'– √ 'णिज्

शोधने'– 'क्विप्'।

घृतप्रुष– वि०न०,'घृत चुआने वाला, घृतवर्षक, घृत छिडकने

वाला, घृतच्यावी', तु० FLUSH, प्रु–प्लु= FLOAT >

BOAT, √ 'प्रुष्'–'क्विप्' ।–षा–तृ० एक०।

घृतवत्– वि०, 'घृतसयुक्त, घृतशब्दयुक्त'।

घृतश्चुत– वि०पु०, 'घृतच्यावी, घृतअर्पण करने वाला, घृत

छिडकने वाला,। चुआने वाला', श्च्यु >श्नुच्यु चुआना'–

'क्विप्। –तम्, द्वि० एक०।

घृतस्नु – वि०पुं०, ' घृतशिखर, यद्वा घृतच्यावी', स्नु, तु० SLOW

'आर्द्र करना।– स्नू।

घृतासुति–वि०पु०, 'घृत प्राप्त करने वाला, घृतार्द्र, घृतधारमय'।

'आ'– √ 'सु अभिषवे'– 'क्तिन्। स्न–स्त्री०, 'घृत का चुआना'।

घोर–वि०पु०, 'उग्र, शक्तिशाली,' √ 'घन्'–'र', –म्–द्वि० एक०।

√ 'घन्'–हन्–घ्नन्ति, जघान, जङ्घनन्त।

√ 'घृ'– 'जिर्घमि।

√ 'घन्'– जिघासति।

च

च – निपात,'और, तथा' ।=अवे,–'च' ।

चकान– वि०पु०,'कामना करता हुआ', √ 'कम्'–शानच्' । –ना ।

चक्रम्– स० न०, 'पहिया', √ 'क्रम्' क्रम्> चक्र, तु०–अ०–CIRCLE अवे०–चरक्र।

चक्षुष्– स०न०, 'नेत्र, अक्षि, नयन', √ 'काश् दर्शने'> चकाश (यङन्त)>'चक्ष् दर्शने'– 'उस्' । षा, तृ० एक०।

चख्वास्– वि०पु०, 'दिखाने वाला, प्रदर्शन करता हुआ', √ चक्ष'– 'क्वसु' । सम्।

चतुर्– सख्या, 'चार', तु० अ०– QUARTER, FOUR,लै०
ESQUARE, QUADRUPED,आसे०– FLOWER,अवे०–चद्र।

चत्वारिंशत् (चालीस), चत्वारिंशी (चालीसवी),–
श्याम् (स० एक०)।

चतुर्युग– 'चतुर्युक्त', अवे०– चथ्रुयुख्त।

√ 'चत् गतौ'– 'जाना', भागना, छिपाना' ।– चातयस्व।

चन– नि०'–निश्चयसूचक, नकारात्मक तथा स्वीकारात्मक
द्विविधार्थसूचक, अवे०–चिना।

चनस्– स०,'सुखानुभूति, प्रसन्नता, आनन्द, प्रसिद्धि', √ 'चन्द'
>चन्– 'अस', चनिष्ठ 'अतिप्रसन्न', द्र० 'चन्द्र' चन्–'अस्', चनिष्ठ 'अतिप्रसन्न', द्र० चन्द्र।
अवे०–'चनह्' 'चिनह्' ।

चन्द्र– वि०, स० पु०, 'आह्लादक', √ 'श्चद्'> चद्– 'र', तु०–हरिश्चन्द्र, सुरेशचन्द्र, पुरूशचन्द्र–√ 'चद्' तु०–चद–
नम्, √ 'षद्'–प्रसाद, प्रसन्न, प्रसीदति,

चयमान– वि०पु०,' सञ्चय करता हुआ', √ 'चि चये'– 'शानच्' । √ चर विचरणे' –

चरन – वि०पु०, 'विचरण करता हुआ, चलता हुआ' ।

चाक्ष्म– वि०पु०, 'द्रष्टा, प्रेक्षक', √ 'चक्ष्'–'म' चाश्म, तु०–अवे०–चश्मन्–द्रष्टर्–म्।

√ 'चत् छिपाना'– 'भागना, दूर होना'–चातयस्व।

चारु– वि०पु०, 'सुन्दर, शोभन', 'रुच् कान्तौ' चारु (वर्ण– विपर्यय)।

चारुप्रतीक–वि०पु०, 'सुन्दर स्वरूप वाला' (बहु०स०), 'प्रति–√ 'अञ्च्' >प्रतीक।

चिकित्वस्– वि०पु०,'बुद्धिमान्, चिकेतस्, प्रचेतस्, प्राज्ञ, प्रज्ञा–
वान्', √ 'कित्'–'क्वसु' ।–त्व । अवे०–त्कएश।

चित्र– वि०, अवे०– चिथ्र, 'कान्त, ज्ञानयुक्त, शबना', √ 'चित्'–'

'र' , चिह् – चेहरा। प्रा० फा० – चिथ्रतखा, चिथ्र > CHILD CLUE.

चित्रभानु–वि०पु०,'रग–विरगी किरणो वाला' (बहु० स०)।

चमुरि– स०पु०, 'असुरविशेष'।

√ 'च्यु गतौ'–शु, शव, आशु, शीघ्र, अवे०–श्यओथ्न 'गति'–

मयता', प्रा० फा०–शियव, फ्रशावयेति। चुच्युवत्।

चेकितान– वि०पुं०, 'ज्ञानिन्, प्राज्ञ, विद्वान्'।

चेतन– √ 'चित्–कित् सञ्ज्ञाने' = THINK, TEACH,चेतर–TEACHER, चिकेतस्– अवे० त्कएश।

चोद– वि०पु०,'प्रेरक', √ 'चुद् प्रेरणे'– 'घञ्'।–म्, दौ। चौदिक।

च्यवन–वि०पु०, 'च्युत करने वाला', √ 'च्यु'– 'ल्युट्'। –न, ना।

छ

छाया– म्, अवे०– 'शाया'।

√ 'छिद्'– तोडना , विदीर्ण करना। छेदि।

ज

जगत्– स० न०, 'चर, जीवजगत्, ससार',–'ताम्'।

जग्मि– वि०पु०, 'गन्ता, जाने वाला', √ 'गम्'–'कि'–मि।

जघन्वास्– वि०पु०, 'मारने वाला', √ 'घन्'–मारणे–'क्वसु'। न्।

√ 'जन'– जजान, जजान्, जज्ञिषे, जनत्, जनन्त।

जन– स०पु०, –मनुष्य', √ 'जन् प्रादुर्भावे'–'अच्'।

जनसह– वि०पु०, 'मानवाभिभवकारिन्',–√ 'सह् अभिभवे'– 'अच्'। – ह.।

जनसी– वि०,स०न०, 'द्यावापृथिवी', √ 'जन् प्रादुर्भावे'– 'अस्'–प्र० द्विव०।

जननम्–स०न०, 'उत्पत्ति, जन्म', √ 'जन् प्रादुर्भावे'–'ल्युट्'।

जठर– स०न० 'उदर', √ 'गॄ निगरणे'–जॄ जरत् जरठ,

यद्वा जर्–अथ >।–रे।

जनितर–स०पु०, 'उत्पादक, पिता, जनक', √ 'जन् प्रादुर्भावे'–

'तृच्'।–तो।–त्री।

जनि– स० स्त्री०, 'स्त्री, पत्नी, भार्या', अवे०–जइनि 'कुलटा',

अ०–QUEEN भि।

जनिमन्– स० न०, 'जन्म'।

जनुष्– सं०न०, ' उत्पत्ति'।

जन्य–म्, या, (इव)।

√ 'जम्भ भक्षणे'– गभ–गम्भ Deep गहरा होना, फैलना,
खाना, अवे०–जफ्न (घाटी), जफर्, जफन् (मुख)।
√ 'जि जये'–जम्भय, जयेम, जेषि।
√ 'जॄ स्तुतौ'– जरामहे, जरथे।
जरमाण– वि०पु०, स्तुति करता हुआ',गृ >'जृ> स्तुतौ–'
शानच्'–णा ।
जरयन्–वि०पु०,'स्तुति करता हुआ', √ 'जॄ'–'शतृ'–तम्,
जराय।
जरित्रम्–स०पुं०, 'स्तोता', √ 'गृ स्तुतौ'–'तृच्',–तारम्, रित्रे।
जर्भुरत्–वि०पु०,'आपूरित,पूर्ण होता हुआ', √ 'भृ'–'यङ्'– 'शतृ'।
जर्भुराण– √ 'भृ'–'यङ्'–'शानच्','पूर्ण होने वाला'।
जलाष– वि० पु०, 'शीतल', √ 'जृ गतौ' >जल >जलाश (जल–
श) जृ जयस्–फा०'दरिया', जृ> जल (क्षरित
होना), –ष । प्र० एक ।
जात– वि०पु०,'उत्पन्न, उद्‌भूत, पैदा हुआ', √ 'जन्' – 'क्त'।
जनीय = अ०–NATIVE, NOBLE,तु०–अ० GENERATE.
जातवेदस्– वि०स०(न०),'जात वेत्ति, जाते जाते विद्यते इति वा',
√ 'विद् ज्ञाने' (सत्तायाम् वा) – 'असुन्', जातवेद,
दाः, सम्।
जविनी– स० स्त्री,' गतिशील सेना', √ 'जू गतौ' जव,–इव, ङीप्।–भि ।
√ 'जन् जनने'–जायते, जायन्ते, जायसे,जायेमहि।
जायमान– वि०पु०, 'उत्पन्न होता हुआ', √ 'जन्'–'शानच्', –स्य।
जातस्थिर– स०पु०, एक व्यक्ति का नाम।
जिगीवास्– वि० पु०, 'विजयी, जयशील', √ 'जिजये'–'क्वसु',–न्' सम्।
जिगीषु– वि०पु०,'विजयेच्छुक', 'जिजये'–'सन्', उ, –षुः।
√ 'जिन्व्'–'प्रवृत्त होना, प्रेरित होना, उत्तेजित होना,' जिन्व, जिन्वतु, जिन्वथ– क्रियारूप।
जिह्म– स०पु०,' 'कुटिल, टेढा, तिर्यक्', √ 'ह्वृ' जिह्–म।
√ 'ह्वृ कौटिल्ये' =GLOBE,तु० WHIRL, WHEEL.
जिहवा– स० स्त्री०, 'जीभ', अवे०–ह्विज (पु०), हिज्वा> जुवान> जबान। √ 'हु पुकारना'–'जिहवा', तु०–ट्रन्ग् TONGUE, LANGUAGE.
जीर– 'शीघ्र, आशु, तीव्र, कर्मनिष्ठ, क्षिप्र,' √ 'जृ गतौ'।
तु०–चिर देर = DELAY.
जीरदानु– वि०पु०,'शीघ्र देने वाला', –नवः, जृ >चिरम्, जीर।
जीवसे– 'जीने के लिए', √ 'जीव्'–'असे' (असे) (तुमुनर्थक)।
जीव– स०पु०,'प्राणी', √ 'जीव धारणे'–'अच्', वैः, अवे–गय =।

जुजुषाण– वि०पु०, 'सेवन करता हुआ, प्रसन्न होता हुआ',जुष्–जुष्–जुजुष्–कानच्,–ण , णा।

जुजुष्वान्– वि०पु०, 'सेवन करता हुआ', जुष्–जुष्–

जुजुष्–क्वसु।

जुजुर्वान्– वि०पु०, 'जीर्ण होता हुआ, जराग्रस्त', √ 'जृ वयोहानौ'– 'क्वसु'।

'जुष प्रीतिसेवनयो'– जोषि, जुषन्त, जुषेत्, जुषस्व,

जुषेथाम्।

जुषाण– वि० पु०, 'आस्वाद लेता हुआ, प्रसन्न होता हुआ', तु० प्रा, √ 'यु' युष्> 'जुष्'– चुष्, चक्ष्,√ 'जुषी प्रीतिसेवनयो'–

'शानच्' ।–ण ।

जुरताम्–लोट् लकार, प्र० पु०, द्विव०।

जुहू– स० स्त्री०,'हवनसाधनपात्री', √ 'हु' >जुह् >'ऊङ्'।

√ 'जू गतौ'– जूजुवत्।

जेह्वर– वि०पु०, 'विजयी, जयशील, जीवने वाला', √ 'जि जये'–'तृच्'–ता।

जेन्य– वि०,'जीतने योग्य, जेय', √ 'जिजये'>। य ।

जोषम्– 'प्रसन्नता के साथ'। अवे० जओश–प्रेम, सन्तोष, पर्याप्तता।

जोहूत्र– वि०पु०,' पुकारा जाने वाला', √ 'ह्वे'–'उत्र'।

ज्ञेय– वि०पु, 'जानने योग्य', √ 'जाना'–'ज्ञा'–'यत्'–अवे०–'क्ष्ना'>'स्ना'–स्नातक, निष्णात, √ 'जाना' 'ज्ञा' =अ०–KNOW.

ज्येष्ठ–वि०पु०,'विशालतम, आयु मे श्रेष्ठ', ज्या >ज्यायान् (ईयसुन्), ज्येष्ठ (इष्ठन्),– म्, ठै –तमाय।

ज्येष्ठराज–वि०पु०, 'श्रेष्ठ शासक'।

ज्योक्–वि०'दीर्घ काल तक', ज्या–अञ्च्–क्विप्। ज्या, तु०–त्रिज्या, ज्यामिति, ज्यायान्स्, ज्येष्ठ।

ज्योतिष्–स०न०, 'प्रकाश, कान्ति', √ 'दिव्'> द्युत्> ज्युत्,–

इष्, तु०–ज्योत्स्ना।

ज्योतिष्मन्त्– वि०पु०, 'ज्योतियुक्त, सप्रकाश, प्रकाशयुक्त, कान्त, उज्ज्वल'।

चित्–नि०, बलसूचक, उपमार्थीय, पादपूरक, बलसूचक,
कुत्सासूचक। अवे०–चित्। अवे० √ 'चित्' ।किम्, कियत्,
कति, कदा, कथम्, कुह, क्व, कुत्र।
√ 'चित् सञ्ज्ञाने' चिन्त् = THINK,चेतर् = TEACHER,
चितयत्, चितयन्त्, चितयेम।
चित्ति– स० स्त्री०, 'ज्ञान, चिन्तन, चेतना', √ 'चित सञ्ज्ञाने'– 'क्तिन्' अवे०–चिस्ति।–म्।

त

√ 'तक्ष् तनूकरणे'– अवे० त्वक्ष्, तु० –अ० TEXTILE, ARTITECT, ARTITECTURE.
तक्षु– वि०पु०, 'निर्माता, ' तक्षणकर्तर्, तरासने वाला'।
तळित्– स० स्त्री०, 'विद्युत्', √ 'तृन्द्' तड्–इत्।
तदपस्–वि०पु०,'तद् अपोयस्य', बहु० स०, अपस्– √ 'आप्लृ लम्भने'– 'अस्'।
ततृषाण– वि०पु०,'तृषित √ 'तृष्–THIRSTY 'कानच्' ।–ण । प्र० एक०।
तद्वश– वि०पु०,'उसका इच्छुक', 'तद् वष्टि त्यस्मै वश यस्य',बहु० समास।–श ,–शाय।
तनय–स० पु०, 'पुत्र', √ 'तन् विस्तारे'– 'अय'। –म्,–स्य, याय।
तन्– वि० स्त्री०, √ 'तन् विस्तृत होना', 'विस्तृता, प्रथिता', √ 'तन्'–'क्विप्'।
√ 'तन् विस्तारे'–तनुष्व–लोट्, म०पु०, ए०व०।
तनूरुक्–वि०पु०,'शारीरिक कान्ति वाला', √ 'वृच् कान्तौ'>'रुक्'
'क्विप्'–चम्।
तन्तु– स०पु०, 'रश्मि, रज्जु, तागा', √ 'तन् विस्तारे'– 'तु'।
तन्द्रत्– वि०पु०, 'तन्द्रायुक्त'।
√ 'तप् सन्तापे'– तम्प् = TEMPER,तप, तपति।
तपन– वि०पु०, 'सन्तापक, सन्तप्त करने वाला, जलाने वाला,
सन्तापकृत्'।
तपनी– वि०स्त्री, 'सन्तप्त करने वाली, अस्त्र विशेष'।
तपु– वि०पु०, 'सन्तापक, जलाने वाला', √ तप् सन्तापे'– 'उ'। पु:,–षा।
तपुष्– द्र०–'तपु'।
√ 'तृप् तृप्तौं', 'तृप्त होना'। तृप्यतु, लोट्, म० पु०, एक०, अनिघात् तप = अवे–तॅरॅप, तृप्त= तॅरॅफ्ध।
√ 'तम् ग्लानौ'– 'सन्तप्त होना'। तमत्– 'सन्तप्त हो'। लेट्, म०पु० एक०।
तमस्– स०न०, 'अन्धकार, ग्लानि, √ 'तम् ग्लानौ'– 'अस्'।
तमिस्रा– सं० स्त्री०, 'अन्धकारयुक्त, रात्रि', तम्–इस्,–टाप्,–स्रा।
√ 'तॄ तरणे'– 'पार करना, पार होना'।
तितिरु– 'पार कर लिया'।
तरोभि–
तरस्– 'बल, ओज, उत्साह, तेजिस्वता, क्रियाशीलता,

तत्परता', तु० VIGOUR, ACTIVITY.

तरन्त्– 'पार करता हुआ, तैरता हुआ'।

तर– वि०पु०, 'पार करने वाला', √ 'तृ पार करना'– । तु०–अवे०– तरो त्वएश, त्व एशोतार –'द्वेष को पार करने वाला, जीतने वाला।

तरूत्र – 'पार करने वाला'।

तव –

तवस् – वि०पु०, 'बलशाली' √ 'तु बलशाली होना'। = अवे तवह् ।

तवस्तम – वि, 'बलिष्ठ, शक्तिमत्तम, शविष्ठ, सर्वाधिक शक्तिशालिन्,।

तवस्य – वि०पु०, ' बलयुक्त, सामर्थ्ययुक्त'

तविष् – स, बल, शक्ति, सामर्थ्य'। द तवस्।

तविषी – स स्त्री, √ 'तु बले'– 'इष्', अवे –तॅविशी 'बलशालिनी'।

√ 'स्था'– सत्तायाम् – तस्थु. तिष्ठते,। तविषीयमाण– वि०पु० 'बल प्रदर्शन करता हुआ'।

तिगित – वि०पु०, 'तीव्र, तेज, तीक्ष्ण', √ 'तिज्' 'क्त', तु.

अवे तिघ्र, तिजि, तएघ।

तिग्म – वि०पु०, 'तीव्र, तीक्ष्ण, चोख, तीखा', √ 'तिज्' 'म'।

तिग्मायुध – वि०पु०,'तीक्ष्णायुध, तेज आयुध वाला', तु अवे– 'तिजि', 'अर्श्ति'।

√ 'तिक्ष्' – रोकना, दूर करना, सहना', तु– 'तितिक्षा', 'तितिक्षु', 'तितिक्षते'।

तित्रत –

तिरश्चा .– तिर्यक, टेढा, वक्र, तिरछा', तु– TELE, TRANS.

तिसृ –स. स्त्री, त्रि – √ सृ तिसृ >'सूते इति, सू' – तृच् – 'ङीप्'। भ्य स्र·। सावित्री >स्त्री सृ।

तीव्र – वि०पु०, 'तेज, तिग्म', तु – तीर, वाण। – व्र । तीक्ष्ण – क्षिप्र = अवे– 'क्षोइव्र'।

√ 'त्वर' – 'शीघ्रता से जाना, शीघ्रता करना,' तुरयन्ते।

तुरीय. – सख्या, 'चौथा', चतुर, चतुरीय तुरीय। तु. 'तुर्य'।

प्रवे – आख्तुइरीम् = 'आतुरीयम्'

तुर्वीति – स पु, 'एक व्यक्ति का नाम'। ग्रये।

तुविजात – वि०पु०, 'स्वभावत बलवान्, जन्मत शक्तिशाली'; त.।–त्।

तुविष्मान – वि०पु०, 'बलशाली, शक्तिमान्'; तविष् – तुविष् तविषी = बल, अवे तॅविशी।

तुविस्वनि – 'प्रभूत शब्दयुक्त'। स्वन्– √ 'स्वृ शब्दे' CALL.

तुस्तुवान्स – वि०पु०, ' स्तुति करने वाला', √ 'स्तु स्तुतौ' – 'क्वसु', स· प्र बहु ।

√ 'तु' – तूतोत्, तूष्णीम्– क्रि वि, 'शान्तिपूर्वक', तु अवे 'तुश्नामइति' शान्त चिन्तन। तुष चुप।

तृतीय – सख्यावाचक, त्रि>त्रित ईय = THIRD अवे –थ्रित्स थ्रित्य = तृतीये। स. एक ।

√ 'तृप् तर्पणे' – 'तृप्त होना'; अवे– थ्रफ्द्य = 'तृप्त'। तृपत्, तृष्णुहि।

तेजिष्ठा – वि स्त्री.; √ 'तिज'> तिग्म – इष्ठन् >तेजिष्ठा 'तिग्मतमा, तीक्ष्णतमा'। अवे तिजि तएछ, तिध्र।

तोक – √ 'तुक् वशविस्तारे'> तोक, 'वश, सन्तान, सन्तति',> तोक्मन्, कुटुम्ब, कुल'। अवे. तओख्मन्। तोकम्, स्य, काय,– के प्रा फा तउमा० आ० फा० तुख्म।–

त्मन– आत्मन् >त्मन् 'स्वयम्, अपने आप'।

त्रातृ – वि०पु०, 'रक्षक', √ 'त्रै पालने' – 'तृच्'। अवे.– थ्रातर् ।– तारम् – द्वि. एक.।

√ 'त्रा रक्षणे पालने' – PROTECT; अवे. 'थ्रा'। त्राध्वम् – क्रियारूप। त्रायसे।

त्रि – सख्यावाचक, पुं, 'तीन', THREE (अं.), अवे – 'थ्रि', लै TRES; ज. – DREI; त्रिः = लै.– TER, TERS; अं – THRICE; त्रिवृत् = THREEFOLD.

त्रिशत् – सख्या स्त्री , त्रि – दशति> त्रिशत्.> त्रिशत्, तु – विशति। अ THIRTY; अवे –थ्रिसत्।
त्रिकद्रुक – स पु , 'एक सोमयाग का नाम'।
त्रित – स पु , 'ऋषि विशेष, देवता', अवे – 'थ्रित', त्रि–त., तृतीय (तु)। तु –द्वि >द्वित्> द्वितीय।–तः, तम्, स्य, – ताय।
त्रिधा – क्रि वि , 'तीन प्रकार से', अपि च, 'त्रेधा', त्रेता (युग विशेष)।
त्रिवयस्– वि पु , 'त्रिविध अन्न वाला', √ 'वी तृप्तौ'> शक्तौ – वयस्।
त्रैष्टुभ्– त्रिष्टुप् , >'छन्दविशेष,' त्रि – √ 'स्तुप्' – स्तप् –ऊँचा होना स्तुप्, स्तप्, स्तूप।
त्वम्– सर्व म पु, लै –tu; आसै du; अ – thou, you.
त्वक्षीयस्–वि न , 'शक्तिप्रदाता, बलकर, पौष्टिकतर', त्वक्षस्– (i) बलशक्ति, (ii) बलकर।
त्वादत्त – वि पु , 'त्वया दत्त, तुम्हारे द्वारा प्रदत्त, तुम्हारे द्वारा दिया गया'।
त्वादूत– वि , 'तुम जिसके दूत हो, तुझ दूत से युक्त'।
त्वायन्– वि पु 'तुम्हारी कामना करता हुआ'।
त्वाया– स स्त्री , 'तुम्हारी कामना'।
त्वावत्– वि पु , 'तुझसे युक्त, तुझ सदृश'। अवे. 'थ्वावन्त'।
त्वाष्ट्र – वि पु 'त्वष्टा से सम्बद्ध, त्वष्टा निर्मित', त्वष्टर् = अवे – तशन् थ्वर्श्तर।
त्विषमित्–वि.पु , 'शक्तिशाली, बलवान, सामर्थ्ययुक्त'।
त्वेष वि पु , 'बल, शक्ति, सामर्थ्य'।

द

दष्ट– स पु , दॉत, TEETH (अ)।
दक्ष– स पु , 'देव विशेष, समर्थ'
√ 'दह्'– > रक्ष – दक्षसे।
दक्षाय्य – वि पु , 'दाहक, दहनसमर्थ', √ 'दह्' 'दक्ष'– 'जलाने का इच्छुक होना'।
दक्षिणा – स स्त्री , 'दान'।
दक्षिणत – क्रि० वि०, 'दाहिनी ओर दक्षिण से'। दक्षिण =अवे०– दशिन।
दत्त – वि०पु०, 'दिया गया', 'दद्' – 'क्त'।
ददत्– वि०पु०, 'देता हुआ'।
√ 'दा दाने'–ददाति, ददति, ददातु, ददाश, ददासि, ददीमहि, ददु , दद्धि।
ददिः– वि०पु०, ' देने वाला, दातर्, दानकर्तर्, दानकृत्'।
ददाश्वास्– वि०पु०, 'देने वाला, दातर्' √ 'दाश्'– 'क्वसु'।
√ 'धा–धारणे'– दधन्वे, दधु , दधीत, दधात, दधिषे,
दधे, दधातु, दधामि।
दधान – वि०पु०, 'धारण करता हुआ', √ 'धा'– 'शानच्'।
दधिरे–निघात।
दधृषि – 'धारक, निर्भीक, साहसी', √ 'धृ धारणे, यद्वा, √ 'धृष् प्रागल्भ्ये'–।
√ 'दिव्'> 'दी'– दिदीहि, दीदयेत्, दीदयत्, दीदाव,दीदिहि, दीदेत्
दिद्युत्– स० स्त्री०, 'कान्त शस्त्र', √ 'दिव्'> 'द्युत'। दिधि–
षन्ति, दिधिषामि, दिधिषाय्य, 'दिव्' लै०–JAM,
DUM, DU-DUM ETC.लै० DUS,आस, TIWES DAEY,

GU- TRITER, JOVIS, प्राउज० ZIES-TAE,

दिव– दिव, दिव, दिवि, दिवे, दिवेदिवे, दिव (इव)।

दिवोदास– स०पु०, 'एक व्यक्ति'।

दिव पृथिव्यो ', दिविस्पृक्–

दिव्य– वि०पु० 'आकाशीय,द्यौस् से सम्बद्ध, दिवस्, द्यौस् >।

दिषीय–

दिदीवान्स्– वि०पु०,'कान्त, सप्रकाश', √ 'दिव्कान्तौ'–क्वसु'।

दीद्यत्, दीध्यत, दीयन्ति।

दीर्घ– वि०पु०, 'लम्बा, विशाल, प्रथित', द्राघ्–लम्बा होना> दीर्घ (LONG आ०), अवे० दरॅध >दरन्ग, दराज।

दीर्घा, दीर्घाधिय।

दीर्घया – स पु०, 'दूर तक जाने वाला'। √ 'यागतौ' – क्विप्।

दुर्– उप० 'कठिन', अवे०–दुश्, दुज।

दुरित–'सङ्कट , अनर्थ'। दु– √ 'इ'–'क्त'। अवे०–दुजित।

दुरेव– वि०पु०, 'बुरी चाल वाला, दुष्ट विचार वाला, दुष्ट चित्त'।–

दुर्दभ– 'अप्रवञ्च्य, अप्रवञ्चनीय, अप्रतारणीय, जिसे धोखा न दिया जा सके'। दुर्दभ दूळभ।

दुष्परिहन्तु–

दुर्मति– स० स्त्री०, 'दुष्ट विचार, दुष्टा मति'।

दु शस– वि०पु०, 'निन्दक, बुरी बात कहने वाला'।

दुच्छुना–स० स्त्री०, 'दुर्भाग्य', √ 'श्व'=Swell 'लाभदायक होना, बढना, वीर होना'> शिव, शेव,

शुनस्–श्वन्–स्पन्–स्पॅन्त– BENEFICIENT.

√ 'द्रुह'–शूद् = दृ दृति, 'सुन्दर, पुनीत, पुण्य', तु०–कुर्शीद्,

द्रुह'दुहन'' फन, सौदा,सूद।

दुदोहिथ–

दुधित– वि०,'बुरी तरह स्थित' दु–धा–क्त।

दुध्र– वि० पु०,'कठिनता से पकडने योग्य',√ धृ 'पकडना' ऋच्।

दुर्– स० न०, 'द्वार', DOOR, √ 'ध्वृ'– लहराना, घूमना, खुलना'

दुर्, तुअवे०–दरॅप्स। स० द्रप्स,>FLAG> ध्वज झण्डा'

दुर्य– सं०, 'गृह, घर, द्वारयुक्त', य.। दुर् = DOOR, य।

दुस्तर– वि०पु०, 'कठिनता से पार करने योग्य'।

दुस्तरीतु– स० पु०,'एक व्यक्ति का नाम'।

दुहाना– वि० स्त्री०, 'दुग्धदायिनी, दूध देने वाली, दोग्ध्री'।

दूत– स० पु०, 'सन्देशवाहक,' √ 'दु गतौ'।

दूर– 'परा'–FAR, √ 'दु गतौ'– 'र', तु० 'दूत'। अवे,– दूरख्यार 'दूरेवोरे''।

√ 'दृह्– 'दृढ करना, स्थिर करना'। दृंहत्।

दृहित– वि०पु०'दृढ किया गया'। √ 'दृघ' >दृह्–'णिच्'–'क्त'।

दृभीक–स० पु०, 'एक व्यक्ति का नाम'। –मृ।

दृळह– वि०, 'दृढ, स्थिर'। 'दृह्–दृह्– 'क्त'।

√ 'दृश्'– 'देखना'> 'ऋष् दर्शने' >ऋषि, अवे० दॅरॅश >'अइवीदॅरॅश्ति'।

दृशये– तु० दर्श्तोइश्– 'देखने के लिए'।

दृशान– वि०पु०,'दिखायी पडता हुआ'।–म्।

दृष्टवीर्य–वि०पु०, 'देखे गये वीर कर्मो वाला, जिसके वीर कर्मो को देखा गया हो।– म्।

देव– वि०पु०,'प्रकाशक, द्युतिमान्, दिव्य'। –व,–प्र० एक०।

देवकाम–वि०पु०, 'देव की कामना वाला', –म प्र० एक

देवतम– वि०प्र०, श्रेष्ठ देव, देवो में श्रेष्ठ', देव–तमदेवनिद्– वि०पु०, 'देवनिन्दक', √ 'नन्द'– 'क्विप्'।

देवयन्– वि०पु०, 'देवो की कामना हुआ', 'देव'– 'क्यच्'– 'शतृ'।

देववीति– स० स्त्री, 'देवो की तृप्ति', √ 'वी तृप्तौ'–'क्तिन्', तये। च० एक०–

देवी–स्त्री०, 'देव'– 'ङीप्'।

देवितमा–'देवियो मे श्रेष्ठभूता'।

देष्ण– स०न०, 'दान', √ 'दा' 'दाश्'> 'देश्'–'न'।

दैव्य– वि०पु०, 'देव, देवसम्बन्धी', 'देव'–'यत्'।

दोधत्– वि०पु०, 'कॅपाता हुआ', √ 'धूञ् कम्पने'– 'शतृ'।–त।

√ 'धूञ् कम्पने'– दोधवीति।

दोषा– स० स्त्री०, 'रात्रि', अवे०–दओषा, दओशस्तर 'पश्चिम'।

द्यौस्– स० पु०, 'आकाश', √ 'दिव्'– 'अस्'> 'द्यौस्',

'द्यौस्–पितर्' = JUPITER,ग्री०– JEUS DEUS.लै०–

द्यावा पृथिवी– स० स्त्री०, 'द्युलोक और पृथिवी लोक'।

द्युक्ष– वि०पु०, 'द्युलोकस्थित', √ 'क्षि निवासे'– 'अच्'।

√ 'द्युत्'– 'चमकाना, प्रकाशित होना'। द्युतयन्त–

द्यु– स० पु०, 'दिवस्', दिव >दिव> द्यवि, द्युस्, द्यु,द्यवि–द्यवि– दिवस्> स।

द्युमन्त्– वि०पु०, 'सप्रकाश, कान्त, कान्तियुक्त, उज्ज्वल'।

द्युम्न– स० न०, 'धन', √ 'दिव' 'द्यु'– 'मन्' 'म्न'।

द्रविण– स० न०, 'धन', √ 'द्रु'–'इन', तु०–दारु द्रु, अवे०– दओनह्।

द्रविणस्यु–वि०पु०, 'धन का इच्छुक', द्रविणस्– 'क्यच्'–'उ'।

द्रविणोद– वि०पु०, 'धनप्रद'।

द्रविणोदस्– वि०पु०, 'धनप्रद'।

द्रुह्यत्–वि०पु०, 'दृढ होता हुआ', √ 'दृध्' >'दृह्'– 'शतृ', तु०–प्रा०फा०– 'दीवाल'।

द्रुह– 'द्रोह करने वाला', अवे०–द्रुज– 'असत्यभाषी', वञ्चक, धोखेबाज'।

द्वयाविन्– वि०पु०, 'दोहरी चाल चलने वाला, दो मुँह, अविश्वस्त'।–न।

द्वौ– सख्या०, 'दो', TWO (अ०)।

द्विता– वि०पु०, ' दो प्रकार से, दोनों ओर से, दूसरा', द्वि–त

द्वितीय, अवे०– बित्य।

द्वार्– स० स्त्री०, 'दरवाजा, किवाड, कपाट'।

द्विष्– वि०पु०, 'द्वेष करने वाला'।

द्वेष– स०पु०, 'द्वेषिन्, द्वेषस्'– द्वेषिन्– "द्वेष करने वाला'।

√ 'दह्'– 'जलाना, भस्म करना' ।– धक्, धक्षि, धक्षत्, धक्षो ।

धा

√ 'धा'– धत्त, धिष्व, धिष्व, धा , धाति, धेहि।

धन– स० न०, ' धन, ऐश्वर्य सम्पति'।

धनजित्– वि०पु०,'धन को जीतने वाला'।

धन्वन्– स० न०,(i) धनुष'। अवे०– थन्वन्, थन्वर, √ 'तन्' =

थन्। (ii) 'निर्जल प्रदेश, मरुभूमि'।

धमनि–स० स्त्री०,'शब्द, वाक्, आवाज'।

धमन्त्– वि०पु०, 'फूँकता हुआ'। √ 'ध्मा शब्दाग्निसयोगयो '>'धम्'>

धमित – वि०पु०, फूँका गया'।

धर्मन् – स न०, 'धार्मिक कृत्य, सामर्थ्य, नियम' ।–णा।

धामन्– स०न०, 'स्थान,सामर्थ्य,> नियम,तेज', अवे०–दॅमान,

न्मान, गरोन्मान 'स्तुतिगृह' 'गरुत्मान्', तु०–DOM-ICILE, DOMINION.

√ 'धेट् पाने'–धायसे।

√ 'धृ धारणे'– धारयत्, धारयन्, धारयन्त।

धारयन्त्– वि०पु०, 'धारण करता हुआ', √ 'धृ'–'णिच्'–'शतृ'।

धारा– 'धारा, जलप्रवाह'। √ 'धाव्'–'र'–'टाप्' ।–'दौडना'।

धारावरा

धी – स० स्त्री०, 'बुद्धि, प्रज्ञा, शेमुषी, धारणा'।

धिष्ण्य– वि०पु०,'बुद्धिमान्, प्राज्ञ, मेधिर, धीमान्'। √ 'धा'धिष् >धिषणा = 'बुद्धि, प्रज्ञा, धारणा, मेधा'।

धीति– स० स्त्री०, 'स्तुति, स्तोत्र, प्रार्थना, स्तव, स्तवन,' √ 'ध्यै'– 'क्तिन्'।

√ 'ध्यै चिन्तायाम्'– 'विचार करना, चिन्तन करना', धीमहि, धीमहे।

धीर– वि०पु०,'बुद्धिमान्, प्राज्ञ, विचारक, चिन्तक, मेधिर, धारणायुक्त'।

धीर्या–

धुनि– स० स्त्री०, 'नदी, सरित्, शब्दमयी', √ 'ध्वन्'– 'इ', तु०–

प्रा० अ० DUNE–अं०–DIN 'गर्जन करने वाला', √ 'ध्वन्'

तु० –ध्वनिर' DRUM, दुन्दुभि।

'धूञ् कम्पने'– हिलाना। धुनयन्त।

धूर्–स स्त्री०, 'धुरा'।

धृत –धृतव्रत–'व्रत ग्रहण करने वाला'।

धृषत्–ती–'प्रगम्भ होता हुआ'।

धृष्णु– वि०पु०, 'प्रगल्भ, साहसी', √ 'धृष्'–dare ।

धृष्ण्वोजस्– वि०पु०, 'प्रगल्भ ओजस् वाला'।

धेनु– स० स्त्री०, 'गौ , गाय', √ 'धेट्पाने। अवे – दएनु – 'स्त्री पशु', कथ्वादएनु 'गर्दभी'।

धौति – स स्त्री , 'नदी', √ 'ध्वन् शब्दे यद्वा गतौ' – 'क्तिन्' ।

तु धुनि , यद्वा 'शिप्त' – WHITE धव्> धौति, तु –धव – ल।

ध्रुव – वि पु , 'दृढ, स्थिर, धृत' √ धृ – ध्रु 'व' (स्थैर्य) १– वा, वे।

ध्व्रस् – स स्त्री , हिसा, विनाश', √ 'घ्वृ' 'धूर्व हिसायाम्', 'अस्'। वि पु – 'हिसक, विनाशकृत'।

न

न – 'नही' – No; NOT; √ 'अङ्घ्', अङ्ह् 'विरूद्ध होना, सत्ताहीन बनाना'>negate; अ, अन् = IN, IM, UN; AGAINST, ANTI, ANTONIM; जिन् =DENY; तु – ANGER, ANGRY, अघ – AWKWARD, UGLY, ANXIETY, ANNOY.

न कि –'न कोऽपि' >'नकि', कोई नही'। तु अवे 'माकि'।

नक्ती – स० स्त्री०, रात्रि।√ 'अञ्ज् गतौ'> 'अनक्'> 'नक्', नक्ती; तु नाक. अग्नि, महानस्, अङ्गरस्, अङ्गार; अङ्ग लै – NOX < NOCTI; अ NIGHT. –क्ती । –

√ 'नक्ष्' – 'मिलना', नश्>नक्ष्। नक्षति।

नद – वि पु, 'गर्जनाकृत्, नद, जलस्त्रोतस्। – स्य।

नदी – स स्त्री, जलवाहिका नदी'। – नाम्।

√ 'नम्' – ननम ननाम, नमेते।

नन्त्व – वि पु, 'नमन योग्य, नम्र किया जाने योग्य, झुकाया जाने योग्य'।

नपात् – स पु 'नाती'।

नम – चतुर्थी के साथ प्रयुक्त निपात्। √ 'नम्' प्रहवत्वे' 'अस्'।

नमस्य – वि पु, 'नमस्करणीय, नमस्कारार्ह, प्रणाम्य, आदरणीय', 'नमस्' – 'यत्' – प्र. एक.।

नमुचि – स पुं 'एक व्यक्ति का नाम'।

√ 'नी'– 'ले जाना, नेतृत्व करना' नयति, नयतु नयताम्, नयध्वम्, नेषि'।

नर– स पु. 'मनुष्य, नेता' नृ> नर् >नर। अवे नार – 'वीर'– क्षत्रिय, योद्धावर्ग'।

नराशस – स पु., 'अग्नि का एक नाम'।

नर्य – स पु, 'वीर, पौरूषयुक्त, योद्धा'।

नव – वि पु 'नूतन, नया,' NEW (अ), – व, वेन।

नवति – सख्या, स्त्री, 'नब्बे' – NINETY; अवे – नवइति।

नव्य – वि पु 'नवीन, नूतन', नव – New,> नव्य।

नव्यस् – वि पु 'नवीयस्, नवतर, नूतनतर' NEWER.

नवीयस् – द्र 'नव्यस्'।

नवमान – वि पु 'झुकता हुआ, नमनशील', – स्य – ष. एक ।

√ 'नश् व्याप्तौ' नशत्, नशथ, नशन, नशामहै, नसीमहि।

नाद्य – वि पु. 'नदीपुत्र, नदियो का पुत्र'।

नाधमान – वि पु., 'याचना करता हुआ', – म्, – स्य, – नाय।

नाना – पृथक्त्ववाचक निपात। तृ.एव 'ना' – का वीप्सात्मक रूप।

नाभि– स स्त्री, उत्पत्तिस्थान, मूल, मध्य, √ नभ् बन्धने नाभ् 'इ'। तु 'नभात्'> 'नपात्', अ. Naval, Nephew, Niece.

नाम– स न, 'सञ्ज्ञा', ज्ञामन् – 'पहचान' >नामन्।

नारी – स स्त्री, 'महिला', √ 'नार्'; – 'ई'।

नार्मर – स पु 'एक व्यक्ति विशेष, नृमर का पुत्र'।

नौ – स स्त्री, 'नाव'। तु अ NAVY; NAVAL, प्रा फा नाविया (आप) = नाव्या।

तु स्नार नार (अयण) – स्ना, स्नु 'आइथ्वेन',

SNOW - स्नै , नल, प्रणाली, स्नायु।

नासत्यौ – स पु (वि), अश्विनो का विशेषण, अवे – 'नाङ्– हथ्य' दुरात्मा (प्र द्वि व)।

सत्यभूतौ – 'न' 'असत्यौ' √ 'अस् भुवि'– 'शतृ'> 'असत्'> 'सत्' (अ–लोप), 'यत्'।

नास् – स पु 'नाक', नास् = अवे० 'नाह्'। नासिका, घ्रोणा, प्राणेन्द्रिय। √ 'अन् प्राणने' 'अस्'> 'अनस्' 'नस्' (अलोप) = √ 'अन् प्राणने' – तु– लै – ANIMA, CURRENT & FAIR, M-AN-AN, BREATH.

नि– उपसर्ग, 'नीचे'; तु NETHER LAND BENEATH.

निष्टप्त – वि पु, 'पूर्णतया जलाया गया'।

निचित – वि पु, 'प्रसिद्ध', नि – √ 'चित्' सञ्ज्ञाने' – अ; – त.।

निजुर –

(नि) जूर्व् – 'हिसा करना', तुर्व, थुर्व, धूर्व, = जूर्व। निजूर्वति।

नित्य – वि पु, 'सतत, शाश्वत, स्थिर'।

निद् – वि पु, 'निन्दक', √ 'नन्द्–'क्विप्'।

निसद् – दा।

निसद्य – 'बैठकर', √ 'सद् बैठना' – 'ल्यप्'।

निहन्तवे – तु 'मारने के लिए'।

निहित – 'स्थापित, रखा गया', – √ 'धा' 'हि'> 'त'। – त.। प्र. एक.।

नीचा – नि, 'नीचे की ओर'।

नु – नि,'सचमुच, अब', तु. 'नु कम्, नूनम्'; 'नू' = NOW; 'नव' = NEW.

नूनम् – नि, 'अब, सचमुच', अवे. – नूनम, नुराम्, नुरॅम्।

नूतन – वि पु., 'नया, नवीन'। 'नू' = NEW.

नृचक्षस्–वि पु, 'मानवदृष्टर्', √ 'चक्ष' – 'अस्'। –स .।

नृ – द्र 'नर'।

नृजित्– वि०पु०, 'मानवजयिन्, मानवो को जीतने वाला'।

नृपति– स० पु०,'राजा,'नरपति, शासक, स्वामिन्'।

नृतु– वि०पु०, 'नचाने वाला, नाचने वाला'।

नृतो–

नृपाय्य– म्

नृम्ण– स०न०,'पौरुष,सामर्थ्य, मानवीयता'।

नृम्णवर्धन–वि०पु०,'पौरुषवर्धक, सामर्थ्यवृद्धिकृत्।

नृवाहन– वि०पुं०,'मानव नेतृत्वकर्तर्'।

नेतर्– वि०पु०, 'नेतृत्व करने वाला, अग्रगामिन्', √ 'नी नयने'– 'तृच्'।

नेमि– 'परिधि', √ 'नम् प्रह्वत्वे'–'इ'।

नेष्ट्र– स०पु० (वि०), 'अग्नि का आनयन करने वाला, पुरोहित विशेष'।

नेष्ट्रम्– स० न०, 'नेष्टर् का कृत्य', √ 'नी नयने'– नेष्– 'तृच्'।

प

पक्व– वि०पु०, 'पका हुआ, प्रौढ', √ 'पच्'–व, = 'क्त'।

पचन्त्– वि०पु०,'पकाता हुआ', √ 'पच्'–'शतृ'।

पञ्च– सख्या, पॉच अवे पन्च अ Five

पञ्चरश्मि– सख्या, 'पॉच', रज्जुओ वाला, पॉच

रश्मियो वाला'।–म्।

पञ्चाशत्– सख्या,'पचास',पञ्च–दशति'दश–दश के पॉच ग्रुप' >पञ्चाशत्–FIFTY.

पतर्– वि०पु०,'पालक', √ 'पा रक्षणे' >'प'। धातुविकारार्थ

तु०–पितर्, पुत्र।

√ 'पत् गतौ'–पतसि, पत्यसे।

पति –वि० पु०,'स्वामिन्', अवे–'पइति'।

पथ– स० पु०,'मार्ग, रास्ता', √ 'पथ् गतौ' पत्, अवे०– 'पन्तन्'।

पथिन्–स० 'मार्ग, पथ, पन्थन्'।

पन्थान–द्र०–'पथिन्'। पथा– पथिभि·। द्र०–पथ–पथिन्।

पथिकृत्–वि०पु०,'मार्गकृत्, मार्गनिर्माणकृत्।

√ 'पन् स्तुतौ'–पनन्त।

√ 'पा पाने'–पपिरे, पप्तन, पप्तु।

पणि–'व्यापारिन्,व्यवसायिन्', √ स्पान् = 'बढना,

पवित्र होना, लाभदायक होना, वेट होना',

श्वि>श्वन् =स्पन् स्पॅन्त–BENEFIT,BENEFICIENT,> स्पन्त्

शूद्र = हइति, पुन् > पुण्य, पुनीत, शिव, शेव–PIOUS,

PUTY > 'पन्' पुनीति–NICE, BEAUTY, HANDSOME,–√ पन् 'इ'।

√ 'प्रथ् फैलना'– तु०–'पृथु' = BROAD, पप्रथत्, पप्रथत्, पप्रथे।

पप्रि–वि०पु०, 'परक, पूर्णकृत्, पूर्णकर्तर्', √ 'पृ'–'कि'।

पयस–जल, दुग्ध', अवे०–'पयह्'। √ 'पिब' 'पि'–'अस्'।

परम–वि०पु०,'सर्वोच्च, श्रेष्ठ', √ 'पृ'> 'पर'–'म'।

परावृक्–स० पु०,'एक राजा का नाम','परा'–√ 'वृज् वर्जने'–'क्विप्'।

परि–उपसर्ग, 'चारो ओर, परित', अवे०– 'पइरि'।

परिगत्य–'जाकर', √ 'गम्'–'ल्यप्'।

परिज्मन्–स०न०, 'परिभ्रमण, परित √ गमन',– √ 'गम्'

'जम् गतौ'–'मन्'।

परिभू– वि०पु०, 'परित रहने वाला, रक्षक, समर्थ, व्यापक',

√ 'भू'–'क्विप्'।

परिभ्वे– तु०'सभी ओर स्थित होने के लिए'।

परिरप्– वि०पु०–'निन्दक, चुगलखोर, विकत्थनकृत्', √ 'रप्',

'लप्'– कर्तरि 'क्विप्'।

परिवृत्त– वि०पु०,'चारो ओर से आवृत, सभी ओर से घिरा

हुआ', √ 'वृ आवरणे' 'क्त'।

परिसिक्त–वि०पु०,'चारो तरफ से आर्द्र, सुसिञ्चित, √ अभिषिक्त', 'सिच्'–'क्त'।

परिस्थित–वि०पु०,'सर्वत्र स्थित,व्याप्त,प्रसृत'।

पर्वत– त,–म्,–ता,–तान्, –ते,–तेषु,–तै।

√ 'पृ'– CROSS 'पार होना', पर्षि पिपर्तु, पारमथ,

पारयतम्, पीपरत्, पृणात।

√ 'पू'– बहना। पवते।

पशु > fu – अवे०–'पसु', पउा, √ 'पश बन्धने'– 'उ'।

पश्चा– 'पीछे से', पश्चात्–अवे० 'पस्कात्', पर्ष्णि–एडी –अवे०–'पास्न'।

पश्चात्– द्र०–'पश्च'। √ 'पृश' 'पिछडना' BACK, LACK.

पाक्या– 'अपरिपक्वता, मन्द मति'।

पाजस्– स०न०, 'तेज, शक्ति, बल, सतह, आकृति'। अवे०–

'पाजह्वन्त्'।

पाणि– स० पु०,'हस्त, कर, हाथ', अवे० 'पॅरॅना' = पृणा =

PALM पार्णि पाणि।

√ 'पा पालने'– पान्तु, पातम्, पान्ति, पातवे,।

पातवे– तु०–'पीने के लिए', पाति = अवे०–पाइति– 'रक्षा करता है'।

पात्रम्– (i) पात्र–'पीने का साधन'–POT

(ii) रक्षण–√ 'पा रक्षणे', अवे०–'पाथ्र' आ० फा०–

'पहरा' = PROTECTION.

पाथस्– स० न०, 'पात्र', अवे०–'पाथ्र' 'पहरा', (ii) 'पाथेय'।

√ 'शिव' फ्यु– 'प्रवृद्ध करना' प्स्न्य, पितु,

पाथस् = FOOD, FODDER.

पाद– स० पु०, ' पैर'–'द्विपाद्–BIPED चतुष्पाद्

-QUADRAPED अष्टापाद् OCTOPED चतुर् > FOUR तु० SQUIRE.

पायु– वि०पु०,' पालक, रक्षक, पालनकर्तर, पोषणकृत्'। अवे०–

√ 'पा' 'पालने'–'यु'।

पार– क्रि० वि०, 'दूसरी ओर, अन्य छोर पर', √ 'पृ'–, अवे०–

'दूरएपार' (दूर उस ओर'), तु०– अ०–' PAREXCELLENCE'
अति सुन्दर'।
पार्थिव–वि०पु०, 'पृथिवी सम्बद्ध', √ 'प्रथ्' 'पृथु'– 'पृथ्वी'–
'पृथिवी', 'अण्'।
पावक –वि०पु०,'शोधक, पवित्र करने वाला'। √ 'पू शोधने'–।
पाश– प्र० बहु०, बन्धन', √ 'पश् बन्धने'।
पितर्–स० पु०,'पालक', पितर–अवे० 'पितर'– FATHER
√ 'पिश्–अवयवे'–'अलकृत होना'। पिपिशे।
√ 'पिन्ष् पेषणे'– पिपेष।
√ 'प्या वृद्धौ'– प्यायस्व। पिप्यताम्, पीपयत, पीपाय।
पिप्युषी– वि०, 'पिलाने वाली'', √ 'पिब्' 'पि'–'क्वसु'–'ङीप्'।
म्। पिप्रु, पिप्रुम्।
√ 'पा पाने' 'पिब्'– पिबे, पिब, पिबत, पिबेतम्, पिबतम्
पिबतु, पिवा, पिब।
पिशङ्गरूप – श्वित् > पिश–ग,' पिगल, कपिल', तु०–पाण्डु,
पाण्डुर, पाटल, पीत, पलित, शोण, धवल, धौत,
विशद।
पिशङ्गसदृक्–'श्वेत वर्ण रूप वाला', √ 'श्वत्' = WHITE >
पुण्ड्र–पाण्डर–पाण्डुर, पटिल, पिगल, पिशङ्ग, पीत।
पीति–स० स्त्री०, 'पान', √ 'पिब्'– 'पा'> 'पी''ति'।
पीयूष–स० नपु०, ' सद्य प्रसूत गोदुग्ध, अमृत', √ 'पा पाने'–
'पेय', √ 'उष् दाहे' >'ऊष'> 'पीयूष'।
पीयु–वि०पु०, 'हिसक', √ 'पीय्'– हिसा करना।
पुत्र–'पुत्र, सूनु, अपत्य, तोक', √ 'पा रक्षणे' 'पित' 'पितर्' 'पुत्'–'र'।
पुनर्–'फिर', √ 'पृ पूरणे'>'पृण्'।
पुनाना–'पवित्र करती हुई', √ श्वि 'लाभकारी होना, बढना,
पवित्र होना, वीर होना'> पूवन् = अवे०– स्पन् >स्पन्त
BENEFICIENT, HOLLY, FUND, FIND,पुण्य, पुनीत, पवित्र।
पुरस्– 'आगे, समक्ष, सामने'–BEFORE
पुरोहित– स० पुं०, 'आगे स्थिर, ऋत्विक्' PRIST
पुरन्दर– वि०स०प्र०,'पुर विदारक, इन्द्र' √ 'दृड् विदारणे' 'अ'।
पुरधि– वि० स्त्री०,'सुन्दरी स्त्री, रूपवती'।
पु०– 'एक व्यक्ति का नाम'। 'एक देवता का नाम'।
पुरा– अवे० 'परा, फॅरा'। 'पहले'।
पुरु– 'बहुत, प्रचुर', अवे०–'पउरु,पओउरु। ग्री०–POLUS लि० PILUS, PLUS-POLI– (अं०)।

पुरुकृत्– वि०पुं०, 'प्रभूतकर्मकर्तृ, कर्मनिष्ठ, अतिकर्मन्'।

पुरुक्षुभ्–

पुरुचन्द्रस्य– वि०पु०,'प्रभूत आच्छादक, अतिकान्त'।

पुरु– वि०, ' प्रभूत, अधिक'। अवे०– 'पोउरु'= POLI

पुरुत्रा– 'अनेकत्र, बहुत स्थानो पर'।

पुरुपेशा– वि०स्त्री०, 'अनेकरूपा, बहुरूपा, अनेकविधा'–
POLIFACED.

पुरुरूप– वि०पु०, ' अनेकरूप, बहुरूप, प्रभूतविध, बहुविध'।
√ 'वृप्'– ऊपर उठना,वर्पस् = अवे०–
'वरॅपह्' 'रूप'।

पुरुवसु – वि०, 'प्रभूत धन, बहुधान्यसम्पन्न, अतिशय– धनयुक्त'।

पुरुवार– वि०पु०,' बहुवरणीय, अनेकश वरणीय, बहुतो के द्वारा वरणीय', √ 'वृ वरणे'–

पुरुवीर– वि०पु०, बहुवीर, अनेक वीरयुक्त, प्रभूत पुत्र–संयुक्त'– ।–स्य, रा ।

पुरुस्पृह्– वि०पु०, 'बहुतो द्वारा चाहा गया, अतिस्पृहणीय,
अतिकाम्य'। √ 'स्पृह्'–'क्विप्'।

पुरुहूत– वि० पु०,'बहुतो के द्वारा आहूत, बहुस्तुत, इन्द्र'।

पुष्टि– स० स्त्री०, 'पोषण, पोषकतत्व, समृद्धि' √ 'पुष्'– 'क्तिन्'।

पुष्पिणी– वि० स्त्री०, 'पुष्पवती, पुष्पमयी'। √ 'पुष्'>'पुष्प',
'पुष्पिन्'–'डीप्' ।–णी ।

पुष्यन्– वि०पु०, 'पोषण करता हुआ', √ 'पुष्'– 'शतृ'।

पूर्ण– वि०, 'पूर्ण, भरा हुआ, पूरा', FULL,(COM-) PLETE,
FILLED,– स०– 'पूर्त', अवे० 'पॅरॅन्'। √ 'पृ पूरणे''।

पूर्व– वि०, 'पहले का, प्राचीन, पहला'। √ 'पृ'– 'व',अवे०– 'पओइर्य' 'पओउर्व'।

पूर्वसू– वि० पू०, 'पूर्वप्रसू, प्रथमप्रसवकरिणी'।

पूर्व्य – वि०पु०, 'पूर्वकालीय,' अवे०–'पओइर्य,' पओउर्व'।

पूर्– सं० स्त्री०, 'पुरी, नगर'।

पूषम्– स पु०, 'पोषक, पशुरक्षक देव, मार्गदर्शक देव'।
√ 'पुष्'–।

पृक्ष्– स० स्त्री०, 'बलवर्धक अन्न,' √ 'पृच् सम्पर्के >' √ 'लक्'
'लक्ष्'> 'लक्ष्मी', 'लक्षण'> 'लाञ्छन', लग् लिङ्, पुञ्जम्,
पिञ्जूल, पृक्थ =PROPERTY ऋक्थ =RICHES, LOT, SAFE, FORTUNE, LUCK.
√ 'पृछ'– 'पूँछना, प्रश्न करना'। पृच्छ, पठ्, रट् = READ,
QUESH, ASK, READ, प्रश्न = QUESTION पाठ = LESSON

पृतना– ना ,–सु, –पृत्सु।

पृथक्– 'अलग, भिन्न'। √ 'वृश्'– अलग होना, छोटा होना,

बगल होना, फेकना, पीछे होना, पृषत्–पृथक्।

स्तोक– थोडा।

पृथिवी (इति) – √ 'पृथ्' 'प्रथ्'– 'उ'— 'डीप्'। 'भूमि'। –म्,

व्याम्, –व्या ,वि०, 'पृथ्वी EARTH (अ०)।

पृथु वि, 'विशाल, महान्, बडा', √ 'पृथ्',– 'प्रथ्'– 'पृथ्'– 'उ' फैलना।

थु ।–म्।

पृथुपाणि– वि० पु०, ' विशाल हाथ वाला' (बहु० समास), 'पण्'–पाण्– 'इ' ।

पृथुस्तुका–

पृश्नि– स० स्त्री०, 'नानावर्णा भूमि, पृषती, बिन्दुमती–SPOTTED.

ईषत् = SLIGHT

पृषद्–बिन्दु–√ वृश्–पृथक होना छोटा होना> SPOT

पृषदी– वि०, 'चित्रला, बिन्दुमती, SPOTTED.'

पुषदश्व–वि० पु०, ' चित्रलाश्व'।

पृष्ठम्– स० न०, 'पीठ', √ 'पृश'– 'अलग होना, छोटा होना, बगल होना,

पिछ्डना'– √ 'पृश्'– 'थ' 'पृष्ठम्'। 'तु०– पुच्छ,

पार्ष्णि, पश्च।

पेशस्– 'स्वरूप, सरचना'। अवे०– 'पएसह' 'पिश्'।

पोत्र– स० न०, 'पोतर् ऋत्विक् का कृत्य'। √ 'पू' । पवितर्–

पोतर्।

पोष– स० पु०, 'पोषण, पुष्टि, सम्पत्ति', √ 'पुष्'।

पौंस्यम्– स० न०, 'पौरुष', पुस्।

पौर– 'पुरवासी'।

प्रकुपितान्– वि०पु०, 'विक्षुब्ध, चञ्चल, भ्रमणशील', √ 'कुप्'–

'क्त', द्वि० बहु०।

प्रकेतम्– स० न०, 'प्रज्ञान', 'प्र' – √ 'कित् सज्ञाने'– 'अ'।

प्रचेतस्– स० पु०,'प्रकृष्ट चित्त वाला' (बहु व्री०), 'चित्'– 'असुन्'।

ता, प्र० एक०।–सः।

प्रजानन्– वि० पु० 'जानता हुआ', 'प्र' –√ 'ज्ञा'– 'शतृ'– प्र० एक०।

अवे०– 'क्श्ना' अ० KNOW– ज्ञ, स०– –'स्नातक',

'निष्णात', ज्ञा।

प्रजा– 'सन्तान, लोग, जन', 'प्र' √ 'जन् प्रादुर्भावे'– 'ड'– 'टाप्'।

भि', –भ्य ।

प्रजावत्– वि०पु०,' प्रजायुक्त'– 'वतुप्',–वत.।

प्रतरण–वि० पु०, 'पार लगाने वला', 'प्र'– √ 'तृ तरणे'– 'ण्वुल्'।

प्रतरम्–

प्रति– उपसर्ग, 'विरोध मे, उलटा'।

प्रतिमानम्– वि०न०, 'प्रतिकृति, आदर्शरूप',– √ 'माड्माने'ल्युट्'।

प्रतरण– वि० पु० पार लगाने वाला, 'प्र' तृ तरणे 'ज्वुल'।

प्रतरम्

प्रति– उपसर्ग विरोध मे उल्टा

प्रतिमानम्– विन० 'प्रतिकृति, आदर्शरूप माड् माने'–ल्युट।

प्रत्न– वि०, 'प्राचीन'।

प्रत्नथा– क्रि० वि०, 'पहले की तरह'।

प्रत्यङ्– वि०, 'अपनी ओर, सम्मुख, समक्ष'।

प्रत्यञ्चम्– वि०, 'सामने की ओर मुडा हुआ', द्वि० एक०।

प्रधय– वि० प्रु०, ' अग्र्य, अग्रिम, पहला, श्रेष्ठ'। अवे०– फ्रतॅम

= FIRST

ब

बर्हिष्–स० न०, 'कुश, कुशासन', √ 'ब्रश्च्' (काटना), यद्वा,
√ 'बृह वृद्धौ',> 'बर्ह्'–'इष्' । अवे०– बरॅजिश् आसन्, शय्या' ।
बर्हिसद्–वि० पु०, 'कुशासन पर स्थित', √ 'सद्'–'क्विप्',
√ 'सद्, सीद्' = SIT, 'स्था' STAND.
बहु–वि० पु०, 'प्रभूत, अत्यधिक, अतिशय', √ 'बह्, बह्'
(अधिक होना) – 'उ' । तु०– बह्यस् = अवे०– 'बह्यह्',
इष्ठन् बहिष्ठ ।
बहुल–द्र०– 'बहु' ।
बहुसूवरी– वि० स्त्री०, 'बहुप्रसविनी, अत्यधिक प्रसव–
कारिणी,अति जन्मदायिनी', √ सू'जन्म देना',–
'वर'– 'ई' । 'प्र'–√ 'सव्' = PERCEIVE.
बिभ्रत्–वि०पु०,'धारण करता हुआ,' BRINGING, BEARING,
√ 'भृ'–'शतृ' ।
बिल्म–स० न०, CHIP (OF WOOD),चिप्पड, टुकडा' ।
बुध्न–स० न०, 'मूल,आधार, गहराई', अवे०– बुन्द> बून,
= BOTTOM, अवे०– 'बुध्नधात > 'बुनियाद' ।
बुध्न्य–वि०पु०, ' मूलीय, आधार सम्बद्ध' ।
बृहत्–वि० पु०, √ 'वृह्,'बृह (ऊँचा होना) – 'शतृ', = वृध् > वृह्
(=वृध्), तु० BIG, GREAT, HEAVY HIGH, HUGE, LOFTY,
वृध् >ELEVATE, OLD, BOLD.
बृहद्–दिव– वि०पु०, 'प्रभूतकान्त, अत्यधिक कान्तिमय' ।
बृहस्पति–स०पु०, 'देवगुरु की सञ्ज्ञा, मन्त्रप्रेरक, देवविशेष' ।
ब्रह्मन्–स० न० 'मन्त्र, ईश्वर', √ 'बृह'– 'मन्', बृध्=बृध्, > बृह् ।
बह्मण्यन्–वि० पु०, 'मन्त्र की कामना करता हुआ', 'ब्रह्मन्'–
'क्यच्'– 'शतृ' ।
ब्रह्मद्विष्ट्–वि०पु०,'मन्त्रद्वेषिन्, यज्ञद्वेषिन्, ब्राह्मणद्वेषिन',
'द्विष्'–'क्विप्' ।
ब्रह्मपुत्र– वि० पु०, 'ऋत्विक् का पुत्र' ।
√ 'ब्रू 'कहना, बोलना' = अवे०– 'म्रू', TELL, TALK, ब्रूते, ब्रुवीत ।

√ बाध्– 'दूर करना, हटाना, भगाना, बाधित करना'– बाधसे, बबाधे।

बाहु– स०पुं०, ' भुजा, हाथ,' अवे०– 'बाजु'। √ 'भज् पालने'>
बह् > बाह्– 'उ'।

भ

भग–स०पु०, 'देव–विशेष,' 'भागवितरक', √ 'भज्'– वितरण करना
'अ',> भज् > GIVE > भिक्ष, > BEG, > भक्ष् 'खाना',
भक्तम् = GIFT.

भद्रवादी– वि०पु०,' मङ्गलकथनकृत्, कल्याणशसिन्', √ भद्
'कल्याणकर होना,, सुखकर होना'– र, भद्र वदतीति–
'भद्र'– √ 'वद्'– 'घञ्' > 'वाद', इनि।

भय– स०पु०, ' डर, सन्त्रास', √ भी 'डरना' >।। √ 'भी' > 'भ्यस्' >
'व्यह्' > 'व्यग्र', √ 'विज्' >–विग्न'।

भरत–'भरणकृत' पोषक, अग्नि', √ भृ 'भरण करण, पोषण करना'– अतच्।

भर–स,पु०, 'युद्ध, सघर्ष', अ० WAR.

भवीत्वा–'होकर, भूत्वा'।

भाग–स० पु०, 'अश, हिस्सा, बॉट', √ भज्''भग्'>GIVE,
भक्ष् > 'खाना',भिक्ष् >BEG, 'भज्' 'अ'।

√ 'भा–चमकना' भाति, भासि।

भाजयु–वि०पु०, 'भागप्रद, अशदायिन्', भाग >'भाग–
√ 'यु' मिलना', णिच्, क्यच्।

भानु–स० पु०, 'सूर्य, रश्मि, कान्ति,' √ भा 'चमकना'– 'नु'।

भारत–वि० पु०, 'कान्तिमय, कान्त, प्रकाशयुक्त', भरत'>
'भारत', यद्वा, 'भा' √ 'रम्'– 'क्त'।

भारती–स० स्त्री०, 'वाणी की देवता', 'भा'– 'रत'– –'ई' यद्वा,
'भरत'> 'भारत'– 'ई'।

भास्–स० स्त्री०, 'कान्ति', √ भास् 'चमकना'– 'क्विप्'।

भृगु–स०पु०, 'ऋषिविशेष', भगव भृगुकुलीय', √ 'भ्रस्ज्
पाके,' > 'उ', 'भ्रस्ज्' >'वञ्ज्', तु०– 'प्रवर्ग्य', 'प्रवृञ्जन'।

भृथे–

भृमि–स० पु०,' भ्रमणशील,, प्रलापी'।

भेषज्–स० पु०, 'औषधप्रद, उपचारकृत्', भिषक् = अवे०–'
आइविसक,' > 'भिषक्' >'भेषज'('औषध)। 'भैष–ज्य' (='चिकित्सोपयोगी')।

भोजन– स०न०, 'खाद्य, अन्न', √ भुज् 'खाना' – 'ल्युट्'।

भोज–स०पु०, 'पालक यजमान, उदार, दानकर्तर', √ भुज् 'पालन करना' >।

भाजद्–ऋष्टि– वि०पु०, 'कान्त भाले वाला, चमकते हुए भाले
वाला', √ भ्राज् दीप्तौ,– 'शतृ', 'ऋ'> 'ऋष् प्रहारे– 'ति'। 'ऋष्टि' > 'लष्टि'।

भात्र–स० न०, ' भ्रातृभाव, सखित्व,' 'भ्रातर्' 'भ्रातर्' – तु० अ० BROTHER>

√ 'भ्रीण्'–'हिसा करना' √ 'वृन्' (हिसा करना) व्रण, > वाण,>
'भ्रीण्'। भ्रीणन्ति।

√ 'भिक्ष्'–'मॉगना' >BEG; द्र 'भ्रज्'। भिक्षे।

√ 'भिद्'–'विदीर्ण करना, तोडना, भेद करना' भिनत्।

भियस्–स न, 'भय, सन्त्रास', √ "भी" डरना"– 'अस्',
'भयस्> 'भियस्'।

भीम–वि पु, 'भयकर, भयावह', √ 'भी' (डरना) – 'म'।

भीरू–वि पु, 'भयशील, डरने वाला', √ 'भी' – 'रू'।

√ 'भुञ्ज्'–भुञ्जते।

भुवन–स न, 'लोक, प्राणी', √ 'भू' – 'क्युन'।

√ 'भू' (होना) = BE; भुवत, भूत, भूतु।

भूत–

भूमन्–स न, 'पृथ्वी, भूमि', √ 'भू' – 'मन्'। द्र – 'भूमि'।

भूमि –स स्त्री, 'पृथ्वी', √ 'भू'– 'मि'।

भूरि–वि पु, 'पर्याप्त, अतिशय, अधिक, बहुल', 'भू' – 'रि', यद्वा 'भृ>' 'भूर'– 'इ'।

भूरिस्–वि पु, 'भूरि का तुलनात्मक रूप, पर्याप्ततर'।

भूरिऽअक्ष–वि पु, 'प्रभूत नेत्र, अनेक ऑखो वाला'।

भूरिदावन्–वि पु, 'प्रभूतदानप्रद, अतिदानिन्', √ 'दा दाने'– 'वन्'।

म

मनस्वान्–वि पु , 'मनस्विन् उदात्तमनस्।

मनीषिन्–वि पु , 'विचारवान्, चिन्तनशील', 'मनस्'– 'ईसा' (इष् + इष् = 'ईषा') – 'मन की इच्छा'; 'इच्छावान्' ।

मनुष्–स पु , 'मानव, मनुष्य',>HUMAN (विपर्यय)।

मनुष्वत्–'मानवसदृश' ।

मनोतर्–वि , 'मानने वाला', √ 'मन्' (मानना, विचार करना) – 'तृच्' ।

मन्त्र–स पु ; 'चिन्तन, पवित्र छन्दस्', √ 'मन् विचारणे'–त्र', अवे – 'माथ्र' ।

√ 'मन्द्'–'प्रसन्न होना, हर्षित होना' ।

मन्दन्तु, मन्दस्व, मृमन्द', ममाद, मादयस्व।

मन्दसान –वि पु , 'प्रसन्न होना हुआ'–।

मन्दिन् –वि पु , 'हर्षयुक्त, प्रसन्नता युक्त', √ 'मन्द् हर्षे'– 'णिनि' ।

मन्द्र –वि पु , 'धीमा, मधुर, शान्तमधुर' ।

मन्यमान –वि पु , 'मानता हुआ', √ 'मन् विचारणे' – 'शानच्' ।

मन्यु –स पु , 'विचार, चिन्तन, क्रोधपूर्ण चिन्तन', अवे 'मइन्यु' (= 'आत्मा')।

मन्युमी –वि पु , 'क्रोधसहारक', √ 'मी हिसायाम्'– 'क्विप्' ।

√ 'मह्' –'पूजा करना, समादृत करना, बडा होना', मृमह ।

मयोभु –वि न , 'सुखकर, आनन्दप्रद', 'मयस्'– मी– 'अस्'; 'मय भावयतीति' ।

मरूत –स पु , बहुवचन – मरूत 'देवगण विशेष', √ 'ब्रू' = अवे. – 'म्रू शब्दे' > 'मरूत् मुरली, मुख, मूक।

मरूद्गण –द्र. – 'मरूत' ।

मक्षु –क्रि वि , 'शीघ्रतापूर्वक, शीघ्र', अवे – 'मत् – शु', मोषु >मक्षु; श्च्यु 'जाना' च्यु, शु, तु. 'आशु', 'शव' (='गतप्राण')।

मघवन् –वि पु , 'धनयुक्त, धनिन्', मिघ > मघ् अवे मजह्, मिज्द = मीढ 'धन',> मूल, मूल्य।

मत् –

मति –स स्त्री , 'विचार, चिन्तन, स्तुति'; √ 'मन् विचारणे' 'क्तिन' ।

मत्सर –वि.पु , 'मदकर, ईर्ष्या' ।

मद –स.पु , 'प्रेरणा, उत्तेजना, नशा'; √ मद् 'प्रसन्न होना' >।

मदिर –वि पु., 'मदकर, हर्षप्रद, उत्तेजक, उत्तेजनाकृत्, प्रेरक'; √ 'मद्' – 'इर' ।

मद्य –वि पुं., 'मदकर, नशीला, उत्तेजक', 'मद' – 'य' ।

मधु –स न , 'मादक पेय, सोम', अ – MEAD, MEDU; √ 'मद्' – 'उ' ।

मधुधार –स पु ; 'मधु की धारा'; √ 'धाव्'–'र' 'धार' ।

मधुपृक् –वि पुं., 'मधुमिश्रित, मधुमय'; √ 'पृच्' – संयुक्त होना – 'क्विप्' √ 'पृच्' 'लग्न्', 'लिंङ्ग'; चिपिट, पुञ्ज, पञ्जर।

मधुमत् –वि.पु , 'मधुयुक्त' ।

मध्यमवाट् –वि पु , 'मध्यम' ।

मनस् –स.न , √ 'मन् विचारणे' – 'अस्'; अवे.– 'मनङ्ह्'= MIND.

मनु –स.पुं , 'एक शासक पूर्व पुरूष'; √ 'मन्' – 'उ'; (ii.) 'मानव, मनुष्य, मानव जाति' ।

मनुवत् –'मनु के समान'।

मरूत्वान्–वि पु, 'मरूतो से युक्त'।

मर्त –स पु, 'मानव, मनुष्य', √ 'मृ प्राणत्यागे' – 'त'।

मर्त्य –स पु, 'मानव, मनुष्य', √ 'मृ'–'त', 'य'।

मर्मृजेन्य –वि पु, 'मार्जन योग्य, पुन पुनर् शुद्ध करने योग्य', √ 'मृज् शुद्धौ' 'केन्य'।

मर्मृज्यमान –वि पु, 'बार–बार शुद्ध किया जाता हुआ', √ 'मृज् शुद्धौ' –'कानच्'।

मर्यश्री –स स्त्री, 'मानवसौन्दर्य', √ 'मृ प्राणत्यागे' – 'य', 'श्रयते इति, श्री'–√ 'श्रि' – 'ई', तु – अ. SIRE, SIR.

मह –वि पु, 'महान्, बडा, ऊँचा', √ 'मघ्' >'मह्' – 'अ'।

महत् –वि, 'विशाल, बडा, ऊँचा', √ 'मघ्' ('बडा होना') मघत् महत्, तु.– MIGHTY, MAY.

महि –वि न, 'विशाल, बडा, ऊँचा', √ 'मघ्' > 'मह्' – 'इ'।

महित्व –स न, ' महत्ता, गुरूत्व, गरिमा, ऐश्वर्य'।

महित्वन –स न, द्र – 'महित्व'।

महिष –वि.पु, 'महान्, बडा, गुरू'; √ 'मघ्' 'मह्'> – 'इष्' – 'अ'।

महत् –वि पु, √ मह् 'ऊँचा होना, बडा होना' – अत्।

मही –'मह का स्त्रीलिग रूप।

मा –नि, 'मत, नही'।

मातर् –स स्त्री, 'मॉ, जननी', √ मा 'निर्माण करना' – तृच्।

मात् –स पु 'माप, परिमाण', √ मा 'नापना' – क्विप्, तुगागम।

मात्रा –स स्त्री, 'स्वरूप, रूप, शरीर, रचना', √ मा 'निर्माण करना' =MAKE; – त्र – टाप्।

मानुष –वि.पु, 'मानव सम्बद्ध, मानवीय'।

मान –सं न, 'माप, परिमाण, मानक'; मा 'मापना'– MEASURE – ल्युट।

माया –स. स्त्री, 'निर्माण, अवास्तविक निर्माण'; √ 'मा' = MAKE – 'य' – 'आ'।

मायाविन् –वि पु, 'मायामय, कपटाचरणयुक्त, असत्य, अवास्तविकतामय', 'माया' – 'विनि'।

मायिन् –वि पु, 'मायावान्, मायामय', 'माया' – 'इनि'।

मारूत – वि पु, 'मरूत्सम्बद्ध, मरूद्गणीय'।

मार्तण्ड –स. पु., 'आदित्य, सूर्य'; मृत अण्ड > 'मार्तण्ड'।

मास् –स. पु, 'चन्द्रमास्', √ 'मा' = MEASURE – 'अस्' ('कालमापक')

मित्र –स पु; 'सूर्य', √ 'मित्' = MEET – 'र', 'मिल्' 'मिथ्' – तु– 'मिथस्' = MUTUAL;> 'मिथुन' >TWIN 'मिथ्या' =MIS –, 'मेथि', 'मथु–र', 'मिथि–ला'; अवे– 'मएथन'='मठ', मिष्, मिश्र्, मिल्= MIX; म्लिष्, म्लेच्छ।

मित्रमह –वि पु., 'मित्र के सदृश महान्, मित्र के सदृश तेज वाला'।

मित्रावरूणा –स पुं., द्वि व.; –'मित्र और वरूण'।

मित्र्य –वि.पु., 'मित्र सम्बद्ध'; 'मित्र' – 'य'।

मिथुदृशे –वि.पु. द्वि व; 'साथ–साथ दीख पडने वाले, युग्म रूप में दृश्य'; √ 'मित्' = MEET 'मिथ्', मिथु 'साथ–साथ', तु. –

मिथुन TWIN.

मिनन् – वि पु ,'हिसित करता हुआ', √ 'मी हिसायाम्' 'शतृ'।

मिमान –

√ 'मिह्–सेचने' – मिमिक्षे।

मिह –वि पु , 'सेचक, वर्षक', √ 'मिघ् सेचने', √ मिह् सेचने तु—'मेघ' = अवे – 'मएघ'।

मीढवस् –वि पु , 'सेचक, वर्षक, प्रदातर्', √ 'मिह्' – 'क्वसु'।

√ 'मी' –मीयते, मिमय, मिनाति, मिनन्ति।

√ 'मुञ्च् छोडना' –मुञ्चथ, मुमुग्धि।

√ 'मुह्' –'मुग्ध होना, मूढ होना'।

√ 'मुद्' –'प्रसन्न होना'। मोदते।

मुष्णन् –वि पु , 'चुराता हुआ', 'मुष्' ('चुराना') – 'शतृ', तु 'मूषक' = MOUSE.

मुहुस् –नि , 'बार–बार, अनेक बार, पुन पुनर्'।

मूर्धन् –'शिरस्, शीर्षन्, उच्च बिन्दु, शिखर', कमर् 'लचीला होना, कोमल होना, वर्तुल होना' > अवे 'कमॅरॅधन्';> मूर्धन् 'दएवशिरस्' 'वर्तुल अग्'> 'मुण्ड', तु– 'कमण्डलु', 'कमर्थ'>'कमठ', 'कपर्द'> 'कपाल', 'कर्परखर्पर', 'कपोल', 'कोमल', 'केन्द्र', 'मध्य' इत्यादि।

मृग –स पु , 'पशु', अवे– मॅरॅग 'पक्षी', √ 'मृज्' 'मृग'।

मृगयस –वि पु , 'पशुओ का शिकारी' = 'शिकार का पशु'।

√ 'मृळ' –'क्षमा करना', 'मृष्' > 'मृष्द' 'मृड' (='भूलना, क्षमा करना'), मृळ. मळत, मृळयत, मृल्ळयाति।

मृळयाकु –वि पु , 'क्षमाशील, दयालु', √ 'मृड्' 'मृल्ळ्' 'आकु'।

मृध् –हिसायाम्' – मृध ।

√ 'मेद्' –'गीला करना, घना करना'। मेदयन्तु।

मेधा –स स्त्री., 'बुद्धि, प्रज्ञा, धारणा', अवे– 'मज्दा', 'मनस्' – √ 'धा'।

मेने –इव –

मेहनावत् –वि पु , 'वृष्टिमत्, वर्षक', √ 'मिह् सेचने' 'मेहना', – 'वत्'।

मो – नि , 'मा' – 'उ' = 'मत'।

मोकी –स. स्त्री , 'मोचिका, उद्धारिका, प्रदात्री, रात्रि'।

√ 'म्यक्ष्' –'चमकना, सन्निविष्ट होना'। म्यक्ष।

य

√ 'यत्' – 'फैलाना, (के लिए, का) प्रय ास करना'।

√ 'यक्ष' = 'यज्' – 'पूजा करना'। यक्षत, यक्षि।

√ यच्छ– 'देना' – यच्छताम्।

यजत – वि पु, 'पूज्य, यजनीय, यागयोग्य, यष्टव्य', √ 'यज्' (पूजा करना') – 'अतच्' = अवे– यजत।

√ 'यज्' – 'पूजा करना, यजन करना', यजतु, यजध्वम्, यजस्व, यजे।

यजत्र – वि पु, 'यजनीय, पूज्य, यागार्ह' , √ यज् 'पूजा करना' – अत्र।

यजथ – स न, 'पूजा, यजन, याग', √ 'यज्' – 'अथ'।

यजन् – वि पु, 'यजन करता हुआ', √ 'यज्' – 'शतृ'।

यजमान – वि पु, 'यजन करता हुआ', √ 'यज्' –'शानच्'।

यजिष्ठ – वि पु, याजकतम, श्रेष्ठ याजक', 'यज्वु' का 'इष्ठन्' रूप।

यजीयान् – वि पु, 'अपेक्षाकृत अच्छा याजक', 'यज्वु' का 'ईयसुन्' रूप।

यज्ञ – स पु., 'यजन, पूजा', √ 'यज्' – 'न्'।

यज्ञिय – वि पु, 'यागयोग्य, यजनीय, यागार्ह', √ 'यज्' – 'घ'।

यज्यु– वि पु,'याजक,यजनकृत्, यागकृत, इष्टिकृत्'; √ 'यज्'–'यु'।

यज्वन्–वि पु, 'यजनकृत्, याजक, यागकृत', √ 'यज्'–'वनिप्।

यतस्रुक्–वि पु,स्रुक्=चम्मच ऊपर उठाये हुए,'

'यागतत्पर', √ 'यम्'–'क्त' > 'यत √ 'सृ सर्पणे'–'णिच् > 'क्विप्, तुगागम >'स्रुक्।

यथा – नि जैसे, 'जहॉ, यत्'–'या'।

यदि–नि, 'अगर', 'यद'–'इ'। = अवे येजि, येधि, येइधि।

यम–स पु,'शासक'–,व्यक्तिविशेष, युग्म', √ यम् 'शासन करना'>। तु. अभि–यम् – उ अभीषु। =अवे.–यिम,

येम='युगल'

यय्य–

यवस–स.न 'यव, जौ, अन्नविशेष, घास, तृण।

यविष्ठ–वि पु.,'युवतम, तरूणतम', 'युवन्' का 'इष्ठन्' रूप। = अवे. योइश्त–youngest

यव–द्र –'यवस'।

यशस्तम–वि.पु.,'यशस्वितम, श्रविष्ठ, सर्वाधिक यशस्वी'।

यशस्– (१) 'कीर्त्ति, श्रवस्, प्रसिद्धि'; (२) 'यशस्वी, कीर्त्तिमान्, प्रसिद्ध; √ 'श्रु'–'अस्' 'यशस्'। =अवे स्रवह स्रवङ्ह्, हुस्रेवहा

यष्टर्–वि.पु; 'याजक, यागकृत, यज्ञकर्तर्, √ यज–मान'; √ 'यज्'–'तृच्।=अवे. यश्तर। यहव–वि.पु., 'तरूण, चपल'। अवे यजु, स्त्रीलिङ्ग–येजिवी=यह्वी–'तरूण, अन्तिम'।

√ 'या'–'जाना'–याति, याथः, यामि, यासि, याहि। यातम्।

यात्–राध्य–वि पु,'यथेष्ट समय तक सुखद', यावत्–

याम–स पु,'गमन, सचार, यात्रा', √ या 'जाना'–म।

यामन्– स नऋ, 'गमन, यात्रा, सचार', √ या 'जाना'–मन्।

युक्तग्रावन्–वि पु,'पाषाणो को जोडने वाला, पाषाणो को सयोजित करने वाला', √ 'युज् योगे'–'क्त', 'वृघ्'> 'ग्रावन्'।

युग–'हल का सयोजनाश', (२) 'पीढी'।

युज्–वि पु 'सहायक, मित्र, सुहृद्, √ 'युज् योगे'–'क्विप्।

युजान–वि पु, 'मिलता हुआ, सयुक्त होता हुआ',

√ 'युज् योगे'–'शानच्'।

युज्य–वि पु, 'साथ रहने वाला, अभिन्न, सहायक'।

√ 'युञ्ज्'–युञ्जते, युञ्जाथाम्।

√ 'युज्–योगे'–योजि, योजम्।

युत–स स्त्री०, 'युद्ध'।

युधा–

√ 'युध्–सप्रहारे'–युध्म।

√ 'यु–मिश्राणामिश्रणयो'–युयोधि, यौ।

युवति–स स्त्री, 'जवान स्त्री', 'युवन् का स्त्रीलिङ्ग रूप।

युवन्–स पु, 'युवक, तरूण, जवान', युवन्+युवक > Young;

√ 'यु' मिश्रणे'–'वन्' ।=अवे –युवन् यवन्' यून्।

युष्मयन्ती–वि स्त्री, 'तुम्हारी कामना करती हुई',

'युष्मद्'–'क्यच्'–'शतृ'–'ङीप्।

युष्मानीत–वि पु, 'तुम्हारे द्वारा नेतृत्व किया गया',

'तुम्हारे द्वारा लाया गया',–√ 'नी नयने'–'क्त'।

युष्मावत्–वि पु, 'तुझ सदृश, तुझसे युक्त'। अवे–युश्मावन्त् तुझ सदृश'। मावन्त् √ 'येष्' (गरम होना)–येषम्।

योस्–नि,'विदूरीकरण, पृथक्करण, रोगविदूरी–करण', √ 'यु अमिश्रणे'–'अस्'> 'यवस्'> 'योस्', तु.–"शञ्च योश्च"।

योग–स.पु, 'जोड, आगम, समृद्धि, प्राप्ति', √ 'युज् योगे'–'घञ्'।

योजन–स न, 'योजन, दूरी की मापविशेष', √ 'युज् –'ल्युट्'।

योनि–स स्त्री०, 'स्थान, उत्पत्तिस्थान, गृह, आधार, कारण', √ 'यु अमिश्रणे'–'नि';तु –'यु–वन्',

'यु–वती ।=अवे – यओन (गृह)।

√ 'युष्–'सयुक्त होना मिलना'। योषत्।

√ 'रक्ष्'– रक्षा करना, पालन करना', रक्षति, रक्षत।

र

रक्षस्– स पु, 'हिसक, आघातकृत, राक्षस', √ 'ऋ'

'ऋष्'> 'रक्ष' ('चोट करना')–'अस्'।

रक्षोहन्–वि पु 'रक्षोघ्न, रक्षस् का हन्तर्', 'रक्षस्'

–√ 'हन्'–'क्विप्'।

रक्षितर्–वि पु, 'रक्षक, रक्षाकृत्' √ 'रक्ष्'–'तृच्'।

रघुया–क्रि वि, 'शीघ्रतापूर्वक, शीघ्रता के साथ, शीघ्र ही', 'रघु'–तृतीया ए व।

रजस्–स न, 'प्रदेश, स्थान', 'रज्'–'अस; REGION.

रण्व–वि पु, 'रमणीय, सुखप्रद, अच्छा', √ 'रम्'> 'रण्'–'व'।

रत्न–स न, 'रमणीय धन, रमणीय दान', √ 'रम्'–'त्न', यद्वा, 'ऋध्' रध्।

रत्नधा–वि पु, 'रत्नधारक, रमणीय रत्नधारक',

'रत्न'–√ 'धा'–'क्विप्।

रथ–स पु, 'वाहनविशेष, गमनसाधन, यान–विशेष','चरथ' =CHARIOT;

यद्वा,' √ 'ऋ गतौ' >'र'–'थ'। लै –ROTA प्राउज –RAD–

रथ्य–वि पु, 'रथ से सम्बद्ध, रथीय, रथाश्व, अश्व'।

रदन्ती–वि स्त्री, 'खोदती हुई, √ रद् 'खोदना'–शतृ–ङीप्।

रध्र–वि पु, 'समृद्ध, नम्र, विनम्र', √ रध् 'झुकना',

प्रह्व होना'–र । √ 'वृध्'> ऋध्, 'रध् >।

रध्रचोद–वि पु 'विनम्र का प्रेरक, समृद्ध प्रेरक, धनप्रद';– √ 'चुद् प्रेरणे'–घञ्'।

√ 'रध्–हिसायाम्'–रीरध, रीरधत्।

√ रन्ध् 'विनम्र होना'–रन्धयत्।

रपस्–स न, 'आघात, चोट, प्रहार, हानि, पीडा, अपराध'।

रप्शदूधन्– वि स्त्री०., 'दूध चूते स्तन वाली'।

रभस–

√ 'रम्–क्रीडायाम'–REST; RESIDE;रमते, रमन्ते।

√ रम्–क्रीडायाम्'–REST; RESIDE रीरमन्।

रयि– सं पु, 'धन' सम्पत्ति', √ रा–'दाने'– इ।

रयिपति–वि पु, 'धनपति, 'समृद्ध'।

रयिवित्–वि पु, 'धनप्रापक, धनद, धन प्राप्त करने वाला';– √ 'विद्लाभे'–'क्विप्।

रराणा–वि.स्त्री, 'शब्द करती हुई'।

रशना–स. स्त्री, 'रज्जु, रस्सी, लगाम, करधनी, श्रृखला', √ 'ऋज्'> 'रश'> 'रशना'।

रश्मि– स पु, 'किरण, रज्जु', √ 'ऋज्–सीधा होना, सीधा जाना', विऋज् 'घेरना', 'ऋज्'> 'रज्'> 'रज्जु'> 'रश' 'रश्मि'।

रहसू – वि स्त्री०, 'एकान्तप्रसविनी', √ सू 'जन्म देना'–क्विप्, ऊङ्। √ 'रह् गतौ'> 'रहस्' (=एकान्त)।

√ रा 'दाने'–ररिषे, ररिम, रासि, रास्व।

राका–स स्त्री, 'रात्रि' √ 'रम्' 'रा'– 'त्रि, 'रा'–'का'।

√ राज्'दीप्तौ' (='शान्त होना, शासन करना'), राजति।

राजन्–स पु 'स्वामी, शासक, क्षत्रभृत्', √ 'राज् दीप्तौ'–'अन'।

र ं पुत्र'–वि स्त्री० 'शासक पुत्रो वाली, कान्त पुत्रो वाली'।

रातहव्य–वि पु, 'हविष्य प्रदातर्, हविष्यार्पणकृत्', √ 'रा–दाने'–'क्त'; √ 'हु– हवने'–'यत्'।

राति–स स्त्री, 'दान', √ 'रा दाने'–'क्तिन्'।

रातिसाच्–वि.पु, 'हविर्दान को ग्रहण करने वाले, गृहीतहविर्', 'राति'– √ 'षच् समवाये'– 'क्विप्'।

रामी – वि० स्त्री० 'रमणीया √ रम् – घञ् अथ।

राधस्–स न, 'दान, लाभ', √ 'राध्'–'अस्'।

राध्य–वि पु, 'आराधनायोग्य, सम्मान्य, धनदान–योग्य', 'राधस्–'य', 'राध्'–'य'।

रामी – वि० स्त्री० 'रमणभिारात्रि. √ 'रम्' – 'णिच्' – 'यत्' – 'टाप्' ।

राम्या–वि स्त्री०, 'रमणीया रात्रि; √ 'रम्–'णिच्'–'यत्'–'टाप्'।

राय–स पु., 'धन, समृद्धि'।

√ रिच् 'खाली करना' (LEAVE) रिच्यसे, रिणक्।

रिणन्–

रिप–

रिपु–स पु, 'शत्रु, हिसक', √ रिप् 'फाडना'–उ,

तु.–'अरिप्र', 'रिफित'।

√ रिष् 'हिसित करना'–रिषः, रिषण्यति।

रिषन्त्–वि पु, 'हिसा करता हुआ', √ 'ऋ' >'ऋष्' √ रिष्'–'शतृ। √ रिह् 'चाटना'–रिहन्ति।

रीति– स स्त्री, 'प्रवाह, परम्परा', √ री 'प्रस्रवणे'–क्तिन्।

रुक्मवक्षस्–वि पु, 'वक्ष स्थल पर कान्त अलकार धारण करने वाला', √ 'उक्ष्' 'वक्ष्' >; उक्ष् 'बढना'–अस् यद्वा वश्–उष् 'चाहना' > 'वक्ष्'–'अस्'।

रूद्र– स पु, 'देवविशेष, रक्ताभ, प्रवृद्ध' √ 'वृध्'> 'रूध्'– 'र', यद्वा √ 'रूध्–रक्ताभ होना'> 'रूद्र', तु–'रूधिर', 'रोहित', RED RUDDY RADDISH.

रूद्रिय– वि पु, 'रूद्र से सम्बद्ध'।

रूधिक्रा–

√ रूह्'उगना'–रोहेते।

रूप– सं न, 'वर्पस्, आकृति, आकार, स्वरूप; शरीर, देह, सौन्दर्य'; √ वृप् 'ऊपर उठना' > रूप, तु– 'वर्पस् =रूपम्।

रेवत्–वि पु., 'धनवान्, समृद्ध, श्रीमत्' 'रयिवत्' >।

रोचन– स न; 'कान्त, दीप्त, दीप्त प्रदेश', √ 'रूच् कान्तौ'–'ल्युट्'।

रोदसी–स., स्त्री०., द्वि व.; 'द्यावापृथिव्यौ, द्युलोक और पृथिवी लोक', √ वृध् 'वृद्धौ' >रोधस्, रोदस् >।

रोधना–

रोधस्–

रोहित–'रक्त', √ रूध्–'लाल होना' > तु. 'रूधिर',>
'लहू', रोध्र, लोध्र=RED, RUDDY.

रौहिण–पैतृक विशेषण, 'रोहिण–पुत्र।

व

√ 'वह् प्रापणे'–'ले जाना, ढोना, खींचना', √ 'वध् >'वह्', तु० WAGON बग्घी 'वध्' तु० 'वधू'; 'वक्षि'।

वचस्–स न, 'कथन, स्तुतिवाक्, भाषण, √ वच् 'कहना'– अस्, अधिवक्तर्– Advocate; Vocal, Vocative; वक्ति = tells, वचस्–Speak.

वचस्या– स स्त्री०, 'स्तुति, स्तुतीच्छा', 'वचस्– 'क्यच्', अड् टाप्

वचस्यु–वि पु, 'कहने का इच्छुक', 'वचस्'–'क्यच्'–'उ'।

वज्र– स पु, 'इन्द्र का शस्त्र; आ फा–'गुर्ज्', √ वज् 'शक्तिशाली होना'– र, तु–'उग्र' 'ओजस्'।

वज्रबाहु– वि पु, 'बाहु पर वज्र धारण करने वाला, वज्र सदृश बाहु वाला'।

वज्रहस्त–वि पु, 'वज्रयुक्त हाथ वाला'।

वत्स–स पु, 'बछडा'।

√ 'वद् प्रकथने', वद, वदति, वदसि, वदेम।

वदन्त्–वि पु, 'कहता हुआ, बोलता हुआ', √ 'वद्'–'शतृ'।

√ वध्–'हिसायाम्', वधीत।

वधर्–स न, 'शस्त्र, अस्त्र, आयुध', √ वध्–'हिसायाम्'–अस् >अर्।

वध–स पु, 'शस्त्र।

वध्रि–स पु, 'बधिया बैल'।

वनद–

√ वन्–'हिसायाम्'–वनवत्, वनुथ., वनेम।

वनुष्यन्–

वना–

वनसद्–वि पु, 'वन मे स्थित', वन– √ सद्– क्विप्।

वनस्पति–स पु., 'ओषधि, वृक्ष'।

वन्दमान–वि पु; 'स्तुति करता हुआ', √ 'वन्द्स्तुतौ'–'शानच्'।

वन्दित्र – वि पु., 'स्तोतर्,स्तुतिकृत', 'वन्दनाकृत्' √ वन्द्–'तृच्'।

√ वन्द् – 'प्रार्थना करना' – वन्दे।

वन्द्य – वि पुं, 'वन्दनायोग्य, वन्दनीय, स्तुत्य', √ 'वन्द्' – 'यत्'।

वन्वन्त् –

√ वप् – 'गिराया, धराशायी करना' – वपन्तु।

वपुष्तर – वि पु, 'सुन्दरतर शरीरयुक्त', √ वृप् 'ऊपर उठना' > वर्पस् >वपुष्; वृप् – तु. उपरि OVER UPPER UP.

वयस् – स न, 'सामर्थ्य, शक्तिप्रदान्न'; √ 'वी तृप्तौ, शक्तौ' – 'अस्'।

वयोधा – वि पुं.; 'सामर्थ्यप्रद, अन्नप्रद'; √ 'धा' –'क्विप्'।

वयन् –

वयस्वत् –वि पु., 'सामर्थ्ययुक्त, अन्नयुक्त'।

वयुन –स न, 'प्रज्ञान, चिह्न, सङ्केत, यज्ञरूपधर्मकृत्य', √ 'विद्ज्ञाने' > 'वि', 'उन'।

वय्य –स पु, – 'जुलाहा, बुनकर', WEAVER; वे WEAVE >–'य'। तु – अवे – 'बव्रि' (='बुनकर, बुनकरो का देश') बावेरू = BABYLON.

वर – स पु, 'अभीष्ट' वरणीय, पति', √ 'वृ वरणे', तु –WILL, 'वृत्' >VOTE, BALLOT.

वरिवोविद् – वि पु, 'स्वास्थ्यकृत्'।

वरीयस् – वि पु, 'उरुतर, विशालतर् उच्चतर', 'उरू' का ईयसुन्' रूप। √ 'वृध्' यद्वा 'वृ' > 'उरू' >।

वरूण – स पु, 'देवविशेष', √ 'वृ आवरणे' > 'उन'।

वरूतर् – वि पु, 'रक्षक, रक्षा करने वाला', √ 'वृ'–'तृच्'।

वरूथ – स पु, 'रक्षा सरक्षण,सुरक्षा', √ 'वृ' आवरणे' >।

वरेण्य – वि पु, 'वरणीय, चयन योग्य, चुनने योग्य', √ 'वृ'– 'एन्य'।

वर्चिन् – स पु, – 'एक दस्यु की सज्ञा, शम्बर का सहायक'।

वर्ण – स पु, 'रूप, स्वरूप, रङ्ग √ वृ 'आवरणे' >।

वर्तवे – तु 'जाने के लिए'; वृत् – 'तवेन्'।

वर्ति –

वर्धन – स न, 'पोषण, समृद्धि', √ वृध् 'वर्धने' >।

वर्धमान – वि पु, 'प्रवृद्ध होता हुआ, बढता हुआ', √ 'वृध्' – 'शानच्'।

वर्धयन्त् – वि.पु, 'प्रवृद्ध करता हुआ, बढता हुआ', √ 'वृध्' – 'णिच्'– 'शतृ'।

ववृधान – वि पु, 'बढता हुआ', √ 'वृध्' – 'कानच्'।

वशा – स स्त्री०, 'गौ'।

वषट्कृत – वि पु, 'वौषट् करने वाला', 'वक्षत्' = √ 'वह्'– लेट्, प्र.पु, ए व > 'वषट्', 'वौषट्'।

वसु – वि पु, 'अच्छा, शोभन', √ वस् 'अच्छा होना' >। वसुतर = better; वषिष्ठ = best;(ii) 'धन–समृद्धि'।

वसव्य – स न, 'आवास, निवास',

वसान – वि पु.; 'ओढे हुए, आवृत, ढॅका हुआ, धारण किये हुए', √ वस् 'अच्छादने'– शानच्।

वसिष्ठ – वि पु., 'श्रेष्ठ, उत्तम' best.

वसुदावन् – वि पु.; 'धनप्रद, धनद, अच्छा दाता', √ 'दा–दाने' – 'वनिप्'।

वसुदेय – 'देने योग्य धन, देयधन, दान'।

वसुपति – वि पु, 'धनपति, समृद्ध'।

वसुमन्त् – वि.पु; 'धनयुक्त, धनाढ्य'।

वसूयु – वि पु, 'धनकामिन्, धनेच्छुक, धन की कामना करने वाला', 'वसु'– 'क्यच्'– 'उ'।

वस्तु – स न, 'पदार्थ', 'चीज'।

वस्त्र – स न, 'वसन, कपडा'।

वस्य –

वस्मन् –

वस्यस् – वि पु, 'अपेक्षाकृत अधिक अच्छा, वसुतर'।

√ वह् – 'प्रापणे' – वहत ।

वहन्त् – वि पु, 'वहन करता हुआ, खींचता हुआ', √ 'वह्–

प्रापणे'– 'शतृ', √ 'वध्–ले जाना, नेतृत्व करना'> 'वध्', 'वध्' + 'णिच्' > 'वाध्' = AVOID.

वहिन – वि पु, 'वाहक, खीचने वाला, ले जाने वाला', 'हवि हविष्यान्नवाहक, अग्नि', √ 'वह्' – 'नि' ।

वा – सयोजक एकाच् निपात; 'अथवा'। (ii) 'बुनना', (सविकरणक रूप)।

वा –

वाक् – स स्त्री, 'वाणी, शब्द, स्तुति,, √ 'वच्' – 'क्विप्' ।

वाज – स.पु, 'ऋभु की सञ्ज्ञा', (ii) 'उपहार; (iii) 'युद्ध' ।

वाजपेशस् – वि, 'धनयुक्त स्वरूप वाला', – 'पेशस्' √ 'पिश्– अवयवे' – 'अस्' (='स्वरूप')।

वाजयन्त् – वि पु, 'उपहार की कामना करता हुआ', 'वाज'> √ 'वाजय' – 'शतृ' ।

वाजयु – वि पु, 'उपहारेच्छुक', – 'क्यच्' – 'उ' ।

वाजसाति – स स्त्री, 'उपहार की प्राप्ति' ।– √ 'सन्' – 'क्तिन्' ।

वाजिन् – वि पु, 'शक्तिशाली, समर्थ, (ii) 'अश्व' ।

वाजिनीवत् – वि.पु, 'उपहारयुक्त' ।

वाजिनीवसु – वि पु., 'उपहाररूप धन वाला' ।

वाणी– स स्त्री०,'वाक्, स्तुति', √ 'वृन् शब्दे' >'वण्', तु०–'वर्ण',

'वर्णनम्', 'वीणा', ।

वात– स०पु०, 'वायु' √ 'वा' –'क्त' ।

√ 'वा– गतिगन्धनयो'– वातय, वातु ।

वाम– स० पु०, 'सुन्दर, धन', √ 'वन्'–'म' ।

वायु–सं०पु०, 'देवता विशेष' ।

वार–( ) स० न०, 'पुच्छ, बाल,ऊन की छलनी' ।

( ) स०पु०, 'वरणीयोपहार' ।

वावशान–वि०पु०,'पुन पुन. कामना करता हुआ', √ 'वश्,'=

WISH- 'कानच्' ।

वाश्रा– सं० स्त्री०, 'रँभाने वाली गाय' । √ 'वच्' 'वाश्' ।

वि– उपसर्ग, 'पृथक् विशिष्ट, अधिक', 'द्वि' >'वि' ।

वि–अस– 'अंसहीन, स्कन्ध रहित' ।

वि–उष्टि–स०स्त्री०, 'प्रकाश, कान्ति, विशिष्ट कान्ति', 'वि'– 'वश' √ 'उष् कान्तौ'–'क्तिन्' ।

विकृत– वि०पु०, 'विकारयुक्त',–√ 'कृ करणे'–'क्त' ।

विशति– सख्या, स्त्री०, 'बीस', 'द्वि दशति' >'विशति =TWENTY

विश्–स०स्त्री०, 'सामान्य जन, जनजाति,बस्ती' ।

विचक्षण– वि०पु०,'विद्वान्, विद्रष्टर, विशिष्टद्रष्टर' । √ 'चक्ष्' ।

विचर्षणि– वि०पु०,'कर्मनिष्ठ, कर्मशील, श्रमशील,' 'कृषककर्मरत', √ 'कृष्'–'अनि' ।

विचृत्त–वि०पुं०,'विशिष्ट चित्त वाला, विशेष ज्ञातर्' ।

विच्युत– वि०पु०,'भ्रष्ट, डगमगाया हुआ, ढकेला
गया', √ 'च्यु गतौ'– 'क्त'।

विज– वि०पु०, 'उद्वेजक, भयानक, भयप्रद', √ 'भ्यस्'=अवे०–'व्यह्' √ 'विज्'– 'भयसञ्चलनयो ', √ 'विज् चलने' 'विजनम्' —वेना'।

वितत–वि०पु०, 'फैला हुआ', बिछा हुआ', √ 'तन्'–'क्त'।

वितरम्– नि०, 'अधिक दूर, अधिक विस्तार से',–
√ तृ 'पार करना'।

विदथ– स०न०, 'स्तोत्र, सभा, ज्ञानार्थ सभा', √ 'विद्
ज्ञाने'–'अथ'।

√ 'विद्'– विदम्' विदात्, विदु, विद्वि, विद्याम्।

विदान– वि०पु०, 'जानता हुआ, बुद्धिमान्, विद्वान्',
√ 'विद्'– 'शानच्'।

विदुष्टर–वि०पु०,'विद्वत्तर, अधिक विद्वान्, अपेक्षाकृत
विद्वान्'।

विद्वस्– वि०पु०, 'विद्वान्, जानकार, बुद्धिमान्',
√ 'विद्'–'क्वसु'।

विद्युत्– स० स्त्री०, 'विजली', √ 'दिव्'> 'द्युत्'–'क्विप्'।

विधन्त्– वि०पु०, 'विधान करता हुआ, पूजा करता
हुआ', √ 'विध्'– 'शतृ'।

विधर्तर्– वि०पु०– वि०पु०,'विशेष रूप से धारण करने वाला'।

√ 'विध्'– 'पूजा करना, विधान करना'– विधेम।

√ 'विध्'– विध्य।

वि–नय– वि०पु०, 'विशेष रूप से नेतृत्व करने वाला,
विनायक, विशिष्ट नेतर्', √ 'नी नयने'।

विनुद्–

√ 'विन्द् लाभे FIND विन्दसे, विविदे, विविद्रे।

विपन्यु– स० पु०, 'स्तुति',– √ 'पन् स्तुतौ–'यु'।

विप्र–वि०, 'स्तोतर्, √ कवि, सामगायक, प्रबुद्ध',
√ विप्'–'र'।

वि–बाध्य– 'बाधित करके, रोक करके, दूर कर',
√ 'बध्' (=बह्) – 'णिच्' > √ 'बाध्' 'रोकना'–
'ल्यप्'।

विभजन्त्– वि०पु०,'बँटवारा करता हुआ', √ 'भज्' 'शतृ'।

विभु– वि०पुं०, 'व्यापक, सर्वत्र स्थित', 'वि'– √ 'भू
सत्तायाम्'।

विभृत्र– वि०पु०, 'विविध स्थान पर ले जाने वाला',

√ 'भृ'='हृ' हरणे'

विमान– वि०पु०,'निर्मातर्, प्रमापक, सुकर्मन्,

विशिष्ट ज्ञातर्' √ मा 'निर्माण करना'।

विश्वरूप– वि०पु०,'समग्र रूपो वाला', √ वृप् 'ऊपर

उठना' वर्पस> रूपम्।

विश्वहा– नि०, 'सर्वदा, सब दिन', 'अहन्'।

विषुवृत्– वि०, 'दोनो ओर जाने वाला', 'द्वि'>'द्विषु'

'विषु' (स०ब०व०),–√ 'वृत् वर्तने'– 'क्विप्'।

विष्णु– स० पु०, 'देवविशेष', √ विष्'व्याप्त करना'– नु।

विस्थित– वि०पु०,'विशेष रूप से स्थित',–√ 'स्था'– 'क्त'।

विस्तस्– स० स्त्री०,'शिथिलता, लडखडाहट, ढिलाई,

स्खलन, पैदल लडखडाना', √ 'श्रथ्' 'स्रस्',

'स्रस्' = शिथिल होना– 'क्विप्'। 'स्रस्'

loose.

वीळित– वि०पु०, 'वृद्ध, प्रवृद्ध, बढा हुआ, दृढ, शक्ति–

शालिन्', √ 'वृध्' > 'वीड्'– 'क्त'। तु०–'स्मृ'>

'मृष्' > 'म्रेळित'।

वीळुद्वेषस्–वि०पु०, 'शक्तिशाली से द्वेष करने वाला',

'वीळु' =BOLD

वीळुहर्षिन्– वि०पु०,शक्ति के कारण अहङ्कार से हर्षित

वीति– स० स्त्री, 'उपभोग, स्वीकृति', वी 'तृप्त होना,

स्वीकार करना'– क्तिन्।

वीतिहोत्र– वि०पु०,'भोजन का निमन्त्रण देने वाला', √ वी 'तृप्त होना'– क्तिन्, √ हु 'पुकारना' 'होत्र'।

वीर– वि०पु०,'पराक्रमी, शूर, शक्तिशाली, पुत्र, योद्धा',

√ वी 'पराक्रमी होना'–र, अवे०–'वीर'।

वीरवन्त्– वि०पु०, 'वीरयुक्त, पुत्रयुक्त'।

वृत्र– स० पुं०, ' आवरक, आवरक मेघ, WEATHER,

का शत्रु', √ वृ 'आवरणे–त्र, 'वृ' > 'वृक्' > CLOSE,

COVER, तु०– 'वल्क' BARK, = फा०–'वर्क'।

वृत्रहन्– वि०पुं०, 'वृत्र को मारने वाला, वृत्रघ्न',– √ हन्

'मारना'–क्विप्।

वृथा– क्रिया विशे०, 'इच्छापूर्वक, > स्वेच्छया >'अना–

यास', सरलता से', √ वृ वरणे'– 'था'।

वृद्ध– 'बढा हुआ, विकसित, पुराना', तु० अ० वृद्ध>OLD

'वृध्' ELEVATE 'क्त'। √ 'वृध्' GROW, AGREVATE

वृध्,> वृधत्> वृहत् = HIGH, LOFTY,
BIG, GREAT, BALCONY,

विम्—इव—

विवस्वत्— स० पु०, 'यम के पिता का नाम, कान्तियुक्त'।

विवृश्चन्— वि०पु०, 'छिन्न—भिन्न करता हुआ'।

√ विष्'— विवेष'।

विश्— स० स्त्री०, 'प्रजा, जन, लोग, गृह, गृहपति'।

विशिक्षु— वि० पु०, 'विशिष्ट शासक', √ 'शास् अनुशिष्टौ'
'शिक्ष्'> 'शिक्ष्— 'उ'।

विश्पति— वि०पु०, 'गृहपति'।

विश्पत्नी— वि० स्त्री०,'गृहस्वामिनी'।

विश्वचर्षणि— वि० पु०, 'सर्वद्रष्टर्'

विश्वजित्— वि०पु० 'सर्वजयिन्', √ 'जि'— 'क्विप्'।

विश्वत — क्रि० वि०, 'सभी ओर'।

विश्वतूर्ति— वि०पु०, 'सर्वविषयगत' (सायण)।

विश्ववथा—क्रि०वि०, 'सर्वथा'।

विश्वधायस्— वि०पु०, 'सर्वपोषक', — √ 'धेट् पाने'—
'अस्'।

विश्वम्— इन्व—

वृद्धवयस्— वि०पु०,'प्रवृद्ध'।

वृषन्— वि०पु०, 'वर्षक, सेचक, कामनासेचक, शक्तिशाली',
वृषन्, वृष्णि VIRILE, VERSTILE, VIRGINE,
√ 'वृष्'— 'अन्'।

वृषण्वसु— वि०पु०, 'कामनासेचक धनयुक्त'।

वृषभ— वि०पुं०, 'सेचक, वर्षक, वलीवर्द', तु०—अ० BUFFALO,
BULLOCK, BULL √ 'वृष्— 'अभच्'।

वृष्टि— स० स्त्री०, 'वर्षा, वर्षण, जलावसेक', √ 'वृष्'— 'क्तिन्'।

वेदस्— सं०न०, (i) 'धन', तु०— √ 'विद् लाभे'— 'अस, तु०—
'वित्त','वेदन'> 'वेतन'। (ii) 'ज्ञान', √ 'विद् ज्ञाने'
'अस्'।

वेद्य— वि०पु०,'ज्ञेय, प्राप्य', √ 'विद् लाभे यद्वा ज्ञाने'— 'य'।

वेधस्—स० पुं०, 'विधायक, विधानकृत्', कर्तर्'।

वेन्य— वि०, 'कमनीय', √ 'वन् सम्भक्तौ'> 'वेन्'— 'य'।

वै—नि०,'सचमुच', मूलत 'एव' >'वै'।

व्यचस्वती— वि०स्त्री०, 'व्याप्त करने वाली',' वि'— अञ्च्'
'अस्',—'वत्'—ङीप्'।

व्यचिष्ठ– वि०पु०, 'सर्वाधिक व्यापक'।

व्यथमान–वि०पु०, 'दु खी होता हुआ', √ 'व्यथ्'–'शानच्'।

व्यथि– वि० पु०, 'व्यथित करने वाला', √ 'व्यथ्'–'इ'।

व्रज– स० पु०, 'गोष्ठ, गोष्ठान, गायो का घिरा हुआ स्थान',

'वि' √ 'ऋज् (= सीधे जाना) – 'अ'।

व्रत– स०न०, नियम, कर्म' √ वृ 'वरणे' –क्त।

व्रयस्– स०न०, 'दुर्बलता', √ व्री 'क्षीण होना, दुर्बल होना'– अस्।

श

√ 'शस्'– >√ 'शास्'– 'शिष्' 'शिक्ष्', तु०– 'शिष्य', 'छात्र'।

√ 'शस् प्रकथने'– शसति, शसि।

शन्सन्त्– वि०पु०, 'शस्त्रपाठ करता हुआ' √ 'शस्'–'शतृ'।

शस्य– वि०न०, 'प्रशसनीय, स्तुत्य'।

शकुनि– स० स्त्री०, 'पक्षी, तिर्यञ्च्, चिडिया, शकुन्त,शकुन्तिका'

√ 'शक्'= CAN; शक्नोति, शकेम, शक्म, शग्धि।

शक्ति– स० स्त्री०, COULD, ' सामर्थ्य, वीर्य, पराक्रम, ताकत'।

शक्र– वि०पु०, 'शक्त, समर्थ, योग्य, निपुण, सक्षम'।

शण्डिका– स० स्त्री०,

शत– सख्या० न०, 'सौ', अवे०–'सत', तु०– HUND,-CENT, SOUND, CENTURY, CENETARY.

शतक्रतु– वि०पु०, 'सैकडो सामर्थ्ययुक्त, शतयज्ञ, महाप्राज्ञ'।

शतदायम्– वि० न०,'सौ गुना देने वाला'।

शतहिमा– वि० स्त्री, 'सौ वर्ष वाली, शतवर्षात्मिका',

√ 'हि'= अवे०– √ जि 'जमना', द्रव का ठोस

होना' > 'हिम' = जिम, ज्यम्> 'शरद्'

'वर्ष'। तु०'हिमान्त' >'हेमन्त'।'

शत्रु– स० पु०, 'दुर्मनस्, विरोधी, हिंसक, दुश्मन,

मारक, घातक', √ शत् 'मारना' = SHOOT - रु,

√ 'शद्'> 'सीद्', √ 'छिद'।

शम्– क्रि० वि०, 'सुखपूर्वक, शन्तिपूर्वक'

शमि– वि० स्त्री०, 'सुकृति', HOLY WORK, 'यज्ञकर्म'।

शमितर– वि० पु०, 'शामक', उपशमनकृत्, शमनकर्तर्'।

√ 'शम् उपशमे'– 'तृच्'।

शम्–गय– वि० पु०, 'सुखकर गृहयुक्त, सुखदगृह–

प्रद,' √ 'जीव् प्राणधारणे'=अवे०–'गी'> 'गय'

(=जीवन, प्राण, जगत्'), स०– ' गृह'। तु० अवे०–'गएथा।

शम्–तम्– वि०पु०, 'सुखदतम, शान्ततम'।

शम्बर–स०पु०, 'एक असुर का नाम'।

शम्बराणि– 'शम्बर सम्बद्ध'।

शम्–भविष्ठा–

शम्भु– वि० पु०, ' सुखकर, शन्तिकर'।

शम्या– स० स्त्री०,'कील, खूँटी'।

शयध्यै– तु०, 'सोने के लिए, लेटने के लिए,
धराशायी होने के लिए', √ 'शी शयने'– तुमर्थक
'अध्यै'।

शयान–वि०पु०, 'लेटा हुआ, धराशायी, पडा हुआ,
सोता हुआ', √ 'शीङ् शयने'– 'शानच्'।

शरण– स० न०, 'आश्रय, आश्रयस्थान, कुशासन–
स्थान, गृह', √ 'श्रि'– 'ल्युट्' 'श्रि' = अ० LAY LIE.

शरद्– स स्त्री०, 'जाडे की ऋतु > वर्ष', तु०–अ०– COLD,
CHILL प्रा०फा०– 'थर्द' > आ०फा० 'साल', अ०– CALENDAR.

शर्धस्– स० न०, 'दर्प, हिंसा, गण, दर्पमय बल', √ 'श्रृध्' 'अस्'।

शर्धन्त्–वि०पुं०,'हिसा करता हुआ, दर्पयुक्त, हिसक',
√ श्रृध हिसा करना'– शतृ।

शर्ध– स०पुं०,' शक्तिशाली आतिथेय'।

शर्मन्– स० न०, 'आश्रय, शरण', √ 'श्रि अश्रयणे'– 'मन्'।

शरु– स०पु०,'बाण, इषु', (२) वि० पु०, 'हिंसक', √ 'श्रृ हिसा–
याम्–'उ'। अवे० सउरु = 'शर्व, शरु– हिसकदेव'।

शव –

शवस्–सं०न०, 'बल, शक्ति, शौर्य, वीर्य', √ 'श्वि' > 'शु',
शु 'सूजना, बढना, वीर होना'– अस्।

शशमान–वि.पु०, 'शस्त्रपाठ करता हुआ', √ 'शश् स्तुतौ'
–'शानच्'।

शश्वत्–नि०,'प्रत्येक, अनेक, प्रभूत, सतत, सदैव', √ 'श्वि' >
'शू', 'शु' (= 'बढना')> 'श–श्वत्', 'श्वि'– 'शतृ' । तु०–
'शश्वत्–धा'> 'शश्वधा' (= अनेक प्रकार से')।

शश्वत्तमम्– नि०, 'अनेकश , बहुशः'

शश्वान्–
√ 'शास् अनुशिष्टौ'– शशास, शाधि, शाशदु.।

शास्– सं०पुं०, 'शासक, शासनकृत्, आदेशकृत्।
√ 'शास्' 'क्विप्', अवे०'शास्', पह०, आ०फा०–
'शाह्', 'शासा– शासः> 'शाहान्शाह'।

√ 'शिक्ष्'– 'आदेश करना, समर्थ बनाना, सिखाना', √ 'शास्'
>'शिष्'>'शिक्ष्', तु०– 'शिष्य', 'छात्र'।– शिक्ष

शिक्वन्– वि०पु०, 'शक्तिशाली, सामर्थ्ययुक्त, निपुण,
बलशाली'। √ 'शक्' > 'शिक्'–'वन्'।

शिमीवान्– वि०पु०, 'कर्मयुक्त, कर्मनिष्ठ'।

शिरस्–स०न०, 'शीर्षन्, मूर्धन्, शिखर', शीर्षन्+
मूर्धन् >HEAD अवे० सिरह।

शिरिणा– स० स्त्री०, 'रात्रि', √ 'श्रृ हिंसायाम्'– 'इन'–
'टाप्'।

शिव– वि० पु०, 'कल्याणमय, कल्याणप्रद', √ श्वि
'प्रवृद्ध होना, वीर होना, लाभप्रद होना, पवित्र
होना, कल्याणकर होना' >। अपे०–स्पॅन्त।

शिशीतम्–

शिशु– स०पु०,' बालक, वत्स', √ 'श्वि'– >।

शिशुमती– वि० स्त्री०, 'वत्सवती'।

शीर्षन्– स०न०, 'शिरस्, मूर्धन्, शिखर, सिर',
√ 'श्रि' >'शीर्ष' 'अन्'।

शुक्र– वि०पु०, 'कान्त, दीप्त, चमकदार', √ 'शुच् दीप्तौ' –'र'।

शुक्रशोचिष्– वि० पु०, 'कान्त दीप्ति वाला', √ 'शुच्' >
'शोच्'– 'इष्'।

√ 'शुच्–दीप्तौ'– शुचता।

शुचि–वि०पुं०,'कान्त, दीप्त, उज्जवल', √ 'शुच्'– 'इ'।

शुचिजिह्व–वि०पुं०, 'कान्त जिह्वा वाला'।

शुचिदन्–वि०पु०,'कान्त दन्त वाला', 'दन्त' = TEETH]
DENTAL.

शनुहोत्र–वि०पु०,'दीप्त, श्वेत,निर्मल, उज्ज्वल', √ 'शुभ्
दीप्तौ'– 'र'।

शुम्भमान–वि०पु०, 'अलङ्कृत होता हुआ, शोभन, दीप्त',
√ 'शुम्भ् दीप्तौ'– 'शानच्'।

शुशुचान— वि०पु०, 'कान्त होता हुआ', √ 'शुच् दीप्तौ'
'कानच्'।

शुष्क–वि०पुं०, 'सूखा, नीरस', √ 'शुष्'– 'क' (क्त)।
अवे०–'हुस्क' > आ०फा०–'खुस्क'।

शुष्ण– स० पु०,'एक दास की सञ्ज्ञा'।

शुष्म– स०पुं०, 'सामर्थ्य, शक्ति, बल'।

शुष्मिन्–तम– वि० पुं०,'सर्वाधिक सामर्थ्ययुक्त'।

शून–स० न०, 'शून्यत्व, अभाव', √ 'श्वि' = SWELL 'न'।

शूर–वि०पु०, 'वीर, पराक्रमी, दृढ, शक्तिमान्' 'शूर'>

HERO , √ 'श्वि' 'शू'–'र'।

श्रृङ्ग– स० न०, 'सीग, विषाण', 'श्रृङ्ग', >HORN √ 'श्रृ हिसा–याम्'>।

√ श्रृ,श्रु'श्रवणे'– HEAR> कर्ण >= 'श्रवण' >EAR, तु० LOUD, LISTEN

SHOUT, श्रृणोतु, श्रृणोभि, श्रृण्वन्ति।

श्रृण्वन्त्–वि०पु०, 'सुनता हुआ', √ 'श्रु श्रवणे'– 'शतृ'।

√ 'शृ'–'नष्ट होना, खण्डित होना'।

शृध्या–स० स्त्री०, 'हिसा, दर्प, हिसादर्प', √ 'शृध् हिसायाम्–

शृध्– 'दर्प करना'–य– टाप्।

शेवधि– स०स्त्री०,'कोश, खजाना', 'शेव'– √ 'धा' –'कि'>।

शोक– स०पु०,'तेज ज्वाला, कान्ति, प्रकाश', √ 'शुच्'– 'घञ्'।

शोचिष्मान्–वि०पु०, 'रश्मिमय, तेजोमय, कान्तिमान्'।

श्मसि– 'उश्मसि'> 'श्मसि' (√ 'वश् कान्तौ', "इदन्तोमसि.")।

श्मश्रु– स० पु०, 'दाढी'।

श्याव– वि०पुं०,'कृष्णवर्ण, श्याम', √ श्या' काला होना'–व।

अवे०–'स्यावार्शन्' ('कृष्णवर्णपुरुष')।

श्येन– स०पु०, 'वाजपक्षी', HAWK ,अवे०– 'सएन मॅरघ >'

'सीमुर्ग्', अ०– HEN

श्रत्– स० स्त्री०, 'ह्रत्' = 'विश्वास', HEART> दिल, तु०७'श्रत् धा'।

श्रद्धामनस्–वि०पुं०,'श्रद्धायुक्त विचार वाला'। श्रद्धा, तु०–

अवे०–'ज़ॅरॅज्दा' (= ह्रदयार्पण')।

√ श्रथ् 'मृदु होना, ढीला होना, शिथिल होना'– श्रथय।

√ श्रम् 'कष्ट करना, परिश्रम करना'– श्रमिष्म, श्रमत्, श्राम्यन्ति।

√ 'श्रि–आश्रित होना'– श्रयन्ताम्, श्रुत, श्रुधि, श्रुया.।

श्रवयन्–

श्रवस्यम्– वि०न०,'प्रख्यात कर्म, स्तुत्य कर्म'।

श्रवस्यु– वि०पु० 'यशस्कामिन्, कीर्त्तिमन्, कीर्त्तिकामिन्, यशस्

की कामना करने वाला', √ 'श्रु'– 'अस्' > 'श्रवस्'

'क्यच्'– 'उ'।

श्रवस्या– सं० स्त्री०, 'कीत्तिकामना'।

श्रित– वि०पुं०, 'आश्रित, आधृत',√ 'श्रि'–'क्त'।

श्री–सं० स्त्री०, 'शोभा, सौन्दर्य', तु०– 'श्री' = SIRE, SIR.

श्रुत– वि०पुं०, 'प्रसिद्ध, कीत्तियुक्त',√ 'श्रु'–'क्त'।

श्रुत्य– वि०पुं०, 'श्रवणीय, श्रोतव्य'।

श्रुति– 'श्रवण, सुनना, कीर्त्ति'।

श्रुष्टि– स० स्त्री०, 'श्रवण, आज्ञापालन', √ 'श्रु'> 'श्रुष्'– 'क्तिन्'।

श्रुष्टी– क्रि० वि०, 'प्रसन्नतापूर्वक', 'श्रुष्टि'– तृ०ए०व०।

श्रेष्ठ– वि०पु०, 'उत्तम, सर्वोत्तम', 'श्री–र' का 'इष्ठन्' रूप।

श्रोण– स० पु०, 'लङ्गडा'>LAME, आचरण > अश्रवण >

अश्रोण> श्रोण, तु०– 'श्रोणि'

श्वहिनन्– स०पु०, 'शिकारी', 'श्व'– √ 'घन'–'णिनि'।

श्वभ्र–

श्वान–

श्वित्यञ्च्– वि०पु०, 'श्वेतिमायुक्त, कुछ–कुछ श्वेत',

√ 'अञ्च्'– 'क्विप्'।

ष

षट्– सख्या पु०, 'छ', 'षषन्' >'षट्', SIXEN > SIX.

षष्टि– सख्या० स्त्री०, 'साठ' = SIXTY 'षष्– दशति'>

'शति', 'शत्' ति'।

स

संदृश्– स० स्त्री०, 'दर्शन, देखना, सदर्शन', – √ 'दृश्'–

'क्विप्'।

सयत– वि०पुं०,'युद्ध, युद्धतत्पर', 'सम्'– √ 'यत् सघर्ष'–

'क्विप्'। तु०–'यदु', (ii) एकत्रित।

संदृष्टि–सं० स्त्री०, 'दर्शन'।

सयद्–वीर्– वि०पु०, 'युद्धतत्पर वीरो वाला'।

संददी–

संददस्वान्–वि०पु०, 'प्रदातर्, दानकृत्, हविष्यदातर्'।

संवयन्ती– वि०स्त्री०, 'बुनती हुई', √ 'वेञ्' = WEAVE- 'शतृ'–

'ङीप्'।

सकृत्– क्रि० वि०, 'एक बार'।

सक्रतु– वि०पुं०, 'क्रतुयुक्त, यज्ञयुक्त, बुद्धिमान्' तु०– 'सुकतु'

SOCRETS, INTELLECT.

सक्षणि– वि०पु०, 'सहचर, साथी, संयुक्त',√ 'सच्' > 'सक्ष्'

'अनि'।

सखन्– सं०पुं०, 'मित्र, जोष्टर्' 'सचि–व',

सख्यम्–सं०न०, 'मित्रता, सखित्व'।

√ 'सच्'– सचते, सचन्त, सचसे।

सचा– नि०, 'साथ–साथ', √ 'षच् समवाये' >।

सचाभू– वि०पु०, 'सहभूत, साथी, साथ–साथ रहने वाला,'

√ 'भू'– 'क्विप्।

√ 'सच्– समवाये'– सचेते, सचेथे, सचेमहि।

सजात्यम्– वि०न०, 'सजातीय, एक साथ उद्भूत'।

सजोषस्–(प) वि०पु०, 'प्रसन्न', (ii) क्रि० वि०, 'प्रसन्नता– पूर्वक'।

सत्– वि०, 'अस्तित्वमय, विद्यमान', √ 'अस्'–'शतृ'>

'असत्'>'सत्'।

सत्त – वि०पु०, 'निषण्ण' (सायण) , √ षद्'> 'सद्'– 'क्त',

प्र०ए०व०।

सत्पति–वि०पु०, ' सुन्दर स्वामी, सज्जनो का स्वामी'।

सत्य– वि०पु०, 'सच्चा', 'सत्' 'यत्'।

सत्रा – नि , 'अनेकत्र'। स = (1.) ''एक', तु –'स–कृत', (2.) 'वही' = SAME; तु.– 'स–द्यस्'; (3) 'निश्चयपूर्वक';

(4.) 'अनेकत्र'।

सत्राजित् – वि.पु , 'सर्वत्र जयशील', – √ 'जिजये'– 'क्विप'।

सत्रासह . – वि पु , 'सर्वत्र जयशील', – √ 'सह्अभिभवे' – 'क्विप'।

सत्त्व – स न , 'धन, प्राणी'।

√ 'सद्' – सद, सीद, सीदत., सीदन्तु ।

सदन – स न ; 'गृह, बैठने का स्थान, निवास'; √ 'सद् अवसादने' – 'ल्युट्'।

सदम् – नि.; 'सदा'।

सदस् – स न ; 'बैठने का स्थान, SEAT'; √ 'सद्'– 'अस्'।

सदिव – वि पु , 'प्राचीन'।

सद्मन – स न.; 'गृह आसन, भवन'; √ 'सद्' – 'मन्'।

सद्यस् – क्रि वि , 'तुरन्त, उसी समय, शीघ्र ही'।

सधस्थ – स. न , ' सहनिवासस्थान', – √ 'स्था' – 'क'।

सनत् – वि.पुं ; 'प्राचीन'; द्र. – 'सन'।

सनि – सं पु.; 'लाभ, प्राप्ति'; √ 'सन् सम्भक्तौ' – 'इ'।

सन – वि पुं , 'प्राचीन'।

सनितर् – वि पु , 'विजयकृत, प्रापक, जयकर्त्तर्'। √ 'सन् सम्भक्तौ' – 'तृच्'।

सनुतर् – उपसर्ग; 'से दूर' (मैक्डॉनल)।

(ii) अव्यय, 'अन्तर्हित प्रदेश में' (सायण)।

सनुत्य – 'अन्तर्हित देश मे होंने वाला' (सायण)।

√ 'सन्– सम्भक्तौ' – सनेम।

√ 'सन्' (अस् >) – सन्ति।

सन्नय – सपन्त् – वि.पुं.; 'सेवा करता हुआ, पूजा करता हुआ';√ 'सप्' – 'शतृ'।

'सपर्' – 'सेवा करना' – सपर्येम।

सप्तति – सख्या स्त्री 'सत्तर' = SEVENTY, 'सप्त',–
'दशति' >'शति'> 'ति'।

सप्तरश्मि – वि पु, 'सात रस्सियो वाला, सप्त रज्जुबद्ध'।

सप्ति वि पु, 'सर्पणशील', (ii) स पु, 'अश्व' $\sqrt{}$ 'सप्'– 'क्तिन्'

सभेय – वि पु, 'सभ्य, सभा मे बैठने योग्य, सभा – योग्य'।

समक्त – वि पु., 'आर्द्र, गीला', $\sqrt{}$ 'अञ्ज् म्रक्षणे' – 'क्त'।

समृत – स 'सङ्ग्राम, युद्ध'।

समनस् – वि पु, 'एकमत, समान विचार वाला'।

समन – स न, 'जन समूह'।

समन्यु – वि पु; 'क्रोधपूर्ण, विचारयुक्त'।

समान – वि पु, 'साधारण, एकरूप, एक ही'।

क्रि वि०, समानम् 'एक ही प्रकार से'; स – 'एक' – $\sqrt{}$ मा 'माने' – सम। स–मान– 'एक नाप का, एक रूप, एक जैसा';
स–म = अवे 'हम', अ.–SAME, HOMO-, , हमेशा 'सदैव' समाववर्ति

समिथ – स न., 'युद्ध', 'स'– $\sqrt{}$ 'मिथ्–सघर्ष करना' 'समिथ'; तु–अवे हमएस्तर्– 'विरोधकृत्, आक्रामक, युद्धकर्मिन्', हम ए स्तए 'विरोधार्थ'।

समिद्ध – वि पुं, 'प्रज्ज्वलित, प्रदीप्त', 'सम्' – $\sqrt{}$ 'इन्ध्दीप्तौ' – 'क्त'।

सम् – उप, 'एक साथ', स–'एक'–$\sqrt{}$ मित् 'मिलना' > 'सम्' = अवे– 'हम्'; अ. – COM, SUM, CON.

समिधान – वि.पु, ' प्रज्ज्वलित होता हुआ, समिद्ध होता हुआ', – $\sqrt{}$ 'इन्ध्' – 'शानच्'।

समुद्र – स पु., 'सागर, सिन्धु'; 'सम्' $\sqrt{}$ 'उद्, उन्द्क्लेदने'; तु–अ. – WET 'भिगोना' ।

सम्पृक – स स्त्री, 'सम्पर्क, मेल–जोल, मिश्रण, सयोग', $\sqrt{}$ 'पृच् सम्पर्के' – 'क्विप्'।

सम्बाध –

सम्भुजम् – स. न.; 'दान, भोग'।

सम्भृत – वि पु; 'सन्धारित, प्रवृद्ध'।

सम्मिश्ल – वि.पु.; 'मिला हुआ, मिश्रित'।

सम्वृक् – वि पुं, 'हिसक, भक्षक, 'मारक'।

सम्हाय –

सरऽअपस –

सरस्वती – स.स्त्री 'नदी विशेष, विद्याबुद्धिवाग्देवता'।

सरिष्यन् – वि.पु, 'सरकता हुआ, पहुँचता हुआ';$\sqrt{}$ 'सृ गतौ' – 'शतृ'।

सर्ग – स पुं; 'सृष्टि, रचना, सृष्टिविमोक, अश्व, वेग, प्रवाह'।

सर्पिरासुति – वि पु., 'घृतपूर्ण भोजन वाला'।

सर्व – सर्व. विशे.; 'सम्पूर्ण'।

सर्वतस् क्रि विशे., 'सभी ओर से'।

सर्ववीर – वि.पुं, 'सब प्रकार के वीरो वाला'।

सवन – 'सं. न. 'सोमाभिषव', 'सोमाभिषव वेला',

'सोमवाभिषव कृत्यात्मक कर्म', √ 'सु अभिषवे' – 'ल्युट्'।

सव – स पु, 'अभिषव', √ 'सुञ् अभिषवे' – 'अ'।

सवितर् –स पु, 'प्रेरक देवविशेष, प्रात कालीन सूर्य का पूर्वरूप', √ 'सू प्रेरणे' – 'तृच्'।

सव्य – वि पु, 'वाम, बायाँ, दक्षिणेतर'।

सव्यतस् – क्रि. वि, 'बायीं ओर से'।

सश्चत् – स पु, 'पीछा करने वाला', √ 'सच्' 'शतृ' यद्वा 'लु लो'। √ 'सच्–समवाये' – सश्चिरे।

ससहि – वि पु, 'विजयिन्, जयकृत, अभिभवकृत', √ 'सह् अभिभवे' – 'किन्'।

सस्नि – वि पु, (i) 'शुद्ध', √ 'स्ना शौचे' – 'किन्', (ii) 'जयकृत', 'जयिन्', √ 'सन्' – 'किन्'।

सहस् – स न, 'बल, सामर्थ्य, शक्ति', √ 'सह्'– अस्।

सहस्वत् – वि पु, 'बलशालिन्, सामर्थ्ययुक्त'।

सहमान् – वि पुं, 'अभिभवकारिन्, अभिभव करता हुआ', √ 'सह्' – 'शानच्'।

सह – 'एक साथ, साथ–साथ', स = 'एक', तु.– 'सकृत', 'स–हस्र', स– √ 'धा' 'सध्', 'सह'।

सहवसु – वि पु., 'धनवान्, धनाढ्य, धनयुक्त'।

सहसान – वि.पु, 'अभिभवशील', √ 'सह्' 'सहस्'>–'शानच्'।

सहस्रम – स न., 'एक हजार', अवे– 'हजड्र', स = 'एक', तु – सकृत 'एक बार'।

सहस्रपोष – वि, 'हजार पोषणयुक्त'।

सहस्रम्भर – वि.पुं, 'हजारो का भरण–पोषण करने वाला'।

सहस्रिन – वि पु, 'हजारो की सख्या से युक्त'।

सहुरि – वि पु.; 'अभिभवशील', √ 'सह्'– 'उरि'।

सहूति – स स्त्री; 'साथ–साथ आहवान, सहनिमन्त्रण'; 'स'– √ 'ह्वेञ् आह्वाने' 'क्तिन्'।

सहवान् – वि.पु, 'अभिभवशील'।

सह्य – वि.पुं, 'अभिभवयोग्य'।

साख्य – स न, 'मित्रता'; √ 'सच् समवाये' सख् > सखिन्,> सखन् >साख्य। 'सखा' = अवे., प्रा. फा – 'हखा'।

सात – वि, 'प्राप्त', √ 'सन् सम्भक्तौ' – 'क्त'।

साधयन्ती – वि. स्त्री., 'सिद्ध करती हुई, अलकृंत करती हुई', √ 'सिध्' – 'णिच्'–'शतृ'–'ङीप्'।

साधु – वि पु., 'सुन्दर, उचित, सफल, उत्तम', √ 'साध्' – 'उ'।

सानु – स न; 'शिखर चोटी', √ 'वृह्' = अवे. 'वेरॅज' 'वेरॅस्' = सं. – 'वृष्> 'सा–नु'; तु. – वर्हीयस्, वर्षिष्ठ।

सानुक – वि पु, 'लोभिन्, लालची';√ 'सन् सम्भक्तौ'– 'उक'।

साप्त – सख्या वि.पुं, 'सप्तसंख्याक'।

सामन् – स न., 'गान एक मन्त्रप्रकार, वेद की एक अंश', 'स्वृ–मन्'> 'सामन्'; 'स्वृ' = CALL, CERMON; अं.– SERMON, PSALM, HYMN, CHARM; तु.– √ 'स्वन्' CHANT.

सामग – वि.पु., 'सामगानकृत्', – गायतीति गो–क।

सायक – सं. न, 'बाण, इषु',√ 'षोऽन्तकर्मणि' – 'ठक्'– 'अक'।

सारथि – सं. पुं.; 'रथ हॉकने वाला'; 'सह'– 'रथिन्'।

सावी – √ 'षू प्रेरणे', छान्दस लुङ्., म. पु., ए. व.। आत्मनेपदम्।

√ सिञ्च् 'सेके' – सिञ्चत।

सिध्र – वि पु, 'सिद्धिप्रद' √ 'सिध्'–'र'।

सिन –

सिनीवालि –

सिन्धु – स स्त्री, 'नदी, सरित्', √ 'स्यन्द् प्रस्रवणे' – 'उ'।

सिसर्ति –

सिसासत –

सिस्रते –

सीम् – सर्व, नि, 'वह', निश्चयपूर्वक', स्य, द्वि ए व।

√ सीव् 'सिलना' = SEW – सीव्यतु।

सीसध –

सु – उपसर्ग, 'अच्छा' अवे 'हु, प्रा फा 'उ', वसु = अवे वोहु वङ्हु।

स्वङ्गुरि – वि पु, 'सुन्दर उँगलियो वाला' √ 'अञ्ज्, अञ्च्, अङ्घ्, अङ्ग् गतौ' > अङ्गुरि > FINGER; तु अङ्गम्'।

स्वध्वर – वि पु, 'सुन्दर यज्ञ वाला', अ– √ ध्वृ हिसायाम्>।

स्वनीक – वि पु, 'सुखस्वरूप, सुमुख', अनीक 'मुख, अग्रभाग, सेनाग्र', अवे 'अइनिक'।

स्वपत्य – वि पु, 'सुन्दर सन्तान वाला', अप–त्य = OFFSPRING.

स्वर्चिष् – वि पु, 'सुन्दर ज्वाला वाला', √ 'वृच्' > 'ऋच्' – 'इष्'।

स्वश्व्यम् – स न, 'सुन्दर अश्वसमूह', 'अश्व'– 'यत्'।

स्वाध्य – वि पु., 'सुष्ठु विचारयुक्त', 'सु'– 'आ' – √ 'ध्यै चिन्तायाम्' >।

सुकीर्ति – वि पु., 'सुन्दर कीर्ति वाला, यशस्विन्', (ii) स स्त्री, 'अच्छी प्रसिद्धि'।

सुक्रतु – वि पु, 'अच्छी प्रज्ञा वाला', 'सुक्रतु' = अवे – 'हुस्रवह्', लै INTELLECT.

सुक्षिति – स स्त्री, 'शोभन निवास', – √ 'क्षि निवासे'– 'क्तिन'।

सुग – वि पु, 'सुष्ठु गमनीय, सुगम'।

सुगोप – वि.पु, 'सुन्दर रक्षक, सुष्ठु पालक', √ 'गुप् रक्षणे' >।

सुश्चन्द्र –वि पु, 'सुष्ठु आह्लादक, अच्छी तरह आहलाद करने वाला'; √ 'श्चद् आह्लादने' चद्,> षद्, सीद्।

सुजात – वि पु, 'अच्छी तरह उद्भूत, सूत्पन्न', √ 'जन्प्रादुर्भावे' 'क्त'। अवे ह्वाजात – 'सु–आ–जात'।

सुत – वि पु, 'निचोडा गया'; 'सु अभिषवे' 'क्त'। = अवे – हुत।

सुतष्ट – वि.पु., 'अच्छी तरह निर्मित, सुरचित', 'तक्ष्, तश् तनूकरणे' – 'क्त' = अवे हुतश्त।

सुदसस् – वि पु, 'सुकर्मन्, अद्भुत कार्यो वाला';

दसस् = अवे. 'दङ्हङ्ह' = (आश्चर्यपूर्ण कर्म'; 'दस्' = 'दङ्ह्' 'अस्'। तु. हस्त्र = अवे. दङ्र, दस्म = अवे–दहम, दक्ष।

सुदक्ष – वि.पु; 'सुष्ठु निपुण', 'दक्ष्' = अवे दङ्ह् = 'निपुण होना, आश्चर्यपूर्ण कार्य करना'। 'दक्ष्' – 'अस्'।

सुदानु – वि पु, 'सुप्राज्ञ, सुष्ठुदातर्', 'दानु' = अवे. दानु 'जल, अन्न, प्रज्ञा'।

सुदिनत्व – स. न., 'अच्छा समय'। √ दिव्–न > दिनम्।

सुदुधा – वि. स्त्री; 'सुष्ठु दोहनशीला, अच्छी तरह दूध देने वाली,' √ दुध् > दुह् 'प्रपूरणे'– अङ्, टाप्।

सुद्योतमान – वि पुं; 'कान्त, प्रकाशित होता हुआ'; – 'दिव्' > 'द्युत् कान्तौ' – 'शानच्'।

सुधित – वि.पुं.; 'सुष्ठु स्थापित'; √ 'धा धारणे' – 'क्त'।

सुनीति – स स्त्री, 'सुन्दर नेतृत्व', √ 'नी' – 'क्तिन्'।

सुनीथ – वि पु, 'सुन्दर नेतृत्व वाला, सुन्दर स्तुति वाला'।

√ सु – 'अभिषवे' – सुनोत।

सुन्वन्त् – वि पु, 'अभिषव करता हुआ, सोम चुआता', √ 'सु अभिषवे' – 'शतृ'।

सुपर्ण – वि पु, 'सुन्दर पखो वाला', √ पृ 'पार करना' > 'पर्ण', तु – FEATHER, LEAF, FAN.

सुप्रायणा – वि पु, 'सुष्ठु प्राप्त करने योग्य, अच्छी तरह पहुँचने योग्य', √ अय् 'जाना' – अन।

सुप्रावी – वि पु, 'अच्छा पूजक, अतिशयानुकूल'।

सुप्रयसम् – वि पु, 'सुन्दर अन्नमय'।

सुप्रवाचनम् – वि पु, 'सुष्ठु कहने योग्य'।

सुबाहु – वि पु, 'सुन्दर भुजाओ वाला'।

सुभग – वि पु, 'सुन्दर धन वाला'।

सुभर – वि पु, 'सुष्ठु पूर्ण, सुष्ठु पुष्ट, सुसम्भृत', – √ 'भृ' 'अ'।

सुभु – वि पु, 'अच्छी तरह उत्पन्न, स्वाभाविक', √ 'भू'– 'क्विप्'।

सुभृत – वि पु, 'सुष्ठु पुष्ट', √ 'भृ भरणे' – 'क्त'।

सुमख – वि पु, 'सुन्दर यज्ञ वाला'।

सुमङ्गल – वि पु, 'सुष्ठु मङ्गलमय', √ मञ्ज्– 'लाल होना,> अच्छा होना' >'मङ्गल' > तु.– 'मञ्जु' मड्गु > मूँगा।

सुमति – वि पु., 'सुन्दर बुद्धि वाला', (ii) स स्त्री., 'सुन्दर बुद्धि, कृपा, स्तुति'।

सुमत्गण –

सुमनस् – वि पु, 'सुन्दर मन वाला; सुन्दर विचार वाला'।

सुमेधस् – वि.पु., 'सुप्राज्ञ, सुन्दर बुद्धि वाला, विद्वान्'।

सुम्न – स न; 'स्त्रोत', (ii) 'प्रसन्न', (iii) प्रसन्नता, सुख'।

सुम्नायत् – वि पु, 'सुख की कामना करता हुआ'।

सुम्नयु – वि पुं., 'सुखेच्छुक, धनकामिन्'।

सुयज्ञ – वि पुं, 'सुन्दर यज्ञ वाला'; √ 'यज्' – 'न' – 'यजन, इष्टि, याग'।

सुयम – वि पुं; 'सुष्ठु नियमन योग्य, सुनियम्य'।

सुवयस् – वि.पु., 'सुन्दर अन्नयुक्त, शोभन धनयुक्त', √ वी 'तृप्त होना, आनन्दित होना' – अस्।

सुरथ – वि पु., 'सुन्दर रथ वाला'।

सुरुक् – स. स्त्री, 'सुन्दर कान्ति'; (ii) वि.पु, 'सुन्दर कान्ति वाला'।

सुवान – वि पुं, 'अभिषव करता हुआ', √ 'सु अभिषवे' – 'शानच्'।

सुविदत्र – वि.पुं., 'शोभन ज्ञानमय, सुन्दर धनमय'; √ 'विद् ज्ञाने लाभे वा' 'अत्र'।

सुवित – सं न; 'कल्याण'।

सुवीर – वि.पुं; 'सुन्दर पुत्रो से युक्त, सुन्दर वीरों से युक्त'।

सुवीर्यम् – सं.न.; 'सुन्दर वीरों का समूह'।

सुवृक्ति – स.स्त्री.; 'सुन्दर स्तोत्र'; 'सु' – √ 'वृज्' – 'क्तिन'।

सुवृध् – वि.पुं., 'पक्षपाती, अनुमोदक'।

सुशंसस् – वि.पुं., 'सुन्दर स्तुतियुक्त'।

सुशिप्र – वि पु, 'सुन्दर कपोलयुक्त'।

सुशेव – वि पुं, 'सुन्दर सुखसयुक्त'।

सुश्रुत – वि पुं, 'सुन्दर कीर्त्तिमय, सुष्ठु प्रसिद्ध, सुश्रवस्'।

सुसूत – वि पु, 'सुष्ठु प्रेरित'।

सुसूमा – वि स्त्री, 'सुष्ठु प्रसवित्री', √ 'षूङ् प्राणिप्रसवे' – 'मन्' – 'टाप्'।

सुष्टुत –

सुष्टुति – स स्त्री, 'शोभना स्तुति, अच्छी तरह से की गयी प्रार्थना'।

सुह्व – वि पु, 'सुष्ठु आह्वान योग्य', √ 'ह्वेञ् आह्वाने' – 'अच्'।

सूच्या –

सुस्वति –

सूदयाति – √ सूद् 'क्रमबद्ध करना', लेट्, प्र पु., ए व।

सूनु – स पु; 'पुत्र'; सूनु = SON; √ 'सू' – 'नू'।

सूक्तम् – स न, 'मन्त्रसमूह', 'सु'– √ 'वच्' – 'क्त'।

सूरि – स पु, 'स्तोता, दानदाता', √ 'स्वृ शब्दे' > 'सूरि' = स्तोता।

सूर्य – स पु, 'प्रकाशक, सूर्य', √ 'स्वृ कान्तौ' > स्वर्, 'सूर', 'सूर्य' > 'स्वृ' = 'स्वन्' = SHINE > SUN.

√ 'सृज्' – सृज . ।

सोम – स पु, 'क्षुपविशेष', 'क्षुपविशेष का अधिदेव', 'चन्द्रमा', अवे – 'ह्वओम'।

सोमपा – वि.पु, 'सोमपायिन्', √ 'पा' – 'क्विप्'।

सोमपीति – स स्त्री; 'सोम का पान', √ 'पिब्' – 'क्तिन्' सौम्यम् –

√ 'स्तु स्तुतौ'– स्तवते, 'स्तुति करता हुआ', √ 'स्तु' – 'शानच्'।

स्तवान् –

स्तीर्ण – वि पु, 'बिछाया गया, प्रस्तृत, विस्तृत, फैलाया गया', √ स्तृ – 'बिखेरना, फैलाना' – क्त, तु √ 'स्तृ' 'तारक' = STAR.

स्तुत – वि पु, 'प्रशसित', √ 'स्तु–स्तुतौ' – 'क्त'।

स्तृणान – वि पु, 'बिछाता हुआ, कुशास्तरण करता हुआ', √ .'स्तृ' – 'शानच्'।

स्तृ –

स्तेन – स पुं, चौर, स्तायु >तायु'; 'स्ता' = STEAL; = 'तृप' = THIEF.

स्तोतर् – वि पु.; 'स्तुतिकृत, स्तावक, देवप्रशसाकृत्'; √ 'स्तु स्तुतौ' – 'तृच्'।

स्तोम – स न., 'स्तोत्र, स्तुति, 'स्तु' – 'मन्'।

स्त्री – स. स्त्री; 'महिला, प्रसवकारिणी, गृहस्वामिनी'; √ 'सु'–'तृच्'–'ङीप्' 'सावित्री'>'स्त्री', यद्वा, 'क्षत्री' = अवे. –'क्षथ्री'।

स्थश –

स्थातर् – वि पु; 'स्थित रहने वाला'; √ 'स्था' – 'तृच्'।

स्थिर – विशे; 'स्थिर, दृढ'।

स्पार्ह – वि पुं; 'स्पृहणीय, स्पृहायोग्य, सुन्दर'; √ 'स्पृह्' – 'घञ्'।

स्पृध्

स्पृहयद्वर्ण – वि पु, 'स्पृहणीय वर्ण वाला, सुवर्ण'।

स्म – सार्वनामिक अश,

स्मत् – उप – 'साथ' (= TOGETHER)।

स्मयमान – वि पु, 'मुस्कुराता हुआ', 'स्मि'– 'शानच्', 'स्मि' = SMILE.

स्रुति – स स्त्री, 'प्रवाह, बहाव, निर्झर, गति', √ 'स्रुगतौ'– 'क्तिन्', तु– 'स्रु'> 'सलिल'। कुल्या।

स्वर् – स पुं, 'स्वर्लोक, प्रकाशपूर्ण लोक, सूर्य, प्रकाश', अवे – 'ह्वर्'> आ फा– 'खुर्', तु– 'खुशीर्द' = 'ह्वरक्षऍत'।

स्वर्जित्– वि पु, 'प्रकाशजयिन्, स्वर्लोकजयिन्'।

स्वर्दृश् – वि पु, 'प्रकाशद्रष्टर्, देव'।

स्वर्णर – वि पु, 'प्रकाशपूर्ण'।

स्वर्विद् – वि पु, 'प्रकाशप्राप्तर्', √ 'विद् लाभे' – 'क्विप्'।

स्वर्षन् – वि पु., 'प्रकाश को प्राप्त करता हुआ'।

स्वधा – नि; 'धारक शक्ति, स्वतन्त्रेच्छा, आत्मशक्ति, स्वातन्त्र्य'; (ii) 'स्वादुता'; √ 'स्वद्'> तु –SWEET; (iii) 'पितरो को प्रदत्तान्न'।

स्वधावान् – वि पु., 'स्वतन्त्र, स्वादुमय, स्वकीय शक्तियुक्त'।

स्वधिति – स स्त्री, 'कुल्हाडी'।

स्वप्न – स पु, निद्रा, नींद, ख्वाब', तु –अ.– HOPE, SLEEP.

स्वयम् – क्रि.वि, 'अपने आप, खुद' > HIMSELF.

स्वर्यु – वि पु., 'प्रकाशकामिन्'

स्वराज्– वि.पु, 'अपने आप कान्त, स्वय शासक', √ 'राज् दीप्तौ' – 'क्विप्'।

स्वर् – स पु 'प्रकाश, सूर्य', अवे– 'ख्वर्', 'ह्वर', आ फा – 'खुर', √ 'स्वृ कान्तौ' = √ 'स्वन्' = SHINE; तु– अ– SUN 'सूर्य'।

स्वसर – स न; 'गृह, निवासस्थान, दिन'।

स्वसर् – सं. स्त्री, 'बहिन, भगिनी',अवे.– 'ख्वसुर' = SISTER.

स्वस्ति – स. स्त्री 'सुन्दर अस्तित्व, कल्याण; 'सु' – √ 'अस्'– 'क्तिन्', > निपात, 'शोभन रीति से'। = अवे. – हवडह्, = स अडहु। – 'उत्तम जीवन' कल्याण, आनन्द'।

स्वाद्मन्– स न; 'स्वादुता', √ 'स्वृ' = SWALLOW> स्वद्; कवल> – 'ग्रास'। अवे– ह्वाथ्र – 'स्वादप्रद'।

स्वाहा – निर्दे, 'हविर्दानवाची पद'; 'सु' – 'आह' (√ 'अह्'–लिट्) >'स्वाहा'।

स्वाहाकृतम् – क्रि. वि.; 'स्वाहा बोलने के साथ साथ'।

ह

ह – ऐतिहयद्योतक, शोभार्थक निपात, घ> ह, 'सच–मुच, ऐसा प्रसिद्ध हैं।

हस –

√ 'हन्–मारना' – हसि, हन्ति, हन्तन।

हत्वा – 'मारकर, वध करके', √ 'हन्' – 'क्त्वा'।

हत्वी – 'मारकर, वध करके', √ 'हन्' – 'क्त्वा' – 'ङीप्'।

हन्तर् – वि पु, 'मारक, वधकर्तर', अवे. – 'जन्तर'। √ घन्–'मारना', तु – अ GUN स –'घन',> 'हन्', हेति 'आयुध'।

हये – सम्बोधनार्थक निपात 'हे, अये'।

हरस्वती – वि स्त्री, 'क्रोधयुता, कौटिल्यमती'।

हर्यश्व – वि पु, 'स्वर्णिम अश्वमय, स्वर्णवर्णाश्वरूप', 'पीताश्व, हरिदश्व', यद्वा, 'गतिशील अश्वयुक्त' √ 'ह्वृ' >GLOW, 'ज्वल्', 'हिर्'>, यद्वा, √ ध्वृ–'घूमना', हिर्, हर्य, > तु – हरिण 'गतिशील पशु'।

हरि – स पु, 'अश्व', वि पु, 'स्वर्णिम, पीत, कान्त, हरित', अवे – 'जइरि', 'जाइरि'। √ 'ध्वृ = GLOW, ज्वल्, हिर्, हिरण्य – अवे – 'जरन्य' = GOLD, YELLOW, GREEN.

हव – स पु, 'आहवान', √ 'ह्वेञ् आहवाने' – 'अ'।

हवनश्रुत – वि पु, 'आहवान को सुनने वाला'।

हविष् – सं न, 'हवनपदार्थ, हव्य', √ 'हु अग्निप्रक्षेपे' – 'इष्'।

हवीमन् – स पु, 'आहवान, पुकार, आहूति'।

हव्य – स न, 'हविष्, हविष्य, हवन, हवनपदार्थ', अवे – 'जओय'।

हव्यवाहन – वि पुं, 'हविष्यान्न को पहुँचाने वाला, अग्नि का विशेषण'।

हस्त – स.पु 'हाथ' = HAND; अवे – 'जस्त', प्रा फा 'दस्त'।

हस्त्य – वि.पु, 'हस्तसम्बद्ध'।

हार्दि – सं न., 'हृदयसम्बद्ध'।

हि – नि.; 'क्योकि, सचमुच'; अवे –'जि', 'जी', मूलत 'धि'> 'हि'। लोट्, आ प., म.पु.ए.व. का विभक्ति–चिह्न।

हित – वि.पु, 'स्थापित, निहित, रखा गया', √ 'धा धारणे' – 'क्त'; अवे 'दात', 'धात'।

हित्वी – 'त्यागकर, छोडकर'; √ 'हा परित्यागे'–'क्त्वा' > 'क्त्वी'।

√ 'हि–गतौ' – हिनोत, हिनोमि।

हिन्वान – वि पुं, 'प्रेरित करता हुआ', √ 'हि'–'णिच्'–'शानच्'।

हियान – वि.पु, 'गतिशील', √ 'हि गतौ'– 'शानच्'।

हिरण्य – स.न; 'स्वर्ण, सोना'; √ ह्वृ GLOW, 'ह्वृ'> 'हिर्' – 'कन्यन्'। अवे.– 'जरन्य'; आ. फा. 'जरी', 'जरीन' = GOLD, GREEN; 'हिर्'> 'हीरक', 'हाटक'।

हिरण्यदा – वि.पुं.; 'स्वर्णप्रद'; – 'क्विप्'।

हिरण्यरूप – वि.पुं., 'स्वर्णिम रूप वाला', √ वृप् 'उठना' रूप उपरि = अवे. – 'उपइरि', OVER, UP, UPON, UPPER; LEFT.

हिरण्यवर्ण – वि.पुं.; 'स्वर्णवर्ण' स्वर्णिम रङ्ग वाला √ वृ आवरणे>'वृक्'> COVER; आ.फा.–'वर्क्' 'खोल'; सं.–'वल्कल'।

हिरण्यशिप्र – वि.पु, 'स्वर्णिम कपोल वाला', √ 'कमर्' (='कोमल होना, वर्तुल होना') >'कपर्'> 'शिप्र' (='कपोल')।

हिरण्यसदृक् – वि पु, 'स्वर्णिम स्वरूप वाला', – √ 'दृश्' – 'क्विप्'।

हिरिशिप्र – द्र. – 'हिरण्यशिप्र'।

हूयमान – वि पु, 'पुकारा जाता हुआ', √ 'हू'– कर्मणि 'शानच्'।

हृत्– स न., 'हृदय' झ 'दिल' =>HEART; अवे – 'जॅरॅत्', 'जॅरॅदय'।

हृषीवन्त् – वि पु, 'प्रसन्न', 'हृष्' – 'ई' > 'हृषी'।

√ 'घृष्' > 'हृष्' – तु – GAY, JOY, JOLLY; HAPPY.

√ 'हृणीङ् रोषणे' – हृणीषे।

ह्वोतर् स पु 'आह्वानकृत् पुरोहित', अवे – ज्बातर', 'जओतर्', 'ज्बातर्'।

ह्वोतृसदन – स.न, 'ह्वोतर् का स्थान'; √ षद्' = SIT, 'ल्युट्'। सदन् सदस् >नीड = NEST.

ह्वोत्र – स न; 'होतर् का कर्म'।

ह्वोत्रा – स स्त्री, 'एक स्त्री देवता की सज्ञा'।

होत्र – स न, 'हविष्, हव्य, हविष्य', √ 'हु' – 'त्र'। अवे – 'जओथ्र'।

ह्वरस् – स न, 'कुटिलता, कौटिल्य', √ 'ह्वृ कुटिलगतौ' – 'अस्', = अवे – 'ज्वरह्'।

हवार – 'सर्प, कौटिल्य', √ 'ह्वृ कौटिल्ये' – 'णिच्' 'अच्'।

हवृ > हवृ, तु०– अ – GLOBE, WHEEL, WHIRL; √ 'हवृ' > 'घूर्ण्' = घूमना, 'हिण्ड्', 'ढुण्ढ'।

इति

शब्द संक्षेप सूची

ऋ० = ऋग्वेद

यजु० = यजुर्वेद

साम० = सामवेद

अथर्व० = अथर्ववेद

अवे० = अवेस्ता

स० = सस्कृत

नपु० = नपुसकलिङ्ग

पु० = पुल्लिङ्ग

स्त्री० = स्त्रीलिङ्ग

प्रा० फा० = प्राचीन फारसी

आ० फा० = आधुनिक फारसी

वि० = विशेषण

अ० = अग्रेजी

उप० = उपसर्ग

लै० = लैटिन

लिथु० = लिथुअनियन

नि० = निपात

क्रि० वि० = क्रिया विशेषण

वि० पु० = विशेषण पुल्लिग

स० पु० = सस्कृत पुल्लिग

स० स्त्री = सस्कृत स्त्रीलिङ्ग

वि० स्त्री = विशेषण स्त्रीलिङ्ग

सम्बो० = सम्बोधन

स० नपु० = सस्कृत नपुसकलिङ्ग

गा० = गाथिक

प्र० एव० = प्रथमा एकवचन

द्वि० = द्वितीया

तृ० = तृतीया

च० = चतुर्थी

प० = पञ्चमी

ष० = षष्ठी

स० = सप्तमी

बहु० = बहुवचन

सर्व = सर्वनाम

तु० = तुलनीय

पह् = पहलवी

ऋक् स० = ऋग्वेद सहिता

यजु० स० = यजुर्वेद सहिता

तै० स० = तैत्तिरीय सहिता

मै० स० = मैत्रायणी सहिता

का० स० = काठक सहिता

अथर्व स० = अथर्ववेद सहिता

ऐत० ब्रा० = ऐतरेय ब्राह्मण

कौ० ब्रा० = कौषीतकि ब्राह्मण

शत० ब्रा० = शतपथ ब्राह्मण

षड ब्रा० = षड्विश ब्राह्मण

जै० ब्रा० = जैमिनीय ब्राह्मण

शा० श्रौ० सू० = शाखायन श्रौत सूत्र

छा० उप० = छान्दोग्य उपनिषद

वृह० उप० = वृहदारण्यक् उपनिषदे

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

ऋग्वेद संहिता — १ मैक्समूलर (सायण भाष्य सहित, ४ भाग)
द्वितीय सस्करण आक्सफोर्ड, १८६२
२ वैदिक सशोधन मण्डल (सायण भाष्य सहित ५ भाग)
पूना, १९३६
३ प० राम गोविन्द त्रिवेदी (हिन्दी अनुवाद),
इडियन प्रेस, प्रयाग १९५४
४ एच एच विल्सन (अग्रेजी अनुवाद) १८५०
५ टी एच ग्रिफिथ (अग्रेजी पद्यानुवाद),
काशी, १८६२

यजुर्वेद सहिता — १ शुक्ल यजुर्वेद माध्यदिन सहिता (उव्वट महीधर भाष्य सहित) निर्णय सागर बम्बई १९२९
२ टी एच ग्रिफिथ, — पद्यानुवाद, १८८९

शुक्ल यजुर्वेद सहिता — (सायण) भाष्य सहित) चौखम्भा सस्कृत सिरीज, बनारस, १९१५

कृष्णायजुर्वेद सहिता — (सायण भाष्य) आनन्दाश्रम प्रकाशन, पूना १९००

वेद आफ दि यजुष स्कूल — ए० बी० कीथ हार्वड ओरियटल सिरीज, अमेरिका जिल्द १८ तथा १९

कृष्णायजुर्वेद मैत्रायणी सहिता — १ दामोदर सातवलेकर, औघ
२ श्रौदर लिपजिग १९२३

कृष्णयजुर्वेद काठक सहिता — दामोदर सावलेकर, औद्य

कृष्ण यजुर्वेद काठक कपिष्ठल सहिता — दामोदर सातलेकर औद्य

निरूक्त और निघण्टु — १ (स्कदस्वामि महेश्वर टीका) स०
डा० लक्ष्मण सरूप, पंजाब विश्वविद्यालय, १९२८
२ (मूल, हिन्दी अनुवाद) सत्यभूषण योगी तथा शशिकुमार,
मोतीलाल बनारसीदास प्र० स० १९६७

सर्वानुक्रमणी तथा वेदार्थदीपिका — स ए ए मैकदानल, आर्यन
सिरीज, प्रथम जिल्द,
चतुर्थ भाग, आक्सफोर्ड १८८६

ऋग्वेद प्रातिशाख्य — (तीन भाग) स मगलदेव शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर १९३७

वैदिक डण्डेक्स ऑफ नेम्स एण्ड सब्जेक्ट्स मेकडानल तथा कीथ, पुनर्मुद्रक मोतीलाल बनारसी दास — दो भाग १९५८

सेण्टपीटर्सवर्रा संस्कृत जर्मनकोश सम्पादक, रॉथ तथा बोउलिंग, सेण्टपीटर्स वर्ग १८६१

वैदिक शब्दार्थ पारिजात — १ सम्पादक विश्वबन्धु शास्त्री

बिब्लिओग्राफी वेदीक — लुई रेनो,पेरिस १९३१

प्रोग्रेस इन इण्डिक स्टडीज — (१९१७ से ४२,) आर. एन. दाण्डेकर भारतीय ओरियण्टल इंस्टीट्यूट, पूना रिसर्च सिल्वर जुबली १९४२

वैदिक बिब्लिओग्राफी – १ आर एन दाण्डेकर, पूना १९४७

ऋग्वैदिक रेपिटीशन्स – ब्लूमफील्ड, हार्वड, ओरियण्टल सीरीज, जिल्द २०, तथा २४

अमरकोश – सम्पादक – मोतीलाल बनारसी दास, भानुजीदीक्षित

हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर – डा० विण्टरनिट्ज – प्रथम जिल्द द्वितीय भाग, केतकर का अग्रेजी अनुवाद

" द्वितीय सस्करण कलकत्ता। डा० वेबर ट्रिब्यूनर्स ओरियण्टल सीरीज, लन्दन १९०४

हिस्ट्री ऑफ ऐन्शेण्ट सस्कृत लिटरेचर – मैक्समूलर पुनर्मुद्रक ए एस. मजूर, अहमद ७१ हीवेटरोड, इलाहाबाद।

हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर – ए ए मैकडॉनल १९०५

हिस्ट्र ऑफ सस्कृत लिटरेचर (वैदिक भाग, सी वी वैद्य) पूना १९३०

वैदिक साहित्य और सस्कृति – प० बल्देव उपाध्याय द्वितीय सस्करण १९५८

वैदिक साहित्य – प राम गोविन्द त्रिवेदी–[illegible] प्रकाशन काशी, प्रथम सस्करण १९५०

वैदिक विज्ञान और भारतीय सस्कृति – [illegible], गिरधर शर्मा चतुर्वेदी बिहार, राष्ट्रभाषा हिन्दी अकादमी प्रकाशन।

ओरिजनल सस्कृत टेस्ट – पॉच भाग जॉन म्योर ट्रूब्नर्दस एण्ड कम्पनी, लन्दन १८७२

वैदिक मैथोलॉजी – ए ए मैकडॉन्ल हिन्दी, अनुवाद, सूर्यकान्त, प्रथम सस्करण, दिल्ली १९६१

कम्परेटिव मैथोलॉजी – बाई पूअर

द आर्कटिक होम इन दॅ वेदॉज – प. बाल गगाधर तिलक पूना १९५६

वैदिक पदानुक्रम कोश – पं विश्वबन्धु शास्त्री, लाहौर १९३५

वैदिक धर्म और दर्शन – सूर्य कान्त, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली

वैदिक कोश – सूर्य कान्त बनारस, हिन्दी युनिवर्सिटी, १९६३

वैदिक कोश – प राजबीर शास्त्री आर्यसाहित्य प्रचार ट्रस्ट, वैदिक पुराकथा शास्त्र, रामकुमार राय, चौखम्भा विद्याभवन बनारस।

वैदिक साहित्य और सस्कृति – भगवद्दत्त प्रणव प्रकाशन, नई दिल्ली – १९७४

सस्कृत भाषा –

तैत्तिरीय संहिता भाष्य भूमिका –

सस्कृत इग्लिश डिक्शनरी –

शतपथ ब्राह्मण –

मनुस्मृति –

महाभारत १/२ और महाभारत आदिपर्व –

पूर्वमीमांसा –

पतञ्जलि –

अनुवाकानुकानुक्रमणी –

शाकर शारीरिक भाष्य –

बृहत् हारीत समृति –

ब्रह्मसूत्र –

ऋग्वेद भाष्य चतुर्थोऽष्टक , अष्टमोऽध्याय –

सामवेद सहिता –

काण्वसहिता –

शतपथ ब्राह्मण – वेद भाष्य भूमिका सग्रह

दुर्गाचार्य –

Bibliography

1.	Aitreya Aranyaka	-	Benedale keith oxford university press ely house london 1969
2.	Aspect of India Religious Thought	-	S.B. Das Gupta
3.	Linguistic survey of Indian phylosophy	-	Hari Mohan Jha
4.	Problem of meaning	-	R.C. Pandey
5.	Prospects of Indian Thought	-	
6	The Development of Hindu Iconography	-	J.M. Banerjee
7.	The Phylosophy of word and meaning	-	Gaurinath Shastri
8	The Religion and Phylosophy of the veda and upanisads	-	A.B. Keith
9.	Vedic Bebliography	-	R.N. Dandekar
10.	Vedic Index of hames and subject	-	Arthur Anthony macdonell and arthur Berriedale
11.	Vedic Mythalogy	-	A.A. Macdonell
12.	Vedic Studies	-	K.C. Chattopadhyay